BNHN101DCT

हिन्दी साहित्य का इतिहास

एन ई पी - 2020 पाठ्यक्रम पर आधारित

बी.ए.(हिन्दी)

(प्रथम सेमेस्टर के लिए)

दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा केंद्र

मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी

हैदराबाद-32, तेलंगाना, भारत

Copyright © 2025, Maulana Azad National Urdu University, Hyderabad

All right reserved. No part of this publication may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronically or mechanically, including photocopying, recording or any information storage or retrieval system, without prior permission in writing form the publisher (registrar@manuu.edu.in)

ISBN : 978-81-990167-4-3
Course : Hindi Sahitya Ka Itihas
First Edition : September 2025
Copies : 600
Price : 220/- (The price of the book is included in admission fee of distance mode students)

Course Coordinator

Dr. Aftab Alam Baig
Assistant Registrar, CDOE, MANUU

Editorial Board/Editors

Prof. Rishabha Deo Sharma
Former Head, P.G. and Research Institute,
Dakshin Bharat Hindi Prachar Sabha,
Hyderabad
Consultant (Hindi), CDOE, MANUU

Prof. Shyamrao Rathod
Professor, Department of Hindi
EFL University, Hyderabad

Dr. Gurramkonda Neeraja
Associate Professor, PGRI,
DB Hindi Prachar Sabha, Chennai

Dr. Aftab Alam Baig
Assistant Registrar, CDOE, MANUU

Dr. Wajada Ishrat
Assistant Professor (Hindi)
CDOE, MANUU

Dr. L. Anil
Guest Faculty/Assistant Professor (Cont.)
CDOE, MANUU

Production

Prof. Nikhath Jahan, Professor (Urdu), CDOE, MANUU

Mr. P Habibulla, Assistant Registrar, Purchase & Stores Section, MANUU

Dr. Mohd Akmal Khan, Assistant Professor (C), CDOE, MANUU

Mohd Abdul Naseer, Section Officer, CDOE, MANUU

Shaik Ismail, UDC, CDOE, MANUU

Syed Faheemuddin, LDC, Purchase & Stores Section, MANUU

On behalf of the Registrar, Published by:

Centre for Distance and Online Education

Maulana Azad National Urdu University
Gachibowli, Hyderabad-500032 (TG), India
*Director:*dir.dde@manuu.edu.in*Publication:*ddepublication@manuu.edu.in
Phone number: 040-23008314 Website: manuu.edu.in

CRC Prepared by Dr. L. Anil, Faculty of Hindi, CDOE, MANUU

Printed at : Print Time & Business Enterprises, Hyderabad

विषयानुक्रमणिका

संदेश		कुलपति	5
संदेश		निदेशक	6
भूमिका		पाठ्यक्रम–समन्वयक	7
क्र. सं.	**इकाई**	**लेखक**	**पृ. सं.**
	खंड – 1 आदिकाल		
1	हिन्दी साहित्य का इतिहास : काल विभाजन एवं नामकरण	प्रो. ऋषभदेव शर्मा	9
2	आदिकालीन साहित्य : पृष्ठभूमि और सामान्य विशेषताएँ	प्रो. ऋषभदेव शर्मा	23
3	आदिकालीन काव्यधाराएँ : सिद्ध, नाथ एवं जैन साहित्य	प्रो. ऋषभदेव शर्मा	36
4	प्रमुख रासो काव्य	प्रो. ऋषभदेव शर्मा	50
	खंड - 2 भक्तिकाल		
5	भक्ति आंदोलन : सामाजिक - सांस्कृतिक पृष्ठभूमि	प्रो. ऋषभदेव शर्मा	64
6	भक्तिकाल की सामान्य विशेषताएँ	प्रो. ऋषभदेव शर्मा	77
7	प्रमुख निर्गुण कवि	प्रो. ऋषभदेव शर्मा	91
8	प्रमुख सगुण कवि	प्रो. ऋषभदेव शर्मा	106
	खंड- 3 : रीतिकाल		
9	रीतिकाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	प्रो. ऋषभदेव शर्मा	122
10	रीतिबद्ध काव्य	प्रो. ऋषभदेव शर्मा	135
11	रीतिसिद्ध काव्य	प्रो. ऋषभदेव शर्मा	150

12	रीतिमुक्त काव्य	प्रो. ऋषभदेव शर्मा	162
	खंड - 4 आधुनिक काल		
13	1857 का स्वाधीनता संघर्ष और हिन्दी नवजागरण	प्रो. ऋषभदेव शर्मा	176
14	हिन्दी गद्य का उद्भव और आरंभिक विकास	प्रो. ऋषभदेव शर्मा	188
15	भारतेंदु युगीन साहित्य की विशेषताएँ	प्रो. ऋषभदेव शर्मा	201
16	भारतेंदु युग के प्रमुख कवि	प्रो. ऋषभदेव शर्मा	214
	परीक्षा प्रश्न पत्र का नमूना		227

लेखक विवरण

प्रो. ऋषभदेव शर्मा, परामर्शी (हिन्दी), सीडीओई, मानू, हैदराबाद.	Prof. Rishabha Deo Sharma Consultant (Hindi), CDOE , MANUU

प्रूफ रीडर (Proof Readers) :

1. डॉ. एल. अनिल, असिस्टेंट प्रोफेसर (सं), दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा केंद्र, हैदराबाद
2. डॉ. वाजदा इशरत, असिस्टेंट प्रोफेसर, दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा केंद्र, हैदराबाद
3. डॉ. आफ़ताब आलम बेग असिस्टेंट रजिस्ट्रार, दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा केंद्र, हैदराबाद

मुख पृष्ठ (Title Page) **:** श्री. इब्राहीम अकरम सिद्दीकी

संदेश

मौलाना आज़ाद राष्ट्रीय उर्दू विश्वविद्यालय की स्थापना 1998 में संसद के एक अधिनियम द्वारा की गई थी। यह एक केंद्रीय विश्वविद्यालय है जिसे NAAC द्वारा ग्रेड A+ प्रदान किया गया है। विश्वविद्यालय का उद्देश्य है, 1. उर्दू भाषा का प्रचार-प्रसार, 2. उर्दू माध्यम में व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा को सरल भाषा में उपलब्ध कराना, 3. पारंपरिक और दूरस्थ शिक्षा माध्यमों के द्वारा शिक्षा प्रदान करना, 4. महिलाओं की शिक्षा पर विशेष ध्यान देना। ये विशेषताएँ इस केंद्रीय विश्वविद्यालय को अन्य सभी केंद्रीय विश्वविद्यालयों से अलग और विशिष्ट बनाती हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में भी मातृभाषाओं और क्षेत्रीय भाषाओं में शिक्षा प्राप्त करने पर विशेष बल दिया गया है।

उर्दू माध्यम से ज्ञान प्रसार का मुख्य उद्देश्य यह है कि उर्दू जानने वाले समुदाय को समकालीन ज्ञान और विभिन्न विषयों तक सहज पहुँच मिल सके। लंबे समय तक उर्दू में पाठ्य सामग्री की कमी रही है। अब उर्दू विश्वविद्यालय के पास उर्दू में 350 से अधिक पुस्तकों का भंडार है, और यह संख्या हर सेमेस्टर के साथ बढ़ती जा रही है।

उर्दू विश्वविद्यालय को यह गर्व है कि वह राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 के अनुसार मातृभाषा/घरेलू भाषा में सामग्री उपलब्ध कराने के राष्ट्रीय मिशन का हिस्सा है। इसके परिणामस्वरूप, उर्दू भाषी समुदाय अब अद्यतन ज्ञान, उभरते हुए क्षेत्रों की जानकारी और मौजूदा विषयों में नवीन ज्ञान प्राप्त करने में पिछड़ा हुआ नहीं रह गया है, क्योंकि अब उर्दू में पढ़ने योग्य सामग्री उपलब्ध है। इन ज्ञान क्षेत्रों से संबंधित विषय-वस्तु की उपलब्धता ने ज्ञान प्राप्त करने के प्रति एक नई जागरूकता उत्पन्न की है, जो उर्दू जानने वाले समुदाय की बौद्धिक प्रगति पर महत्वपूर्ण प्रभाव डाल सकती है।

दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षार्थियों के लिए शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को सुगम बनाने हेतु, विश्वविद्यालय का दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा केंद्र संबंधित विषयों में स्व-अध्ययन सामग्री तैयार करना सुनिश्चित करता है। विश्वविद्यालय दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा के छात्रों को यह स्व-अध्ययन सामग्री नि:शुल्क प्रदान करता है। यही सामग्री ज्ञान प्राप्त करने में रुचि रखने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए नाममात्र मूल्य पर भी उपलब्ध है। शिक्षण तक पहुँच को और अधिक व्यापक बनाने के उद्देश्य से उर्दू/हिंदी/अंग्रेज़ी/अरबी में स्व-अध्ययन सामग्री(eSLM) विश्वविद्यालय की वेबसाइट से नि:शुल्क डाउनलोड की जा सकती है।

मुझे अत्यंत हर्ष हो रहा है कि संबंधित संकाय के परिश्रम और लेखकों के पूर्ण सहयोग से चारवर्षीय स्नातक (4YUG) कार्यक्रम के अंतर्गत बी.ए.(आनर्स), बी. एस. सी.(आनर्स) और बी.काम. (आनर्स) पाठ्यक्रमों के लिए पुस्तकों के प्रकाशन की प्रक्रिया बड़े पैमाने पर आरंभ हो चुकी है। दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों को सुविधा प्रदान करने हेतु स्व-अध्ययन सामग्री(Self-Learning Material) की तैयारी और प्रकाशन की प्रक्रिया विश्वविद्यालय के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

मेरा विश्वास है कि हम अपनी स्व-अध्ययन सामग्री के माध्यम से एक व्यापक समुदाय की आवश्यकताओं को पूरा कर सकेंगे और इस विश्वविद्यालय के उद्देश्य को सफलतापूर्वक निभाते हुए देश में अपनी उपस्थिति को सार्थक सिद्ध कर पाएँगे। मैं विश्वविद्यालय से जुड़े सभी विद्यार्थियों को इस परिवार का अंग बनने के लिए हृदय से बधाई देता हूँ और यह विश्वास दिलाता हूँ कि मौलाना आज़ाद राष्ट्रीय उर्दू विश्वविद्यालय का शैक्षिक मिशन सदैव उनके लिए ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करता रहेगा। शुभकामनाओं सहित!

प्रो. सैयद ऐनुल हसन

कुलपति

संदेश

वर्तमान युग में दूरस्थ शिक्षा को पूरी दुनिया में एक बहुत ही प्रभावशाली और उपयोगी शिक्षा प्रणाली के रूप में मान्यता प्राप्त है और बड़ी संख्या में लोग इस शिक्षा प्रणाली से लाभान्वित हो रहे हैं। मौलाना आज़ाद राष्ट्रीय उर्दू विश्वविद्यालय ने भी उर्दू भाषी जनसंख्या की शैक्षणिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए अपनी स्थापना के समय से ही दूरस्थ शिक्षा प्रणाली को अपनाया है। विश्वविद्यालय की स्थापना 1998 में दूरस्थ शिक्षा निदेशालय के साथ हुई थी और नियमित कार्यक्रमों की शुरुआत 2004 से हुई, इसके पश्चात विभिन्न विभागों की स्थापना की गई।

भारत में शिक्षा प्रणाली को प्रभावी ढंग से नियंत्रित करने में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा केंद्र (Centre for Distance and Online Education) के तहत चलाए जा रहे विभिन्न कार्यक्रम, जो ओपेन और दूरस्थ शिक्षा मोड में हैं, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग – दूरस्थ शिक्षा ब्यूरो द्वारा अनुमोदित हैं। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग – दूरस्थ शिक्षा ब्यूरो ने दूरस्थ और नियमित शिक्षा के पाठ्यक्रमों को समन्वित करने पर जोर दिया है, ताकि दूरस्थ शिक्षा के छात्रों के स्तर को बढ़ाया जा सके। चूंकि मौलाना आज़ाद राष्ट्रीय उर्दू विश्वविद्यालय एक ड्यूल मोड विश्वविद्यालय है, जो दूरस्थ और पारंपरिक दोनों प्रकार की शिक्षा प्रदान करता है, इसलिए UGC-DEB के दिशानिर्देशों के अनुरूप अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए चॉइस बेस्ड क्रेडिट सिस्टम (CBCS) लागू किया गया और स्नातक एवं स्नातकोत्तर कार्यक्रमों के लिए नई स्व-अध्ययन सामग्री तैयार की गई है।

दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा केंद्र फिलहाल उन्नीस (19) कार्यक्रम चला रहा है, जिनमें स्नातक, स्नातकोत्तर, बी.एड., डिप्लोमा और सर्टिफिकेट कार्यक्रम शामिल हैं। इसके साथ ही, तकनीकी कौशल आधारित कार्यक्रम भी शुरू किए जा रहे हैं। इस केंद्र ने अब राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (NEP-2020) के अनुसार जुलाई 2025 से 4-वर्षीय स्नातक (4YUG) कार्यक्रम प्रारंभ किया है। ऑनर्स कार्यक्रम B.A., B.Sc. और B.Com राष्ट्रीय पाठ्यचर्या फ्रेमवर्क (NCF) के अनुसार डिजाइन किए गए हैं, जो छात्रों को ऑनर्स डिग्री प्राप्त करने में सहायता करेंगे। वर्ष 2025-2026 से MBA कार्यक्रम ODL मोड में शुरू किया गया है।

छात्रों की सुविधा के लिए 9 क्षेत्रीय केंद्र (बैंगलोर, भोपाल, दरभंगा, दिल्ली, कोलकाता, मुंबई, पटना, रांची तथा श्रीनगर) और 6 उप-क्षेत्रीय केंद्र (हैदराबाद, लखनऊ, जम्मू, नूह, वाराणसी तथा अमरावती) का एक विशाल नेटवर्क स्थापित किया गया है। इसके अलावा, विजयवाड़ा में एक विस्तार केंद्र भी स्थापित किया गया है। इन क्षेत्रीय और उप-क्षेत्रीय केंद्रों के अंतर्गत 157 से अधिक लर्नर सपोर्ट सेंटर (LSCs) और बीस कार्यक्रम केंद्र एक साथ संचालित किए जा रहे हैं, ताकि छात्रों को शैक्षणिक और प्रशासनिक सहायता प्रदान की जा सके। दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा केंद्र अपनी शैक्षणिक और प्रशासनिक गतिविधियों में ICT का पूर्ण उपयोग करता है, और अपने सभी कार्यक्रमों में प्रवेश केवल ऑनलाइन मोड से ही प्रदान करता है।

छात्रों के लिए स्व-अध्ययन सामग्री (SLM) की सॉफ्ट कॉपी दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा केंद्र की वेबसाइट पर उपलब्ध कराई जाती है और ऑडियो व वीडियो रिकॉर्डिंग के लिंक भी वेबसाइट पर उपलब्ध हैं। इसके अलावा ई-मेल और व्हाट्सएप समूहों की सुविधाएँ छात्रों को प्रदान की जा रही हैं, जिनके माध्यम से पाठ्यक्रम पंजीकरण, असाइनमेंट, काउंसलिंग, परीक्षाओं आदि जैसे कार्यक्रम के विभिन्न पहलुओं के बारे में छात्रों को सूचित किया जाता है। नियमित काउंसलिंग के अलावा, पिछले दो वर्षों से छात्रों के शैक्षणिक स्तर को सुधारने के लिए अतिरिक्त ऑनलाइन रेमेडियल काउंसलिंग की सुविधा भी प्रदान की जा रही है।

आशा है कि दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा केंद्र शैक्षिक और आर्थिक रूप से पिछड़ी आबादी को समकालीन शिक्षा की मुख्यधारा में लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा। नई शिक्षा नीति (NEP-2020) के अनुसार शैक्षिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए विभिन्न कार्यक्रमों में बदलाव किए गए हैं, इससे ओपेन और दूरस्थ शिक्षा प्रणाली को और अधिक प्रभावी और कुशल बनाने में मदद मिलेगी।

प्रो. मोहम्मद रज़ाउल्लाह खान
निदेशक,
दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा केंद्र

भूमिका

'हिन्दी साहित्य का इतिहास' शीर्षक यह पुस्तक मौलाना आजाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, हैदराबाद, के बी.ए. (हिन्दी) प्रथम सत्र के दूरस्थ एवं ऑनलाइन शिक्षा माध्यम के छात्रों के लिए तैयार की गई है। इसकी संपूर्ण योजना विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू जी सी) के निर्देशों के अनुसार नियमित माध्यम के पाठ्यक्रम के अनुरूप रखी गई है।

किसी भी भाषा और उसके साहित्य का इतिहास उसके स्वरूप और विकास को समझने की कुंजी होता है। यदि हम हिन्दी साहित्य का अध्ययन करना चाहते हैं तो सबसे पहले यह जानना जरूरी है कि इस भाषा और साहित्य का जन्म कब और किन परिस्थितियों में हुआ। साथ ही यह भी जानना होगा कि इसका विकास कितने चरणों में हुआ। इस विकास यात्रा के मोड़ों और पड़ावों के रहस्य को समझने के लिए यह जानना भी जरूरी है कि बदलती सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों ने इस भाषा-समाज की चित्तवृत्ति को किस प्रकार बदला, क्योंकि जनता की चित्तवृत्ति के बदलाव के अनुरूप ही साहित्य की प्रवृत्तियाँ बदलती हैं। इन प्रवृत्तियों के आधार पर ही साहित्य के इतिहास में विभिन्न कालों अथवा युगों का निर्धारण किया जाता है। इसके साथ ही साहित्य का इतिहास परिस्थितियों और प्रवृत्तियों के अलावा विभिन्न विधाओं के विकास में विभिन्न रचनाकारों के योगदान, उनके व्यक्तित्व, कृतित्व और मूल्यांकन को भी दर्ज करता है। प्रस्तुत पुस्तक में इन सब बातों का ध्यान रखा गया है तथा सारी सामग्री को कुल सोलह इकाइयों के रूप में छात्रों की सुविधा के लिए सरल, सहज और सुबोध भाषा में प्रस्तुत किया गया है। प्रथम खंड की चार इकाइयों में काल विभाजन और नामकरण के उपरांत आदिकालीन हिन्दी साहित्य की पृष्ठभूमि, प्रवृतियों, रचनाकारों और रचनाओं का परिचय दिया गया है। दूसरे और तीसरे खंड में मध्यकाल के अंतर्गत क्रमशः भक्तिकाल और रीतिकाल का विवेचन सम्मिलित है। चौथा खंड आधुनिक काल पर केंद्रित है।

इस खंड में प्रथम स्वाधीनता संघर्ष, नवजागरण और उद्गम के उद्भव पर चर्चा के साथ-साथ भारतेंदु युगीन साहित्य की प्रवृतियों और प्रमुख कवियों की दें पर प्रकाश डाला गया है।

इस समस्त पाठ सामग्री को तैयार करने में हमें जिन ग्रंथों और लेखकों से सहायता मिली है, उन सबके प्रति हम कृतज्ञ हैं।

डॉ. आफ़ताब आलम बेग
पाठ्यक्रम समन्वयक

हिन्दी साहित्य का इतिहास

इकाई 1 : हिन्दी साहित्य का इतिहास : काल विभाजन एवं नामकरण

रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 मूल पाठ : हिन्दी साहित्य का इतिहास : काल विभाजन एवं नामकरण

1.3.1 काल विभाजन के आधार

1.3.2 प्रमुख इतिहास लेखकों द्वारा प्रस्तुत काल विभाजन

1.3.2.1 डॉ. जार्ज ग्रियर्सन द्वारा प्रस्तुत काल विभाजन

1.3.2.2 मिश्र बंधुओं द्वारा प्रस्तुत काल विभाजन

1.3.2.3 आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा प्रस्तुत काल विभाजन

1.3.2.4 डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा प्रस्तुत काल विभाजन

1.3.2.5 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा प्रस्तुत काल विभाजन

1.3.2.6 डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त द्वारा प्रस्तुत काल विभाजन

1.3.2.7 आदर्श और सर्वप्रचलित काल विभाजन

1.4 पाठ-सार

1.5 पाठ की उपलब्धियाँ

1.6 शब्द संपदा

1.7 परीक्षार्थ प्रश्न

1.8 पठनीय पुस्तकें

1.1 प्रस्तावना

प्रिय छात्रो! मनुष्यों और समाजों के इतिहास के समान ही हर भाषा के साहित्य का अपना एक इतिहास होता है। इसमें उस साहित्य के उदय, विकास, परिवर्तनों तथा प्रवृत्तियों का विवरण शामिल होता है। अध्ययन की सुविधा के लिए इतिहास को कुछ सिलसिलेवार कालों में बाँटा जाता है। किसी काल विशेष का वर्णन, उसमें शामिल प्रवृत्तियों आदि के आधार पर किया जाता है। यह काल विभाजन प्रायः तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक परिस्थितियों के आधार पर किया जाता है। काल विभाजन में इतिहास-लेखक के अपने दृष्टिकोण का भी विशिष्ट महत्व है। इस इकाई में आप हिन्दी साहित्य के इतिहास के विभिन्न कालों में विभाजन का अध्ययन करेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

- हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल विभाजन की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

- काल विभाजन के विभिन्न आधारों के बारे में जान सकेंगे।
- विभिन्न इतिहासकारों द्वारा किए गए काल विभाजन से अवगत हो सकेंगे।
- आदर्श और प्रचलित काल विभाजन से परिचित हो सकेंगे।

1.3 मूल पाठ : हिन्दी साहित्य का इतिहास : काल विभाजन एवं नामकरण

हिन्दी साहित्य के इतिहास को भली प्रकार से समझने के लिए विभिन्न परिस्थितियों और प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए उसका काल विभाजन किया गया है। परिस्थितियों के बदलाव के साथ साहित्य भी धीरे-धीरे परिवर्तित होता है। अर्थात साहित्य में नई प्रवृत्तियों के पीछे तत्कालीन परिस्थितियाँ होती हैं। किसी काल विशेष की प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए उस काल का नामकरण किया जाता है। जब वह प्रवृत्ति कमजोर तथा अन्य प्रवृत्तियाँ प्रबल दिखाई पड़ने लगती हैं, तो फिर नई प्रवृत्ति के आधार पर उस अगले काल का नामकरण किया जाता है। इस प्रकार दोनों कालों के नाम अलग-अलग हो जाते हैं। हर काल का एक समय-सीमा निर्धारित की जाती है। इस प्रकार काल-विभाजन द्वारा एक-एक कड़ी जुड़कर समूचे इतिहास का रूप सामने आता है।

1.3.1 काल विभाजन के आधार

हिन्दी साहित्य के इतिहास को विभिन्न आधारों पर विभाजित किया जा सकता है। किसी शासक के नाम पर, या किसी कवि-साहित्यकार विशेष के नाम पर, या फिर किसी प्रवृत्ति की बहुलता के आधार पर काल विभाजन किया जा सकता है। अब प्रश्न यह है कि आखिर इसकी क्या आवश्यकता है? इसका उद्देश्य क्या है? इस संदर्भ में बाबू गुलाबराय का कथन है - ‘किसी भी विषय वस्तु का अध्ययन सुबोध और वैज्ञानिक बनाने के लिए उसे वर्गों या खंडों में विभाजित करना संगत रहता है। इतिहास में हम देश के स्थान पर कालखंडों का अध्ययन करते हैं।’ समूचे इतिहास के अलावा, उसके किसी कालखंड विशेष पर भी अलग-अलग पुस्तकें उपलब्ध हो सकती हैं। जैसे आचार्य रामचंद्र शुक्ल के ‘हिन्दी साहित्य का इतिहास’ समूचे हिन्दी साहित्य को समेटता है, जबकि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की पुस्तक ‘हिन्दी साहित्य का आदिकाल’ केवल आदिकाल तक सीमित है।

काल विभाजन के आधार के संबंध में मुख्यतः दो मत प्रचलित हैं। डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त का कथन है – ‘एक मत के अनुसार साहित्येतिहास का काल-विभाजन सर्वथा स्वतंत्र रूप में विशुद्ध साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर होना चाहिए, जबकि दूसरे मत के अनुसार साहित्य समाज की प्रवृत्तियों का प्रतिबिंब है, अतः तत्संबंधी समाज की विभिन्न परिस्थितियों विशेषतः राष्ट्रीय परिस्थितियों के आधार पर साहित्येतिहास का काल-विभाजन किया जाना चाहिए।’ इस विषय में यह ध्यान में रखना चाहिए कि एक प्रवृत्ति विभिन्न कालखंडों में हो सकती है और एक कालखंड में विभिन्न प्रवृत्तियाँ भी एक साथ हो सकती हैं। विभिन्न परंपराओं आदि का प्रभाव भी तत्कालीन साहित्य पर पड़ता है। हमारे लिए यह भी विचारणीय है कि किसी काल की परंपराओं और

परिस्थितियों को हिन्दी साहित्येतिहास में उसी सीमा तक शामिल किया जाना चाहिए, जितनी वे साहित्य के विकास में सहायक हों। डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त के अनुसार, 'साहित्य के इतिहास में परंपराओं एवं परिस्थितियों का आधार उसी सीमा तक ग्रहण किया जाना चाहिए जहाँ तक वे साहित्यिक प्रवृत्तियों के विकास को स्पष्ट करने में सहायक सिद्ध होती हैं, अन्यथा उनका असंबद्ध एवं स्वतंत्र विवरण अनावश्यक भर सिद्ध होगा।' असंबद्ध प्रवृत्तियों का वर्णन अनावश्यक होता है। वह इतिहास को बोझिल बना देता है, अतः उससे बचना चाहिए।

काल विभाजन का भी अपना एक लक्ष्य होता है। काल-विभाजन के लक्ष्य पर टिप्पणी करते हुए डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त लिखते हैं – 'काल-विभाजन का लक्ष्य अंततः इतिहास की विभिन्न परिस्थितियों के संदर्भ में उसकी घटनाओं एवं प्रवृत्तियों के विकास-क्रम को स्पष्ट करना होता है। साहित्येतिहास पर भी यह बात लागू होती है। साहित्य की अंतर्निहित चेतना, क्रमिक विकास, उसकी परंपराओं के उत्थान-पतन एवं उसकी विभिन्न प्रवृत्तियों के दिशा-परिवर्तन आदि के काल-क्रम को स्पष्ट करना ही काल-विभाजन का लक्ष्य होता है, अन्यथा उसकी कोई उपयोगिता नहीं है।' इसीलिए हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्रवृत्तियों के साथ-साथ विभिन्न कवियों-साहित्यकारों के जीवन में घटित घटनाओं का वर्णन भी मिलता है।

सामान्यतः किसी भी इतिहास के विकासक्रम को प्राचीन काल, मध्यकाल तथा आधुनिक काल में बाँटना सुविधाजनक रहता है। प्राचीन के अंतर्गत उदय काल तथा आधुनिक के अंतर्गत अपेक्षाकृत समकाल को शामिल किया जाता है। इनके बीच का विकास मध्यकाल में शामिल होता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल-विभाजन को हम देखते हैं तो उसमें प्राचीन काल को आदिकाल, मध्यकाल को भक्तिकाल और रीतिकाल नामक दो काल खंडों तथा उसके बाद आधुनिक काल के रूप में यह विभाजन मिलता है। इन कालों के नाम किसी ऐतिहासिक कालक्रम के आधार पर (आदिकाल), किसी आंदोलन के आधार पर (भक्तिकाल) तथा किसी साहित्यिक प्रवृत्ति के आधार पर (रीतिकाल और आधुनिक काल) रखे गए हैं। इनके अलावा आधुनिक काल के अंतर्गत छायावाद, प्रगतिवाद और प्रयोगवाद जैसे नाम विचारधारा के आधार पर तथा भारतेंदु युग और द्विवेदी युग जैसे नाम प्रभावशाली व्यक्ति (साहित्यकार) के नाम पर रखे गए हैं।

बोध प्रश्न

- हिन्दी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन किन-किन आधारों पर किया जाता है?
- हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्रवृत्तियों के साथ-साथ विभिन्न कवियों और साहित्यकारों के जीवन में घटनाओं का वर्णन क्यों मिलता है?

1.3.2 प्रमुख इतिहास लेखकों द्वारा प्रस्तुत काल विभाजन

आपको यह जानकारी रोचक लगेगी कि हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन की शुरूआत एक विदेशी इतिहास लेखक गार्सां द तासी ने की। इनकी फ्रेंच में लिखित पुस्तक का नाम है – इस्तवार द लितरेत्यूर ऐंदुई ऐ ऐंदुस्तानी (अर्थात, हिंदुई और हिंदुस्तानी साहित्य का इतिहास)। इसके पहले भाग का प्रकाशन 1839 ई. में हुआ तथा दूसरे का 1847 ई. में। इसमें काल-क्रम नहीं था। इसमें कवियों के नाम के वर्ण-क्रम के अनुसार विवरण दिया गया था। बाद में मौलवी करीमुद्दीन (तज़किरा-ई-शुअरा-ई-हिन्दी, 1848 ई.) तथा शिवसिंह सेंगर (शिवसिंह सरोज, 1878 ई.) की रचनाएँ भी प्रकाश में आईं, परंतु उन्हें पूरी तरह इतिहास के ग्रंथ नहीं माना जा सकता। इन ग्रंथों में काल-विभाजन का कोई स्पष्ट दृष्टिकोण दिखाई नहीं देता। इस संदर्भ में यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि इससे इनका महत्व कम नहीं हो जाता। वर्तमान संदर्भों में भले ही इनका कुछ भी महत्व न समझा जाए परंतु उस समय इनका महत्व अवश्य था। ये प्रारंभिक प्रयास थे और प्रारंभिक प्रयास का भी अपना विशिष्ट महत्व होता है। इन्होंने आगे के इतिहास के लेखन के लिए आधार सामग्री का काम किया।

1.3.2.1 डॉ. जार्ज ग्रियर्सन द्वारा प्रस्तुत काल विभाजन

हिन्दी साहित्य के इतिहास के काल विभाजन का पहला प्रयास डॉ. जार्ज ग्रियर्सन ने किया। उनके द्वारा विभिन्न कालों के नाम और समय का निर्धारण इस प्रकार है – (1) चारण काल (700-1300 ई.), (2) पंद्रहवीं शती का धार्मिक पुनर्जागरण, (3) जायसी की प्रेम कविता, (4) ब्रज का कृष्ण-संप्रदाय, (5) मुगल दरबार, (6) तुलसीदास, (7) रीति-काव्य, (8) तुलसीदास के अन्य परवर्ती, (9) अठारहवीं शताब्दी, (10) कंपनी के शासन में हिंदुस्तान, (11) महारानी विक्टोरिया के शासन में हिंदुस्तान।

डॉ. ग्रियर्सन के इस काल विभाजन को देखते ही लगता है कि यह बहुत अस्त-व्यस्त सा है। इसमें चारण काल को बाद में रामकुमार वर्मा ने भी स्वीकार किया, परंतु 1300 ई. के बाद सीधे पंद्रहवीं शती पर पहुँचने से बीच में कई वर्षों का क्या हुआ, इस बात का पता नहीं चलता। वर्तमान में पंद्रहवीं शती के धार्मिक पुनर्जागरण को भक्तिकाल के अंतर्गत स्वीकार किया जाता है। उस समय काल विभाजन का कोई विशेष आधार नहीं था। इसलिए कहीं काल, कहीं प्रवृत्ति, कहीं कवि विशेष, कहीं धार्मिक संप्रदाय आदि को मुख्य आधार मानकर यह काल विभाजन किया गया है। राजनीतिक परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए ‘कंपनी के शासन में हिंदुस्तान’ तथा ‘विक्टोरिया के शासन में हिंदुस्तान’ जैसे नाम भी मिलते हैं। यह प्रयास आज पूरी तरह स्वीकार नहीं किया जा सकता। परंतु इस प्रयास की सराहना किए बिना नहीं रहा जा सकता।

बोध प्रश्न

- ग्रियर्सन द्वारा प्रस्तुत काल विभाजन को आज क्यों स्वीकार नहीं किया जाता?

1.3.2.2 मिश्र बंधुओं द्वारा प्रस्तुत काल विभाजन

आगे चलकर काल विभाजन के संदर्भ में मिश्र बंधुओं (गणेश बिहारी मिश्र, श्याम बिहारी मिश्र, शुकदेव बिहारी मिश्र) ने प्रयास किया। डॉ.ग्रियर्सन की अपेक्षा मिश्र बंधुओं का काल विभाजन अधिक प्रौढ़ है। यह काल विभाजन मिश्र बंधुओं की पुस्तक 'मिश्र बंधु विनोद' (प्रथम तीन भाग - 1913 ई., चौथा भाग - 1934 ई.) में प्रस्तुत है जो इस प्रकार है :-

1. प्रारंभिक काल : पूर्व आरंभिक काल (700-1343 वि.),
   उत्तर आरंभिक काल (1344-1444 वि.)
2. माध्यमिक काल : पूर्व माध्यमिक काल (1445-1560 वि.),
   प्रौढ़ माध्यमिक काल (1561-1680 वि.)
3. अलंकृत काल : पूर्व अलंकृत काल (1681-1790 वि.),
   उत्तर अलंकृत काल (1791-1889 वि.)
4. परिवर्तन काल : 1890-1925 वि.
5. वर्तमान काल : 1926 वि. से अब तक

मिश्रबंधुओं द्वारा किए गए काल विभाजन के बारे में डॉ.गणपतिचंद्र गुप्त का कथन है कि 'जहाँ तक पद्धति की बात है, यह वर्गीकरण बहुत सम्यक एवं स्पष्ट है। किंतु तथ्यों की दृष्टि से इसमें भी अनेक विसंगतियाँ विद्यमान हैं। विभिन्न कालखंडों के नामकरण में भी एक जैसी पद्धति नहीं अपनाई गई है, जहाँ अन्य नामकरण विकासवादिता के सूचक हैं वहाँ 'अलंकृत काल' आंतरिक प्रवृत्ति पर आधारित है। अस्तु, इन दोषों के होते हुए भी, मिश्र बंधुओं का प्रयास पर्याप्त महत्वपूर्ण एवं प्रौढ़ है, इसमें कोई संदेह नहीं।' आज विभिन्न शोधों के आलोक में मिश्र बंधुओं का यह प्रयास अमान्य हो चुका है, परंतु तत्कालीन परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि यह एक महत्वपूर्ण प्रयास था।

1.3.2.3 आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा प्रस्तुत काल विभाजन

आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा प्रस्तुत काल विभाजन अत्यधिक तार्किक है। उसे आज भी सबसे अधिक मान्यता प्राप्त है - नाम भले ही अलग हों। आचार्य शुक्ल के कुछ तर्कों से असहमत हुआ जा सकता है। परंतु उनके कई तर्क ऐसे हैं जो आज भी अकाट्य हैं। आचार्य शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन इस प्रकार प्रस्तुत किया है –

आदिकाल	:	वीरगाथा काल	:	संवत 1050-1375 वि.
पूर्व मध्यकाल	:	भक्ति काल	:	संवत 1375-1700 वि.
उत्तर मध्यकाल	:	रीतिकाल	:	संवत 1700-1900 वि.
आधुनिक काल	:	गद्यकाल	:	संवत 1900-1984 वि.

आचार्य शुक्ल ने कुल 900 वर्षों के इतिहास को उपर्युक्त चार कालों में विभाजित किया है। उन्होंने अपने ग्रंथ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (1929 ई.) के आरंभ में 'प्रथम संस्करण का वक्तव्य' के अंतर्गत इस ग्रंथ की पद्धति पर अपने विचार प्रकट किए हैं। इस पद्धति में नामकरण के दो आधार हैं – 1. प्रचुरता और 2. प्रसिद्धि। वे लिखते हैं – 'इस पुस्तक में जिस पद्धति का अनुसरण किया गया है, उसका थोड़े में उल्लेख कर देना आवश्यक जान पड़ता है। पहले काल विभाग को लीजिए। जिस काल विभाग के भीतर किसी विशेष ढंग की रचनाओं की प्रचुरता दिखाई पड़ती है, वह एक अलग काल माना गया है और उसका नामकरण उन्हीं रचनाओं के स्वरूप के अनुसार किया गया है। इसी प्रकार काल का एक निर्दिष्ट सामान्य लक्षण बनाया जा सकता है। किसी एक ढंग की रचना की प्रचुरता से अभिप्राय यह है कि दूसरे ढंग की रचनाओं में से चाहे किसी (एक) ढंग की रचना को लें वह परिमाण में प्रथम के बराबर न होगी, यह नहीं कि और सब ढंगों की रचनाएँ मिलकर भी उसके बराबर न होंगी।'

शुक्ल जी ने आगे यह भी स्पष्ट किया है कि दूसरी बात है, ग्रंथों की प्रसिद्धि। 'किसी काल के भीतर जिस एक ही ढंग के बहुत अधिक ग्रंथ प्रसिद्ध चले आते हैं, उस ढंग की रचना उस काल के लक्षण के अंतर्गत मानी जाएगी, चाहे और दूसरे ढंग की अप्रसिद्ध और असाधारण कोटि की बहुत-सी पुस्तकें भी इधर-उधर कोनों में पड़ी मिल जाया करें। प्रसिद्धि भी किसी काल की लोकप्रवृत्ति की प्रतिनिधि है। सारांश यह कि इन दोनों बातों की ओर ध्यान रखकर काल विभागों का नामकरण किया गया है।'

आचार्य शुक्ल का काल विभाजन इतना सटीक है कि विभिन्न तर्कों द्वारा आलोचना करने वाले भी कोई विशिष्ट नामकरण या सीमा प्रस्तुत नहीं कर सके। थोड़ा-बहुत नामकरण में अंतर करते हुए घूम-फिरकर फिर वहीं आ गए। इसीलिए आचार्य शुक्ल के 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (1929 ई.) के संदर्भ में टिप्पणी करते हुए डॉ. बच्चन सिंह ने लिखा है कि 'आरंभ में ही कह दूँ कि न तो आचार्य रामचंद्र शुक्ल के 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' को लेकर दूसरा नया इतिहास लिखा जा सकता है और न उसे छोड़कर। नए इतिहास के लिए शुक्ल जी का इतिहास एक चुनौती है।' इस कथन से ही आचार्य शुक्ल के इतिहास के महत्व का ज्ञान हो जाता है।

छात्रो! आपने देखा होगा कि ग्रियर्सन ने अपने काल निर्धारण में 'ईस्वी सन' (ई.) का प्रयोग किया था जबकि उनके बाद के इतिहासकारों ने 'विक्रमी संवत' का प्रयोग किया है। विक्रमी संवत में से 57 वर्ष घटाकर आप ईस्वी सन प्राप्त कर सकते हैं।

बोध प्रश्न

- आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा प्रस्तुत विभाजन क्यों सटीक है?

1.3.2.4 डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा प्रस्तुत काल विभाजन

डॉ. रामकुमार वर्मा ने भी काल विभाजन प्रस्तुत किया है। उनके द्वारा प्रस्तुत काल विभाजन इस प्रकार है –

1. संधि काल : संवत 750-1000 वि.
2. चारण काल : संवत 1000-1375 वि.
3. भक्ति काल : संवत 1375-1700 वि.
4. रीति काल : संवत 1700-1900 वि.
5. आधुनिक काल : संवत 1900 वि. से अब तक

इस काल विभाजन को देखने से साफ पता चलता है कि इसमें 'संधिकाल' एक नया काल है। संधिकाल के अंतर्गत सिद्ध साहित्य शामिल है जिसे आचार्य शुक्ल ने सांप्रदायिक शिक्षा मात्र कहकर तवज्जो नहीं दी थी। (बाद की खोजबीन से पता चला कि सिद्धों के साहित्य की भी प्रासंगिकता है)। आचार्य शुक्ल के 'वीरगाथाकाल' की जगह यहाँ 'चारण काल' कहा गया है। शेष काल विभाजन आचार्य शुक्ल की ही भाँति है। चारण काल का समय भी लगभग आचार्य शुक्ल के ही समान है। डॉ. रामकुमार वर्मा का कथन है – 'साहित्य का इतिहास आलोचनात्मक शैली से अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। अतः ऐतिहासिक सामग्री के साथ कवियों एवं साहित्यिक प्रवृत्तियों की आलोचना करना मेरा दृष्टिकोण है।' इस कथन से पता चलता है कि डॉ. रामकुमार वर्मा के काल विभाजन का आधार मुख्य रूप से साहित्यिक प्रवृत्तियाँ रही हैं।

बोध प्रश्न

- रामकुमार वर्मा के काल विभाजन का आधार क्या है?

1.3.2.5 आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी द्वारा प्रस्तुत काल विभाजन

आचार्य शुक्ल के कई निष्कर्षों से असहमति जताते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपना इतिहास लिखा है। उन्होंने इस प्रकार काल विभाजन प्रस्तुत किया है-

1. आदिकाल : सन 1000-1400 ई.
2. भक्तिकाल : सन 1400-1650 ई.
3. रीतिकाल : सन 1650-1850 ई.
4. आधुनिक काल : सन 1850 ई. से अब तक

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के काल विभाजन में विशेष प्रकार की नवीनता के दर्शन नहीं होते; परंतु उनके कुछ तर्क और निष्कर्ष अवश्य ही अकाट्य हैं। आदिकाल के संदर्भ में टिप्पणी करते हुए उन्होंने कहा – 'यह काल भारतीय विचारों के मंथन का काल है और इसीलिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।' सिद्ध साहित्य, नाथ साहित्य और जैन-अपभ्रंश-चरित काव्यों आदि को आचार्य शुक्ल ने 'सांप्रदायिक शिक्षा मात्र' कहा था। इस पर आचार्य द्विवेदी

ने विरोध जताते हुए कहा है – 'धार्मिक साहित्य होने मात्र से कोई रचना साहित्यिक कोटि से अलग नहीं की जा सकती।' इसी तरह भक्तिकाल के संदर्भ में आचार्य शुक्ल के निष्कर्षों से असहमत होते हुए उन्होंने लिखा – 'ज़ोर देकर कहना चाहता हूँ कि अगर इस्लाम नहीं आया होता, तो भी इस साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा आज है।' ध्यान रखा जाना चाहिए कि उनके काल विभाजन का आधार तार्किकता को लिए हुए प्रवृत्ति है। उन्होंने मुख्यतः प्रवृत्ति को ही आधार मानकर अपना काल विभाजन प्रस्तुत किया है।

1.3.2.6 डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त द्वारा प्रस्तुत काल विभाजन

डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त ने विभिन्न तर्कों के माध्यम से अपने काल विभाजन को प्रस्तुत करते हुए उसे सही कहा है। उनके द्वारा प्रस्तुत काल विभाजन इस प्रकार है –

1. आदिकाल : सन 1184-1350 ई.
2. पूर्व मध्यकाल : सन 1350-1600 ई.
3. उत्तर मध्यकाल : सन 1600-1857 ई.
4. आधुनिक काल : सन 1857 से अब तक

उन्होंने अपने प्रस्तावित नामकरण के लिए तर्क भी दिए हैं। जहाँ तक आदिकाल का प्रश्न है तो वे इसे प्रारंभिक काल कहना चाहते थे परंतु, 'आदिकाल' नाम अत्यधिक प्रसिद्ध होने के कारण उसे 'आदिकाल' कहना ही उचित समझा। वे (गणपतिचंद्र गुप्त) लिखते हैं, 'वैसे प्राचीन काल, प्रारंभिक काल, आदिकाल में तात्विक दृष्टि से विशेष अंतर भी नहीं पड़ता, अतः हम भी यदि इनमें से 'आदिकाल' को ही स्वीकार कर लें तो इससे पाठकों को सुविधा रहेगी।'

साहित्येतिहास जैसे महत्वपूर्ण विषय पर लेखन करते समय पाठकों की सुविधा-असुविधा पर ध्यान देना उचित नहीं जान पड़ता। यदि इस प्रकार देखा जाए तो 'पूर्व मध्यकाल' के लिए 'भक्ति काल' तथा 'उत्तर मध्यकाल' के लिए 'रीति काल' जैसे नामों का प्रयोग स्वीकृत है। तो फिर यहाँ भी पाठकों की सुविधा को देखा जाना चाहिए था और 'पूर्व मध्यकाल' के लिए 'भक्ति काल' तथा 'उत्तर मध्यकाल' के लिए 'रीति काल' शब्द का प्रयोग किया जाना चाहिए था, परंतु ऐसा नहीं किया गया है। इस संदर्भ में गणपतिचंद्र गुप्त लिखते हैं कि 'जहाँ तक पूर्व मध्यकाल एवं उत्तर मध्यकाल की बात है, इनके लिए भी क्रमशः भक्ति काल एवं रीति काल नाम रूढ़ हो गए हैं। किंतु इनसे इन काल खंडों की एक-एक प्रवृत्ति को ही प्रमुखता मिल जाती है, शेष तथ्य को ध्यान में रखते हुए हम इन्हें भक्ति काल और रीति काल नाम से संबोधित करने का अनुमोदन नहीं कर सकते, भले ही इससे पाठकों को थोड़ी असुविधा ही क्यों न हो।' जहाँ तक आधुनिक काल के प्रारंभ का प्रश्न है तो उसे 1857 ई. से मानना न्यायोचित है। इसका कारण यह है कि 1857 ई. का वर्ष भारतीय इतिहास में बहुत ही महत्वपूर्ण है। यहीं से भारतेंदु युग की शुरूआत भी मानी जाती है।

भारतेंदु का जन्मकाल 1850 है और लगभग 7-8 वर्ष की अवस्था में उन्होंने अपनी प्रथम कविता भी लिखी थी। इसलिए आधुनिक काल (भारतेंदु युग) को 1857 ई. से मानने में कोई समस्या नहीं होनी चाहिए।

जहाँ तक डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त द्वारा प्रस्तुत काल विभाजन के आधार का प्रश्न है, तो इन्होंने भी प्रवृत्तियों को ही अपने काल विभाजन का आधार बनाया है। वे लिखते हैं – 'वस्तुतः हमारा लक्ष्य सांस्कृतिक परंपराओं एवं बाह्य परिस्थितियों के प्रकाश में साहित्य की प्रवृत्तियों का अनुशीलन करना है, अतः काल विभाजन में भी इसी तथ्य को ध्यान में रखना उचित होगा।'

प्रिय छात्रो! हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि अब आधुनिक काल में भी कई विभाग बन गए हैं। इसीलिए आज एक आदर्श और सर्वप्रचलित काल विभाजन की आवश्यकता है।

1.3.2.7 आदर्श और सर्वप्रचलित काल विभाजन

हिन्दी साहित्य के विभिन्न इतिहास लेखकों द्वारा प्रस्तुत काल विभाजन का अनुशीलन करने के बाद एक आदर्श और सर्वप्रचलित काल विभाजन की आवश्यकता महसूस की गई। इस दिशा में बड़ी सीमा तक स्वीकार्य प्रयास डॉ. नगेंद्र एवं डॉ. हरदयाल द्वारा संपादित पुस्तक 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में किया गया, जो इस प्रकार है -

आदिकाल	:	सातवीं शती के मध्य से चौदहवीं शती के मध्य तक	
भक्ति काल	:	चौदहवीं शती के मध्य से सत्रहवीं शती के मध्य तक	
रीति काल	:	सत्रहवीं शती के मध्य से उन्नीसवीं शती के मध्य तक	
आधुनिक काल	:	उन्नीसवीं शती के मध्य से अब तक	
	:	पुनर्जागरण काल (भारतेंदु काल)	: 1857-1900 ई.
	:	जागरण काल (द्विवेदी काल)	: 1900-1918 ई.
	:	छायावाद काल	: 1918-1938 ई.
	:	छायावादोत्तर काल	
		प्रगति-प्रयोग काल	: 1938-1953 ई.
		नवलेखन काल	: 1953 ई. से अब तक

इनमें रीतिकाल के उपविभागों के नाम को लेकर कुछ मतभेद हैं। डॉ. बच्चन सिंह ने इसे दो श्रेणियों में बाँटा है। वे लिखते हैं – 'रीति काल का संगत उपविभाजन करने के लिए उसे 'बद्धरीति' और 'मुक्तरीति' की श्रेणियों में बाँटना होगा। मुक्तरीति का अभिप्राय है रीति से मुक्त होते हुए भी रीति को लिए रहना, जैसे मुक्तछंद छंद से मुक्त होते हुए भी छंदत्व रहित नहीं होता।' इसी प्रकार देखें तो जिसे छायावाद कहा जाता है लगभग उसी काल को गद्य के संदर्भ में 'शुक्ल युग' तथा छायावादोत्तर काल को 'शुक्लोत्तर युग' कहा जाता है।

छात्रो! 'आधुनिक काल' में मुद्रण और संचार की क्रांति के कारण तथा देशकाल की परिस्थितियों के तेजी से बदलने के कारण जल्दी-जल्दी नई-नई प्रवृत्तियों ने जन्म लिया। इसलिए

यह जरूरी है कि आधुनिक काल से पद्य और गद्य का अलग-अलग काल विभाजन किया जाए। आधुनिक काल के काल विभाजन को हम इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं –

आधुनिक काल

पद्य →

भारतेंदु युग (1857-1900 ई.)
द्विवेदी युग (1900-1918 ई.)
छायावाद युग (1918-1936 ई.)
प्रगतिवाद (1936-1943 ई.)
प्रयोगवाद (1943-1951 ई.)
नई कविता (1951-1960 ई.)
साठोत्तरी/समकालीन कविता (1960-अब तक)

गद्य ↓

पुनर्जागरण/ जागरण काल (1857-1900 ई.)
जागरण-सुधार काल (1900-1918 ई.)
शुक्ल युग (1918-1936 ई.)
प्रगतिवादी गद्य (1936-1943 ई.)
प्रयोगवादी गद्य (1943-1951 ई.)
नई कहानी/ नया उपन्यास आदि (1951-1960 ई.)
साठोत्तरी/ समकालीन गद्य (1960-अब तक)

इस काल विभाजन को देखकर सहमत-असहमत हुआ जा सकता है परंतु इसे अधिक प्रामाणिक काल विभाजन कहा जा सकता है। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि वर्तमान में (1990 ई. के बाद के साहित्य में) विविध 'विमर्श' चल रहे हैं। इनके अपने उद्देश्य हैं तथा इनकी अपनी सीमाएँ भी हैं। वर्तमान के प्रमुख विमर्श हैं - स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, अल्पसंख्यक (मुस्लिम) विमर्श, कृषक विमर्श, थर्ड जेंडर विमर्श और हरित विमर्श आदि। इनको दृष्टि में रखते हुए समकालीन साहित्य का काल विभाजन नई तरह से भी प्रस्तुत किया जा सकता है।

1.4 पाठ-सार

हिन्दी साहित्य के इतिहास को विभिन्न कालों में विभाजित किया जाता है। इन अलग-अलग कालों के अपने विशेष नाम हैं। इतिहास के इस तरह अध्ययन को 'काल विभाजन' तथा 'नामकरण' कहा जाता है। काल विभाजन के आम तौर पर दो आधार होते हैं। एक, साहित्यिक प्रवृत्तियाँ और दो, सामाजिक परिस्थितियाँ। वास्तव में ये दोनों परस्पर जुड़े हुए होते हैं। परिस्थितियों के बदलने से जनता की मानसिकता बदलती है और मानसिकता के बदलने से साहित्य की प्रवृत्तियाँ बदलती हैं। हिन्दी साहित्य के काल विभाजन और नामकरण में ये दोनों ही

आधार अपनाए गए हैं। अलग-अलग इतिहासकारों ने अलग-अलग प्रकार से वर्गीकरण किया है। हिन्दी साहित्य के आरंभिक इतिहासकार गार्सां द तासी, मौलवी करीमुद्दीन तथा शिवसिंह सेंगर ने इस दिशा में कोई प्रयास नहीं किया। लेकिन जॉर्ज ग्रियर्सन, मिश्र बंधुओं, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ. रामकुमार वर्मा, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और डॉ. गणपति चंद्र गुप्त जैसे लेखकों ने अलग-अलग कालों का सीमा निर्धारण और नामकरण किया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के काल विभाजन को उनके बाद के इतिहासकारों ने भी थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ स्वीकार कर लिया। हिन्दी साहित्य के आरंभिक काल को शुक्ल जी ने 'वीरगाथा काल' कहा था जिसके स्थान पर अब व्यापक रूप में 'आदिकाल' नाम का प्रयोग होता है। पूर्व मध्यकाल और उत्तर मध्यकाल को उन्होंने क्रमशः 'भक्तिकाल' और 'रीतिकाल' का नाम दिया था जो इसी रूप में बाद के इतिहासकारों द्वारा स्वीकृत हुआ। आधुनिक काल को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'गद्य काल' भी कहा था क्योंकि इसी काल में हिन्दी गद्य का उदय और विकास हुआ। लेकिन बाद के इतिहासकार इसे 'आधुनिक काल' कहना ही अधिक व्यावहारिक समझते हैं।

इसी प्रकार इन कालों के कुछ उप-खंड भी हैं। भक्तिकाल को निर्गुण भक्तिकाव्य और सगुण भक्तिकाव्य के रूप में विभाजित किया जाता है। इनमें भी निर्गुण काव्य के अंतर्गत संत मत और प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा जैसे दो भाग हैं। सगुण भक्तिकाव्य के अंतर्गत भी कृष्ण भक्ति और राम भक्ति नाम की दो शाखाएँ हैं। रीतिकाल का विभाजन भी प्रवृत्तियों के आधार पर किया जाता है – रीतिसिद्ध, रीतिबद्ध और रीतिमुक्त काव्य।

आधुनिक काल में जहाँ एक ओर गद्य तथा पद्य का विभाजन है वहीं दूसरी ओर इसके कालखंडों को प्रमुख साहित्यकारों अथवा प्रमुख प्रवृत्तियों के आधार पर अलग-अलग नाम दिए गए हैं। जैसे – भारतेंदु युग, द्विवेदी युग, छायावाद युग, छायावादोत्तर युग, प्रगति-प्रयोग काल, नवलेखन काल, समकालीन लेखन काल आदि।

1.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि –

1. हिन्दी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन करते समय विभिन्न आधारों, प्रवृत्तियों, परिस्थितियों को ध्यान में रखा गया है। परिस्थितियों के अनुसार प्रवृत्तियाँ भी समय-समय पर बदलती रहती हैं। इसका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ता है।
2. काल विभाजन के विभिन्न आधार हैं। जैसे - ऐतिहासिक कालक्रम, प्रवृत्ति, प्रभावशाली व्यक्तित्व और मुख्य विधा।

3. विभिन्न साहित्येतिहास लेखकों ने अपने-अपने हिसाब से काल विभाजन प्रस्तुत किया है। इनमें डॉ. जॉर्ज ग्रियर्सन, मिश्र बंधु, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, डॉ. रामकुमार वर्मा, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त आदि इतिहास लेखक प्रमुख हैं।
4. हिन्दी साहित्य के इतिहास के विभिन्न कालों के वर्तमान में सर्वाधिक स्वीकृत नाम इस प्रकार हैं : आदिकाल, भक्तिकाल (पूर्व मध्यकाल), रीतिकाल (उत्तर मध्यकाल) और आधुनिक काल।
5. आधुनिक काल के तहत उप-विभाग इस प्रकार हैं – भारतेंदु युग, द्विवेदी युग, छायावाद युग, प्रगतिवाद युग, प्रयोगवाद युग, नवलेखन काल, साठोत्तरी (समकालीन) साहित्य।
6. 1990 ई. के बाद आधुनिक हिन्दी साहित्य में विभिन्न विमर्श ज़ोर शोर से उभरे हैं। जैसे- स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी (जनजाति) विमर्श, किन्नर विमर्श, हरित विमर्श, किसान विमर्श आदि।

1.6 शब्द संपदा

1. अनुशीलन = गंभीर अध्ययन, चिंतन-मनन
2. चारण = दरबारी कवि, भाट
3. नामकरण = नाम रखना
4. परिस्थिति = हालात
5. प्रवृत्ति = प्रवाह, बहाव, झुकाव, ट्रेंड
6. विचारधारा = विचार की पद्धति, सिद्धांत, आइडियोलॉजी

1.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग <u>500</u> शब्दों में दीजिए।

1. डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त द्वारा प्रस्तुत काल विभाजन पर विचार कीजिए।
2. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के तर्कों के आधार पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल के 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' की आलोचना कीजिए।
3. आचार्य रामचंद्र शुक्ल का काल विभाजन प्रस्तुत करते हुए अपने विचार प्रकट कीजिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. काल विभाजन के विभिन्न आधारों पर प्रकाश डालिए।
2. डॉ.रामकुमार वर्मा द्वारा प्रस्तुत काल विभाजन पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए

1. 'आधुनिक काल' को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने क्या कहा? ( )
   (अ) पद्य काल (आ) गद्य काल (इ) अलंकृत काल (ई) सिद्ध काल
2. किसके काल विभाजन में 'मुगल दरबार' शीर्षक से एक काल बनाया गया है? ( )
   (अ) रामचंद्र शुक्ल (आ) हजारी प्रसाद द्विवेदी (इ) रामकुमार वर्मा (ई) ग्रियर्सन
3. हिन्दी साहित्य के पहले इतिहासकार कौन हैं? ( )
   (अ) गार्साँ द तासी (आ) रामचंद्र शुक्ल (इ) मिश्र बंधु (ई) ग्रियर्सन
4. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के लेखक कौन हैं? ( )
   (अ) गार्साँ द तासी (आ) रामचंद्र शुक्ल (इ) मिश्र बंधु (ई) ग्रियर्सन

II रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

1. सिद्ध साहित्य, नाथ साहित्य और जैन-अपभ्रंश-चरित काव्यों को आचार्य शुक्ल ने .... कहा था।
2. रामकुमार वर्मा के काल विभाजन का आधार .... रही हैं।
3. आदर्श और सर्वप्रचलित काल विभाजन में छायावादोत्तर काल को .... कहा जाता है।
4. आदिकाल के लिए रामकुमार वर्मा ने .... काल कहा था।
5. गार्साँ द तासी की पुस्तक का नाम .... है।

III सुमेल कीजिए

i) मुगल दरबार काल	(अ) रामचंद्र शुक्ल
ii) संधि काल	(आ) मिश्र बंधु
iii) आदिकाल	(इ) ग्रियर्सन
iv) अलंकृत काल	(ई) रामकुमार वर्मा

1.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी
2. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, रामकुमार वर्मा
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास, (सं) नगेंद्र, हरदयाल
5. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह
6. हिन्दी साहित्य की भूमिका, हजारी प्रसाद द्विवेदी
7. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (प्रथम खंड), गणपतिचंद्र गुप्त
8. हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास, बाबू गुलाबराय

इकाई 2 : आदिकालीन साहित्य : पृष्ठभूमि और सामान्य विशेषताएँ

रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 मूल पाठ : आदिकालीन साहित्य : पृष्ठभूमि और सामान्य विशेषताएँ

2.3.1 आदिकालीन साहित्य की पूर्व पीठिका

2.3.1.1 हिन्दी साहित्य का आरंभ

2.3.1.2 हिन्दी साहित्य का प्रथम कवि

2.3.1.3 आदिकाल का स्वरूप

2.3.2 आदिकाल की पृष्ठभूमि

2.3.2.1 राजनीतिक परिस्थिति

2.3.2.2 सामाजिक परिस्थिति

2.3.2.3 धार्मिक परिस्थिति

2.3.2.4 आर्थिक परिस्थिति

2.3.2.5 मिश्रित-सांस्कृतिक प्रक्रिया

2.3.3 आदिकाल : नामकरण की समस्या

2.3.4 आदिकाल की सामान्य विशेषताएँ

2.4 पाठ-सार

2.5 पाठ की उपलब्धियाँ

2.6 शब्द संपदा

2.7 परीक्षार्थ प्रश्न

2.8 पठनीय पुस्तकें

2.1 प्रस्तावना

साहित्यकार समाज में रहता है। इसलिए समाज में घटित होने वाली घटनाओं का उसके साहित्य पर सीधा असर पड़ता है। कवि या लेखक समाज में जो कुछ देखता है, उसे ही अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त करता है। हिन्दी साहित्य का आदिकाल भी इसका अपवाद नहीं है। यह वह समय था जब हिन्दी साहित्य का इतिहास धीरे-धीरे बन रहा था। यदि हम इसे 'हिन्दी साहित्य का निर्माण काल' कहें तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

2.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रो! इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

- आदिकाल के स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।
- आदिकाल के रचनाकारों को प्रभावित करने वाली पृष्ठभूमि तथा परिस्थितियों को जान सकेंगे।
- आदिकाल के नामकरण के आधार एवं उसके औचित्य को समझ सकेंगे।
- आदिकाल के सीमा निर्धारण पर विचार कर सकेंगे।
- आदिकाल की प्रवृत्तियों से परिचित हो सकेंगे।

2.3 मूल पाठ : आदिकालीन साहित्य : पृष्ठभूमि और सामान्य विशेषताएँ

2.3.1 आदिकालीन साहित्य की पूर्व पीठिका

हिन्दी साहित्य का आरंभ स्वाभाविक रूप से हिन्दी भाषा के उदय (1000 ई.) के पश्चात माना जा सकता है, लेकिन विद्वान इस विषय पर एकमत नहीं हैं। भाषावैज्ञानिक मान्यता के अनुसार संस्कृत की भाषाधारा में पालि और प्राकृत के बाद 500 ई. से 1000 ई. का काल अपभ्रंश का काल है। अपभ्रंश के अनेक साहित्यिक और सामान्य बोलचाल में प्रचलित रूप थे जिनसे विभिन्न आधुनिक आर्य भाषाओं का जन्म 1000 ई. के आस-पास हुआ। हिन्दी से यहाँ अभिप्राय पाँच उपभाषाओं (पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी, पहाड़ी और बिहारी) के सम्मिलित भाषामंडल से है। आज इसके तहत लगभग 20 बोलियाँ शामिल हैं। (सामाजिक और साहित्यिक शैली के रूप में उर्दू को भी इसमें शामिल किया जाना चाहिए तथा दक्खिनी हिन्दी के नाम से जाना जाने वाला एक अन्य भाषा रूप भी हिन्दी का ही व्यवहृत रूप है, परंतु उर्दू और दक्खिनी जैसे पृथक भाषाओं के साहित्य के इतिहास का अध्ययन प्रायः अलग से किया जाता है।)

2.3.1.1 हिन्दी साहित्य का आरंभ

हिन्दी भाषा के उदय के संबंध में इस स्पष्ट मान्यता के बावजूद अनेक विद्वान हिन्दी साहित्य का जन्म 1000 ई. से पहले मानने के पक्ष में हैं क्योंकि उनका मत है कि हिन्दी के जन्म के लक्षण इस समय से कई शताब्दी पूर्व प्रकट होने लगे थे। यही कारण है कि पंडित चंद्रधरशर्मा गुलेरी अपभ्रंश के उत्तर भाग को 'पुरानी हिन्दी' कहते हैं और उसके साहित्य को भी हिन्दी का आरंभिक साहित्य मानने के पक्ष में हैं। इसके उत्तर में यह पूछा जा सकता है कि क्या समान तर्क के आधार पर पूर्व की संस्कृत भाषा को छहगुनी पुरानी हिन्दी कहकर हिन्दी साहित्य में शामिल किया जा सकता है? उत्तर स्पष्ट है – नहीं। अतः उत्तर अपभ्रंश या अवहट्ठ के बाद के साहित्य से ही हिन्दी साहित्य का उदय स्वीकार किया जाना चाहिए।

अतः यह कहना उचित होगा कि हिन्दी भाषा का जन्म 1000 ई. के आस-पास हुआ तथा हिन्दी साहित्य उसके बाद 12 वीं शताब्दी के मध्य में आरंभ हुआ। इससे पहले के साहित्य को 'संक्रमण काल' का साहित्य कहा जा सकता है जिसके उदाहरण खास तौर पर सिद्ध साहित्य में प्राप्त होते हैं।

बोध प्रश्न

- हिन्दी भाषा का उदय कब से माना जाता है?

- पुरानी हिन्दी से क्या अभिप्राय है?
- 'संक्रमण काल' का साहित्य किसे कहा जाता है?

2.3.1.2 हिन्दी साहित्य का प्रथम कवि

हिन्दी के प्रथम साहित्यकार के रूप में जिन नामों का उल्लेख किया जाता है उनमें सर्वप्रथम कोई अज्ञात कवि पुष्य (पुंड) हैं। इन्हें सातवीं-आठवीं शताब्दी के लगभग विद्यमान माना गया है। परंतु इनकी कोई प्रामाणिक रचना उपलब्ध नहीं होती है। संभवतः पुष्य या पुंड अपभ्रंश के कवि पुष्यदंत का ही नाम हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के इतिहास के अनुसार आदिकाल के अपभ्रंश विषयक खंड का अवलोकन करने से जैन आचार्य देवसेन प्रथम कवि प्रतीत होते हैं, परंतु वे अपभ्रंश के कवि हैं, हिन्दी के नहीं। वीरगाथा काल की प्रथम रचना के रूप में 1123 ई. में तथाकथित रूप से रचित 'खुमाण रासो' का उल्लेख किया गया है जिसके रचनाकार दलपति विजय है। परंतु यह मत भी स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि बाद के इतिहासकारों ने यह सिद्ध किया है कि 'खुमाण रासो' का रचनाकाल वास्तव में 18 वीं शताब्दी है।

डॉ. रामकुमार वर्मा और डॉ. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' ने हिन्दी साहित्य का आरंभ 8वीं शताब्दी के सिद्ध कवि सरहपा (769 ई.) से माना है और राहुल सांकृत्यायन द्वारा संपादित 'दोहाकोश' से उद्धरण देकर यह सिद्ध किया है कि सरहपा की रचनाओं में अपभ्रंश व्याकरण के बावजूद तत्समता की प्रवृत्ति तथा हिन्दी के रूप की झलक है और यह परंपरा चौरासी सिद्धों की रचनाओं में विकसित हुई है। लेकिन डॉ.गणपतिचंद्र गुप्त ने इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाया है कि सराहपा की रचनाएँ अपने मूलरूप में कहीं उपलब्ध नहीं हैं। 'दोहाकोश' में प्रस्तुत पाठ उनके तिब्बत में मिले तिब्बती अनुवाद का राहुल सांकृत्यायन द्वारा किया गया अनुवाद मात्र है। अतः सरहपा को हिन्दी का प्रथम कवि नहीं माना जा सकता।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने पृथ्वीराज चौहान के समकालीन कवि चंदबरदाई को हिन्दी भाषा का आदिकवि कहा है और साथ ही यह भी माना है कि चंदबरदाई अपभ्रंश का अंतिम कवि अधिक है और हिन्दी का आदिकवि कम। उनके 'पृथ्वीराज रासो' (1200 ई.) को 'हिन्दी का प्रथम महाकाव्य' होने का गौरव प्राप्त है। डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त ने जैन कवि शालिभद्र सूरि द्वारा रचित 'भरतेश्वर बाहुबली रास' (1184 ई.) को हिन्दी साहित्य की प्रथम उपलब्ध कृति माना है जो 'पृथ्वीराज रासो' से पूर्ववर्ती है। इस कृति का पाठ अविकृत रूप में उपलब्ध है तथा गुजराती, राजस्थानी और हिन्दी तीनों में मान्य है। इसे हिन्दी जैन साहित्य की रास परंपरा का पहला काव्य माना गया है जिसमें हिन्दी की उदयकालीन भाषिक प्रवृत्तियाँ देखीं जा सकती हैं।

इस आधार पर शालिभद्र सूरि को हिन्दी का प्रथम साहित्यकार और उनकी 1184 ई. में रचित कृति 'भरतेश्वर बाहुबली रास' को हिन्दी का प्रथम काव्य माना जा सकता है, जबकि हिन्दी

के 'आदि महाकवि' होने का गौरव चंदबरदाई को प्राप्त है तथा 1200 ई. के आस-पास रचित उनकी रचना 'पृथ्वीराज रासो' 'हिन्दी का प्रथम महाकाव्य' है। इसके बावजूद यह भी स्मरणीय है कि 1184 ई. से पूर्व विद्यमान कुछ काव्य प्रवृत्तियों (अपभ्रंश साहित्य और सिद्ध साहित्य) का भी उल्लेख हिन्दी साहित्य के इतिहास में किया जाता है जो आदिकाल की प्रवृत्तियों को समझने में सहायक हैं।

बोध प्रश्न

- हिन्दी के प्रथम साहित्यकार के रूप में किन विद्वानों का उल्लेख किया जाता है?
- 'भरतेश्वर बाहुबली रास' की रचना किसने और कब की?
- हिन्दी का पहला महाकाव्य कौन सा है और उसके रचनाकार कौन हैं?

2.3.1.3 आदिकाल का स्वरूप

'आदिकाल' हिन्दी साहित्य के आरंभ का काल है। 'आदि' का अर्थ है – आरंभ; और 'काल' का अर्थ है – समय। अर्थात यह वह समय था जहाँ से हिन्दी साहित्य की शुरूआत मानी जाती है। समस्या यह है कि उस समय भारतीय समाज संकट और बदलाव के दौर से गुजर रहा था। इसीलिए इस काल में परस्पर विरोधी तत्व दिखते हैं। राजनीतिक उथल-पुथल, दो संस्कृतियों का मेल, अशांति-बिखराव आदि इस काल के साहित्य में दृष्टिगोचर होते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि 'जिस समय हमारे हिन्दी साहित्य का अभ्युदय होता है, वह लड़ाई-भिड़ाई का समय था, वीरता के गौरव का समय था।'

बोध प्रश्न

- आदिकाल के संबंध में रामचंद्र शुक्ल ने क्या लिखा है?

2.3.2 आदिकाल की पृष्ठभूमि

आदिकाल की पृष्ठभूमि बहुत व्यापक थी। उस समय की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक परिस्थितियों ने पृष्ठभूमि के रूप में इस साहित्य पर व्यापक प्रभाव डाला। इसका परिणाम इस साहित्य की अनेक प्रवृत्तियों के रूप में सामने आया।

2.3.2.1 राजनीतिक परिस्थिति

यह महत्वपूर्ण और द्रष्टव्य बिंदु है कि साहित्यिक रचनाओं के पीछे ऐतिहासिक शक्तियों और सामाजिक संस्थाओं का योगदान होता ही है। काव्य सामाजिक परिस्थितियों के बीच रचा जाता है। इसलिए जो जटिलता किसी युग में होती है, वही जटिलता काव्य में भी दीखती है। इसका अर्थ यह है कि काव्य की जटिलता को भली प्रकार समझने के लिए उस युग की जटिलता को समझना जरूरी होता है। ध्यान रहे कि आदि काल की राजनीतिक परिस्थिति वर्धन साम्राज्य के पतन से आरंभ होती है। सम्राट हर्षवर्धन के समय से ही उत्तरी भारत पर आक्रमण शुरू हो गए

थे। आठवीं शताब्दी से पंद्रहवीं शताब्दी ईस्वी तक के भारतीय इतिहास की राजनीतिक परिस्थिति में भारत में धीरे-धीरे इस्लामिक सत्ता के उदय की कथा शामिल है।

आदिकाल का भारत देशी और विदेशी शक्तियों के युद्धों में फँसा हुआ था। यही समय आदिकाल का भी है। इस युद्ध प्रभावित जीवन में कहीं भी संतुलन नहीं था। बाहरी आक्रमण हो रहे थे। दुर्भाग्य यह रहा कि हिंदू राजा आपस में ही लड़ रहे थे। पृथ्वीराज चौहान, जयचंद, परमर्दिदेव आदि की पारस्परिक लड़ाइयाँ अंतहीन कथाएँ बनती चली गईं। अराजकता, गृहकलह, विद्रोह, आक्रमण तथा युद्ध के वातावरण में कुछ कवियों ने आध्यात्मिक जीवन की बातें कीं, तो कुछ अन्य ने मरते-मरते भी जीवन का रस लेने पर ज़ोर दिया। एक वर्ग ऐसे कवियों का भी उभरा जिन्होंने 'तलवार' के गीत गाकर गौरव के साथ जीने की प्रेरणा दी। डॉ. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' ने माना है कि मुस्लिम आक्रमण का प्रभाव "मुख्यतः पश्चिम एवं मध्यप्रदेश पर ही पड़ा था। इन्हीं क्षेत्रों की जनता युद्धों और अत्याचारों से विशेषतः आक्रांत हुई थी। यही वह क्षेत्र था, जहाँ भाषा का विकास हो रहा था। अतः इस काल का समस्त हिन्दी साहित्य आक्रमण और युद्ध के प्रभावों की मनःस्थितियों का प्रतिफलन है।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास. सं. नगेंद्र)। इसी के कारण इस काल के साहित्य में कोई एक प्रवृत्ति इतनी प्रमुख नहीं रह सकी कि दूसरी सब प्रवृत्तियाँ उसके आगे गौण हो जातीं।

बोध प्रश्न

- राजनैतिक दृष्टि से आदिकाल की आरंभिक और अंतिम सीमाएँ क्या हैं?

2.3.2.2 सामाजिक परिस्थिति

आदिकाल में सामाजिक वातावरण बहुत खराब हो चुका था। जनता पूरी तरह से त्रस्त थी। राजा लोग निजी अहंकार के कारण आपस में युद्ध करते रहते थे। इन सबके बीच जनता पीसी जाती थी। वैदिक यज्ञ, मूर्ति पूजा, जैन व बौद्ध उपासना पद्धतियाँ एक साथ चल रही थीं। सातवीं शताब्दी के साथ देश की सामाजिक परिस्थितियाँ बदलीं। इतिहासकारों का मानना है कि यह ऐसा समय था जब "जनता शासन और धर्म दोनों ओर से निराश्रित होती जा रही थी। युद्धों के समय उसे बुरी तरह पीसा जाता था। वह ईश्वर की ओर दौड़ती थी तो सर्वत्र भ्रम और असहायता की स्थिति मिलती थी। जाति-पाँति के बंधन कड़े होते जा रहे थे। नारी भी भोग्या-मात्र रह गई थी। वह क्रय-विक्रय और अपहरण की वस्तु बनती जा रही थी।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास. सं. नगेंद्र)।

बोध प्रश्न

- आदिकाल का सामाजिक वातावरण कैसा था?

2.3.2.3 धार्मिक परिस्थिति

धार्मिक दृष्टि से हिन्दी साहित्य के आदिकाल से पहले छठी शताब्दी तक भारत में वैदिक धर्म, मूर्तिपूजक, पौराणिक धर्म, जैन धर्म और बौद्ध धर्म के बीच अच्छा समन्वय था। सातवीं

शताब्दी में एक ओर तो बौद्ध धर्म कमजोर पड़ा और दूसरी ओर जैन तथा शैव मत के प्रति जनता का रुझान बढ़ा। इसी काल में दक्षिण भारत के आलवार-नायन्मार संतों ने भक्ति आंदोलन की शुरूआत की; जो धीरे-धीरे उत्तर भारत में भी व्याप्त होता गया। फलस्वरूप वैष्णव और शैव आंदोलन नई गति के साथ समाज में फलने लगे। कुल मिलाकर यह समय भारतीय समाज में अनेक धार्मिक विश्वासों के आपसी टकराव का समय था। आदिकाल के साहित्य में इसीलिए सिद्ध मत, नाथ संप्रदाय और जैन के साथ-साथ भागवत धर्म के भी प्रभाव में रचे गए काव्य उपलब्ध होते हैं। इन काव्यों में धर्म और भक्ति के अलावा सामाजिक भेदभाव तथा आडंबर पर चोट करने के उदाहरण भी मिलते हैं; क्योंकि वह समय देशव्यापी धार्मिक अशांति का समय था।

इस काल में जबकि भारतवर्ष कई तरह के अलग-अलग मत-मतांतरों और धार्मिक मतभेद से घिरा हुआ था, तभी यहाँ इस्लाम का आगमन हुआ। भारतीय धर्म-संप्रदायों और इस्लाम के बीच काफी टकराव हुआ; लेकिन धीरे-धीरे दोनों ने एक-दूसरे से प्रभाव भी ग्रहण किए। यह काल हिंदू और मुस्लिम समाज के इन बदलते धार्मिक रिश्तों का भी गवाह बना तथा एक साझा विरासत (गंगा-जमुनी तहजीब) की नींव इसी काल में पड़ी। इसके बावजूद “आदिकाल की धार्मिक परिस्थितियाँ अत्यंत विषम तथा असुंतुलित थीं। जन-मानस पर गहरा असंतोष, क्षोभ तथा भ्रम छाया हुआ था। कवियों ने इसी मानसिक स्थिति के अनुरूप खंडन-मंडन, हठयोग, वीरता एवं शृंगार का साहित्य लिखा।” (डॉ.रामगोपाल शर्मा ‘दिनेश’)।

बोध प्रश्न

- इस्लाम के आगमन का क्या प्रभाव पड़ा?

2.3.2.4 आर्थिक परिस्थिति

हिन्दी साहित्य के आदिकाल में भारत राजतंत्र और सामंती व्यवस्था के उपजीव था। गाँव इस व्यवस्था की इकाई थे और कृषि पर निर्भर थे। किसान अनाज पैदा करते थे। राजा व उनके सामंतों को देते थे; जिससे उनका पेट चलता था। राज्य के अधिकारियों को नकद वेतन न देकर जागीर दी जाती थी। किसानों की अपेक्षा इन सामंतों और बिचौलियों का जीवन आडंबरपूर्ण तथा आरामतलब था। किसानों की पैदावार में राज्य का हिस्सा कभी-कभी 50 प्रतिशत तक होता था। समाज उत्पादक तथा उपभोक्ता में बँटा था। उत्पादक भले ही उत्पादन जैसा महत्वपूर्ण कार्य करता था परंतु समाज में उसे हेय दृष्टि से ही देखा जाता था। जो उपभोक्ता था, उसका सम्मान था। वह समाज में सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था।

बोध प्रश्न

- आदिकाल में किसानों की स्थिति कैसी थी?

2.3.2.5 मिश्रित-सांस्कृतिक प्रक्रिया

हिन्दी साहित्य का आदिकाल दो संस्कृतियों के परस्पर टकराव और मेल-मिलाप का काल है। इसके एक छोर पर प्राचीन भारतीय संस्कृति का उत्कर्ष दिखाई देता है तो दूसरी छोर पर

मुस्लिम संस्कृति भारत में स्थापित होती दिखाई देती है। इसका सबसे प्रभावशाली मिश्रित रूप वास्तुकला में देखने को मिला। अरबी इतिहासकार अल-बरूनी भारतीय कलाओं में धार्मिक भावनाओं की व्यापक अभिव्यक्ति देखकर चकित रह गया था। उसने लिखा है – 'वे (हिंदू) कला के अत्यंत उच्च सोपान पर आरोहण कर चुके हैं। हमारे लोग (मुसलमान) जब उन्हें (मंदिर आदि को) देखते हैं, तो आश्चर्यचकित रह जाते हैं। वे न तो उनका वर्णन ही कर सकते हैं न वैसा निर्माण कर सकते हैं। हिंदू संस्कृति का प्रभाव इस्लामी संस्कृति पर पड़ा जैसे कब्रों पर जाना, चादरपोशी करना तथा इस्लामी संस्कृति का प्रभाव हिंदू संस्कृति पर पड़ा जैसे स्त्रियों को पर्दे में रखना आदि।'

बोध प्रश्न

- अलबरूनी ने भारत के बारे में क्या लिखा है?

2.3.3 आदिकाल : नामकरण की समस्या

प्रिय छात्रो! प्रत्येक काल के साहित्य में कुछ सामान्य तथा कुछ विशिष्ट लक्षण दिखाई देते हैं। इनमें जिस प्रवृत्ति की अधिकता होती है, उसी के आधार पर उस काल का नामकरण कर दिया जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आदिकाल को 'वीरगाथाकाल' कहा है। उन्होंने लिखा है, 'आदिकाल का नाम मैंने वीरगाथाकाल रखा है।' उन्होंने बताया है कि उस काल के भीतर दो प्रकार की रचनाएँ मिलती हैं – अपभ्रंश की और देशभाषा (बोलचाल) की। साहित्य की कोटि में आने वाली रचनाओं में कुछ तो भिन्न-भिन्न विषयों पर फुटकल दोहे हैं, जिनके अनुसार इस काल की कोई विशेष प्रवृत्ति निर्धारित नहीं की जा सकती। साहित्यिक पुस्तकें केवल चार हैं – (1) विजयपाल रासो, (2) हम्मीर रासो, (3) कीर्तिलता और (4) कीर्तिपताका। दूसरी ओर उन्होंने देशभाषा काव्य के अंतर्गत 8 पुस्तकों पर विचार किया – (1) खुमाण रासो, (2) बीसलदेव रासो, (3) पृथ्वीराज रासो, (4) जयचंद प्रकाश, (5) जयमयंक प्रकाश, (6) परमाल रासो (आल्हा का मूल रूप), (7) खुसरो की पहेलियाँ आदि तथा (8) विद्यापति पदावली। शुक्ल जी ने माना है कि 'इन्हीं बारह पुस्तकों की दृष्टि से 'आदिकाल' का लक्षण निरूपण और नामकरण हो सकता है। इनमें से अंतिम दो तथा बीसलदेव रासो को छोड़कर शेष सब ग्रंथ वीरगाथात्मक ही हैं। अतः आदिकाल का नाम 'वीरगाथाकाल' ही रखा जा सकता है।'

आगे चलकर यह पता चला कि शुक्ल जी द्वारा गिनाई गई वीरगाथाओं में से कई का अस्तित्व प्रमाणित नहीं होता। इसके अलावा शुक्ल जी ने सिद्धों, नाथों और जैनों के प्रचुर साहित्य को विशेष संप्रदाय तक सीमित मानकर 'साहित्य' की कोटि में ही नहीं रखा था। बाद के विद्वानों ने उनके इस मत को स्वीकार नहीं किया। अतः ये तीनों प्रवृत्तियाँ भी इस काल की उतनी ही मुख्य प्रवृत्ति सिद्ध होती हैं, जितनी वीरगाथाओं की रचना की प्रवृत्ति। इस कारण 'वीरगाथा काल' नाम सारी प्रवृत्तियों को समेटने में असमर्थ है।

मिश्र बंधुओं ने 'मिश्रबंधु विनोद' में आदिकाल के लिए आरंभिक काल नाम रखना उचित समझा है। उन्होंने इसके दो भाग किए हैं – पूर्व आरंभिक काल (700-1343 वि.) तथा उत्तर आरंभिक काल (1344-1444 वि.)। ज़ाहिर सी बात है कि यह हिन्दी साहित्य के आरंभ का काल है। इसलिए इसे 'आरंभिक काल' कहा गया।

डॉ. रामकुमार वर्मा ने इसे संधिकाल तथा चारण काल कहा है। उनका कथन है कि 'हिन्दी साहित्य के विकास-काल को संधिकाल कहना अधिक उपयुक्त है, क्योंकि इस काल में दो भाषाओं या दो शैलियों में संधि होती है। उन्होंने इस काल के लिए सुझाए गए एक और नाम 'चारण काल' के बारे में भी यह कहा कि, 'राजनीतिक क्षेत्र में विप्लव होने के कारण साहित्यिक क्षेत्र में भी शांति नहीं रही। राजस्थान राजनीति का प्रधान क्षेत्र होने के कारण अपने यहाँ के चारणों और भाटों को मौन नहीं रख सका।' अतः चारणों या भाटों द्वारा रचित काव्यों की प्रधानता के कारण उन्होंने इस काल को चारण काल कहा।

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इस काल को 'वीरकाल' कहा है। 'वीरकाल' कहने का आधार है कि इस काल में वीरों की चर्चा विभिन्न रचनाओं में की गई है।

इस प्रकार, विभिन्न विद्वानों ने हिन्दी साहित्य के प्रथम कालखंड को वीरगाथा काल, आरंभिक काल, संधिकाल, चारण काल और वीरकाल जैसे नाम दिए। इनमें आरंभिक काल इस दृष्टि से उचित है कि उससे हिन्दी साहित्य के 'आरंभ' का बोध होता है। इसी अर्थ को व्यक्त करने के लिए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस कालखंड को 'आदिकाल' का नाम दिया। अन्य नामों की सीमा देखते हुए यह नाम ही सबसे अधिक सटीक और उचित प्रतीत होता है।

बोध प्रश्न

- आदिकाल को वीरगाथा काल क्यों कहा गया है?
- आदिकाल को वीरगाथा काल कहना क्यों अपर्याप्त है?
- रामकुमार वर्मा ने आदिकाल को चारण काल या संधि काल क्यों कहा?

2.3.4 आदिकाल की सामान्य विशेषताएँ

आदिकाल के साहित्य में एक साथ कई प्रकार की प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। इसके बावजूद उसकी कुछ सामान्य विशेषताएँ भी दिखाई देती हैं। जैसे –

1. **धार्मिक कर्मकांड का विरोध** – आदिकाल में सिद्धों ने धार्मिक कर्मकांडों का विरोध किया। स्त्री को अपनी साधना में योगिनी का दर्जा दिया। नाथों ने सामाजिक जागरण का काम किया। इस प्रकार सिद्ध और नाथ कवि 'सामाजिक विद्रोही' प्रतीत होते हैं।
2. **तार्किकता पर बल** – सिद्धों और नाथों ने अंधविश्वास से अधिक तार्किकता पर बल दिया। उदाहरणार्थ, प्रमुख सिद्ध कवि सरहपा ने कहा है कि 'ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुए थे,

तब हुए थे, इस समय तो वे भी दूसरे लोगों की तरह उत्पन्न होते हैं। तो फिर उनमें ब्राह्मणत्व कहाँ रहा? यदि कहा जाए कि संस्कार से ब्राह्मण होता है तो चांडाल को भी संस्कार दो, वह भी ब्राह्मण हो जाएगा।'

3. **धार्मिक काव्य** – आदिकाल के सिद्ध, नाथ और जैन साहित्य का मुख्य उद्देश्य अपने-अपने मत या धर्म का प्रचार करना था। सिद्धों ने सहजयानी बौद्ध धर्म का तथा नाथों ने हठयोग का प्रचार किया। जैन कवियों ने विभिन्न कथाओं के सहारे महावीर की धार्मिक शिक्षाओं का प्रचार किया। उदाहरण के लिए, 'चंदनबाला रास' नामक रचना आसगु कवि की है। इस रचना में कवि का दृष्टिकोण मूलतः धार्मिक है। आचार्य देवसेन की रचना 'श्रावकाचार' में श्रावक धर्म का प्रतिपादन किया गया है। उन्होंने कहा भी कि 'मैं उन संदेशों का सार रूप में वर्णन कर रहा हूँ, जो जैन मत के प्रवर्तक ने दिए हैं।'
4. **आश्रयदाताओं की प्रशंसा** – आदिकाल के कुछ कवि बौद्ध और जैन धर्म के आश्रय में काव्य रचना कर रहे थे, तो कुछ ने राज्यश्रय में रहकर यह कार्य किया। राज्याश्रय प्राप्त कवियों ने आश्रयदाता कवियों की प्रशंसा में कई रासो काव्यों की रचना की हैं। इनमें पृथ्वीराज रासो और परमाल रासो जैसे प्रमुख वीर-काव्य सम्मिलित हैं। इन दोनों में क्रमशः पृथ्वीराज चौहान और परमर्दि देव के पराक्रम की प्रशंसा की गई है।
5. **युद्ध वर्णन** – वीरगाथात्मक रचनाओं अर्थात रासो काव्यों की एक प्रमुख विशेषता युद्धों का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन की है। इसका कारण यह है कि वह काल युद्धों से भरा पड़ा था और क्षत्रिय जीवन की सार्थकता वीरगति में मानी जाती थी। जैसे –

   बारह बरिस लै कूकर जीए, औ तेरह लै जिए सियार।
   बरिस अठारह छत्री जीए, आगे जीवन को धिक्कार॥

6. **इतिहास की अपेक्षा काव्यत्व पर बल** – आदिकाल के अंतर्गत बहुत सी ऐसी रचनाएँ हैं जिनकी घटनाएँ इतिहास से मेल नहीं खातीं। काव्य के स्तर पर उनका अवश्य ही महत्व है। उदाहरण स्वरूप यह कहा जा सकता है कि, पृथ्वीराज रासो में चालुक्य, चौहान तथा परमार क्षत्रियों को अग्निवंशी माना गया है जबकि ये सूर्यवंशी ठहरते हैं। संयोगिता स्वयंवर सहित कई घटनाएँ इतिहास से मेल नहीं खातीं। परंतु काव्य के दृष्टिकोण से देखें तो इनके महत्व को नकारा नहीं जा सकता। इनकी ऐतिहासिकता इसलिए भी विशेष अर्थ नहीं रखती कि आश्रयदाता कवियों ने अपने राजाओं के बारे में अतिशयोक्ति पूर्ण 'काव्यों' की रचना की है; न कि इतिहास।
7. **विषयानुकूल भाषा** – आदिकालीन कवियों की रचनाओं में विषयानुकूल भाषा का प्रयोग मिलता है। यदि वीरता का वर्णन है तो नाद व्यंजक शब्दावली मिलती है। यदि करुणा या प्रेम का वर्णन है तो भावनाप्रवण शब्दावली मिलती है। उदाहरण के लिए, सिद्धों और नाथों की

बानियों में जहाँ आधुनिक अनुभूतियों का वर्णन है, वहाँ सूक्ष्म प्रतीकात्मक भाषा मिलती है। जहाँ रूढ़िवाद का खंडन है, वहाँ सीधी और ओजपूर्ण उक्तियों का प्रयोग किया गया है। रासो काव्यों में भी शृंगार और युद्ध के वर्णनों में अलग-अलग प्रकार की भाषा-शैली पाई जाती है।

8. **विविध रसों का समावेश** – इस काल की काव्यकृतियों में विविध रसों का समावेश दिखाई देता है। रासो काव्यों में तो वीर, शांत, शृंगार, भक्ति, करुणा आदि सभी रसों का परिपाक मिलता है। पृथ्वीराज रासो में शृंगार रस के संदर्भ में नारी सौंदर्य का वर्णन द्रष्टव्य –

मनहुं कला ससिभान कला सोलह सो बन्निय।
बाल बैस ससि ता समीप अमरित रस पिन्निय॥

इसी प्रकार जगनिक के आल्ह खंड की वीर रस से युक्त उक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

अररर गोला छूटन लागे, सर सर तीर रहे सन्नाय।
गोला लागै जेहि हाथी के, मानो चोर सेंध ह्वे जाय।।
गोला लागै जौन ऊँट के, सो गिरि परै चकत्ता खाय।
खट खट खट खट तेगा बोलै, बोलै छपक छपक तलवार।।
चलै जुनब्बी औ गुजराती, ऊना छलैं विलायत क्यार।
तेगा चमकै बर्दवान कै, कटि कटि गिरे सुधरवा ज्वान॥

10. **विविध छंदों का समावेश** – आदिकालीन साहित्य में विविध छंदों जैसे – कवित्त, दोहा, रास, चतुष्पदी, ढाल, तोमर, पद्फरी, तोटक, नाराच, रोला, द्विपदी, सोरठा, चौपाई, छप्पय आदि का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। छंद के विषय में इस काल में अत्यधिक विविधता दिखाई देती है। आगे भक्तिकाल में अत्यंत लोकप्रिय बने 'दोहा' छंद के हिन्दी में उदय को आदिकाल में स्पष्टतः देखा जा सकता है।

बोध प्रश्न

- पृथ्वीराज रासो और परमाल रासो में किन राजाओं के प्रशंसा की गई है?
- धार्मिक कर्मकांड का विरोध आदिकाल में किसने किया?

2.4 पाठ-सार

हिन्दी साहित्य के इतिहास को मुख्य रूप से चार कालों में बाँटा गया है। इनमें से पहले काल को आदिकाल कहा जाता है। हिन्दी साहित्य का आदिकाल अप्रभंश के बाद लोक भाषा हिन्दी के उदय के बाद माना जा सकता है। इस आधार पर जैन कवि शालिभद्र सूरि हिन्दी के पहले साहित्यकार ठहरते हैं। उनकी 1184 ई. में रचित भरतेश्वर बाहुबली रास को हिन्दी का पहला काव्य माना जाता है। आगे चलकर 1200 ई. के आस-पास कवि चंदबरदाई ने हिन्दी के प्रथम महाकाव्य पृथ्वीराज रासो की रचना की। आदिकाल की पृष्ठभूमि बहुत अधिक परिवर्तनशील थी।

धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अनेक प्रकार के प्रभाव जनता की चेतना पर पड़ रहे थे। इसलिए इस काल में कोई एक प्रवृत्ति प्रमुख बनकर नहीं उभर सकी। इस काल को कविता में एक ओर तो धार्मिक कर्मकांड का विरोध तथा तार्किकता पर ज़ोर दिखाई देता है। दूसरी तरफ इसमें वीर राजाओं की स्तुति, युद्धों का वर्णन और नायिकाओं के सौंदर्य का निरूपण भी मिलता है।

2.5 पाठ की उपलब्धियाँ

उपर्युक्त चर्चा के आधार पर सार रूप में यह कहा जा सकता है कि -

1. आदिकाल नाम से ही पता चल रहा है कि यह हिन्दी साहित्य का प्रारंभिक या शुरूआती काल है।
2. आदिकाल में राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक आदि स्तरों पर बहुत ही उथल-पुथल की स्थिति दिखती है। इसलिए इस काल के साहित्य में भी कोई एक केंद्रीय प्रवृत्ति नहीं है।
3. आदिकाल के कई नाम मिलते हैं। विभिन्न विद्वान आलोचकों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से अलग-अलग नामकरण किया है। इनमें आदिकाल ही अधिक सटीक प्रतीत होता है।
4. आदिकाल की परिस्थितियों पर विचार करें तो वह राजनीतिक रूप से लड़ाई-भिड़ाई का समय था। बराबर विदेशी आक्रमण हो रहे थे।
5. आम जनता राजाओं और धर्मगुरुओं दोनों से निराश तथा दिग्भ्रमित थे। जातिभेद और वर्ग भेद के कारण समाज में ऊँच-नीच तथा छुआछूत जैसे भेदभाव प्रचलित थे। सवर्णों के वर्चस्व के कारण निम्नवर्ग शोषण का शिकार था।
6. स्त्रियों की दशा बहुत दयनीय थी। उन्हें भोग्य वस्तु माना जाता था। निम्न वर्ग और स्त्रियों को शिक्षा से वंचित रखा जाता था। इससे भाग्यवाद और अंधविश्वास का बोलबाला था।
7. समाज मुख्यतः कृषि प्रधान था। किसान अन्न पैदा करते थे। राजा व सामंतों को देते थे जिससे उनका पेट पलता था। समाज उत्पादक तथा उपभोक्ता में बँटा हुआ था।
8. भारत में मुसलमानों के आने से आरंभ में मुस्लिम संस्कृति और हिंदू संस्कृति का टकराव हुआ। लेकिन धीरे-धीरे इनका मिश्रित रूप भी उभर रहा था।
9. भाषावैज्ञानिक दृष्टि से हिन्दी साहित्य का आरंभ हिन्दी भाषा के आरंभ (1000 ई. के आसपास) के बाद ही मानना संगत प्रतीत होता है।
10. हिन्दी के प्रथम कवि शालिभद्र सूरि के 1184 ई. में रचित कृति 'भरतेश्वर बाहुबली रास' हिन्दी की प्रथम उपलब्ध रचना सिद्ध होती है।

11. आदिकाल की सामान्य विशेषताओं में धार्मिक कर्मकांड का विरोध, तार्किकता पर बल, आश्रयदाताओं की प्रशंसा, युद्ध वर्णन, इतिहास की अपेक्षा काव्यत्व पर बल, विषयानुकूल भाषा, विविध रसों का समावेश तथा विविध छंदों का प्रयोग शामिल हैं।

2.6 शब्द संपदा

1. गंगा जमुनी तहजीब = मिली-जुली संस्कृति
2. निराश्रित = बेआसरा, आश्रयहीन
3. बीजवपन = बीज बोना, आरंभ करना
4. वियोगात्मकता = भाषा की एक प्रवृत्ति जिसके अंतर्गत मूल शब्द और विभक्ति चिह्न अलग हो जाते हैं। हिन्दी और अंग्रेजी ऐसी ही भाषाएँ हैं।
5. संक्रमण = एक स्थिति से दूसरी स्थिति में जाने की दशा, बदलाव की अवस्था
6. संयोगात्मकता = भाषा की एक प्रवृत्ति जिसके अंतर्गत मूल शब्द और विभक्ति चिह्न परस्पर जुड़े होते हैं। संस्कृत ऐसी ही भाषा है।
7. समन्वित संस्कृति = मिली जुली संस्कृति, मिश्रित संस्कृति

2.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. हिन्दी साहित्य के 'आरंभ' तथा 'प्रथम कवि' के बारे में विभिन्न मतों का विवेचन कीजिए।
2. आदिकालीन विभिन्न परिस्थितियों पर प्रकाश डालिए।
3. आदिकाल की सामान्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. आदिकाल का अभिप्राय स्पष्ट कीजिए।
2. आदिकाल की राजनीतिक परिस्थिति पर चर्चा कीजिए।
3. 'आदिकाल' के नामकरण की समस्या पर प्रकाश डालिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए

1. अपभ्रंश के उत्तर भाग को 'पुरानी हिन्दी' किसने कहा? ( )
(अ) हजारीप्रसाद द्विवेदी (आ) नामवर सिंह (इ) रामचंद्र शुक्ल (ई) चंद्रधरशर्मा गुलेरी
2. 'धार्मिक साहित्य होने मात्र से कोई रचना साहित्यिक कोटि से अलग नहीं की जा सकती।' यह कथन किस आलोचक का है? ( )
(अ) नामवर सिंह (आ) हजारीप्रसाद द्विवेदी (इ) रामकुमार वर्मा (ई) रामचंद्र शुक्ल
3. हिन्दी जैन साहित्य की राम परंपरा का पहला काव्य किसे माना जाता है? ( )
(अ) भरतेश्वर बाहुबली रास (आ) पृथ्वीराज रासो (इ) खुमाण रासो (ई) दोहा कोश
4. हिन्दी के आदि महाकवि कौन हैं? ( )
(अ) शालिभद्र सूरि (आ) चंदबरदाई (इ) दलपति विजय (ई) सरहपा

II रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

1. मिश्र बंधुओं ने आदिकाल के लिए .... नाम रखना उचित समझा।
2. आसगु कवि की रचना .... है।
3. हिन्दी के प्रथम साहित्यकार .... हैं।
4. चंद्रधरशर्मा गुलेरी ने अपभ्रंश के उत्तर भाग को .... कहा है।
5. आल्हा का मूल रूप .... रासो है।

III सुमेल कीजिए

i) गंगा जमुनी	(अ) वीरगाथा काल
ii) आलवार	(आ) पदावली
iii) आदिकाल	(इ) तहजीब
iv) विद्यापति	(ई) नायन्मार

2.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल
2. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, हजारीप्रसाद द्विवेदी
3. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, रामकुमार वर्मा
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. नगेंद्र, हरदयाल
5. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (प्रथम खंड), गणपतिचंद्र गुप्त

इकाई 3 : आदिकालीन काव्यधाराएँ – सिद्ध, जैन और नाथ साहित्य

रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 मूल पाठ : आदिकालीन काव्यधाराएँ – सिद्ध, जैन और नाथ साहित्य

3.3.1 सिद्ध साहित्य

3.3.2 जैन साहित्य

3.3.2.1 अपभ्रंश जैन कवि

3.3.2.2 हिन्दी जैन कवि

3.3.3 नाथ साहित्य

3.4 पाठ-सार

3.5 पाठ की उपलब्धियाँ

3.6 शब्द संपदा

3.7 परीक्षार्थ प्रश्न

3.8 पठनीय पुस्तकें

3.1 प्रस्तावना

आदिकाल के उपलब्ध साहित्य का अनुशीलन करने से यह तथ्य सामने आता है कि इस काल में कोई एक प्रवृत्ति या धारा प्रमुख नहीं रही। "आदिकालीन साहित्य में वैविध्य भरपूर है – विषयों का, काव्य रूपों का, काव्यभाषा के आधार रूपों का। पर समरसता की प्रक्रिया उत्तरोत्तर सूक्ष्म स्तरों में पाई गई है – विचारों, बोलियों और बानियों से आरंभ होकर वह रचनात्मक परिकल्पना तक उतरी है।" (डॉ.रामस्वरूप चतुर्वेदी)। इस विविधता के कारणों को उस काल की जनता की चित्तवृत्ति और कवियों की मानसिकता में खोजा जा सकता है। देश उस समय राजनैतिक दृष्टि से अराजक, धार्मिक दृष्टि से दिग्भ्रमित, आर्थिक दृष्टि से अवरुद्ध, सामाजिक दृष्टि से तनावग्रस्त और सांस्कृतिक दृष्टि से संक्रमण के दौर से गुजर रहा था। इसलिए जनता में उदासीनता, धर्मभीरुता और अस्मिता की खातिर लड़ मरने की परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ उभर रही थीं। इसके परिणामस्वरूप उस समय के साहित्य में भी भोग, त्याग और संघर्ष की परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ पनपीं। इन्हें सिद्धों, जैनों और नाथों के साहित्य में साफ तौर पर देखा जा सकता है।

3.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रो! इस इकाई में आप हिन्दी साहित्य के आदिकाल की तीन प्रमुख काव्यधाराओं – सिद्ध साहित्य, जैन साहित्य और नाथ साहित्य – के बारे में पढ़ेंगे। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप -

- सिद्ध साहित्य की विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- प्रमुख सिद्ध साहित्यकारों के बारे में जान सकेंगे।
- जैन साहित्य की प्रमुख रचनाओं के बारे में जान सकेंगे।
- जैन साहित्य की देन के बारे में जान सकेंगे।
- नाथ साहित्यकारों और उनकी रचनाओं के बारे में जान सकेंगे।

3.3 मूल पाठ : आदिकालीन काव्यधाराएँ – सिद्ध, जैन और नाथ साहित्य

3.3.1 सिद्ध साहित्य

हमें सर्वप्रथम इस बिंदु पर विचार करना चाहिए कि सिद्ध कौन थे? सिद्धों के साहित्य की खोज के संदर्भ में हरप्रसाद शास्त्री तथा राहुल सांकृत्यायन का विशेष योगदान है। इस विषय में रामसजन पांडेय बताते हैं, 'सिद्ध शब्द का प्रयोग दो प्रकार से मिलता है। पहला प्रयोग एक विशिष्ट जाति के रूप में मिलता है; और दूसरा प्रयोग ऐसे विशेष लोगों के लिए किया गया है जो योग अथवा तपश्चर्या द्वारा सिद्धि प्राप्त कर मुक्त दशा को प्राप्त हो चुके हैं। सामान्य रूप से, चमत्कारपूर्ण – अलौकिक शक्तियों द्वारा सिद्धि प्राप्त करने वाले साधक ही सिद्ध कहलाते हैं।' सिद्धों की संख्या 84 मानी गई है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कथन है, 'बौद्ध धर्म विकृत होकर वज्रयान संप्रदाय के रूप में देश के पूर्वी भागों में बहुत दिनों से चला आ रहा था। इन बौद्ध तांत्रिकों के बीच वामाचार अपनी चरम सीमा को पहुँचा। ये बिहार से लेकर असम तक फैले थे और सिद्ध कहलाते थे। 'चौरासी सिद्ध' इन्हीं में हुए हैं, जिनका परंपरागत स्मरण जनता को अब तक है।'

ध्यान देने की बात यह है कि हिन्दी भाषीक्षेत्र के पूर्वी भाग में बौद्ध धर्म के 'वज्रयान' का ज़ोरों से प्रचार हुआ। इन वज्रयानियों को 'सिद्ध' भी कहा गया। इनमें से अधिकतर सिद्धों की रचनाएँ अपने मूल रूप में उपलब्ध नहीं हैं बल्कि तिब्बती भाषा में उपलब्ध अनुवादों के राहुल सांकृत्यायन द्वारा तैयार किए गए हिन्दी अनुवादों से ही संतोष करना पड़ता है। वास्तव में सिद्ध साहित्य को हिन्दी के आदिकाल की अपेक्षा अपभ्रंश साहित्य के अंतर्गत ही गिना जाना चाहिए। यहाँ इनका उल्लेख केवल हिन्दी साहित्य के इतिहास की परंपरा का निर्वाह करने के लिए ही आदिकाल की एक प्रवृत्ति के रूप में किया जा रहा है। चौरासी सिद्धों में सरहपा, शबरपा, लुईपा, डोंभिपा, कण्हपा और कुक्कुरिपा का विशेष महत्व है। याद रखें कि सिद्ध के नाम के साथ जुड़ा

हुआ 'पा' आदर का सूचक है। यह 'पाद' का लघु रूप है जिसका अर्थ है कि इनके चरण पूजनीय माने गए हैं।

सिद्ध साहित्य अपनी आध्यात्मिक साधना के उपदेशों के अलावा सामाजिक चेतना के कारण विशेष महत्व रखता है। आपको पता होगा कि बौद्ध धर्म ने वर्ण व्यवस्था और जातिभेद का विरोध किया था। बौद्ध मत के अनुयायी होने के कारण सिद्धों ने भी जातिप्रथा का विरोध किया। इनमें समाज के प्रत्येक वर्ग तथा वर्ण के लोग शामिल थे। डॉ.बच्चन सिंह का कथन है कि 'इन सिद्धों में सभी जाति के लोग थे। ब्राह्मण भी थे, क्षत्रिय भी थे, वैश्य भी थे और शूद्र भी।' ध्यान रखा जाना चाहिए कि ये जन्मतः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र भले ही रहे हों, परंतु सिद्ध बनने के बाद वे मात्र सिद्ध ही थे। इस प्रकार सिद्ध संप्रदाय जाति-पाँति के खंडन का जीता-जागता प्रमाण था।

सिद्धों के बारे में दूसरी जानने योग्य बात यह है कि इस संप्रदाय पर तंत्र का बड़ा प्रभाव था। तांत्रिक साधना के लिए लोग 'भैरवी' या 'योगिक' के रूप में साधना में भागीदार बनते थे। इसके और आगे चलकर यह मत भोगवादी बनकर विकृत भी हो गया। इसकी प्रतिक्रिया के रूप में नाथ पंथ का उदय हुआ।

आगे प्रमुख सिद्ध साहित्यकारों पर चर्चा की जा रही है।

बोध प्रश्न

- सिद्ध किसे कहा जाता है?
- सिद्धों में कौन-कौन प्रमुख हैं?

1. सरहपा : चौरासी सिद्धों की परंपरा में सर्वप्रथम उल्लेखनीय है – सरह। उन्हें सरहपा, सरहप्पा, सरहपाद, सरोरूहपाद, सरोज वज्र और राहुल वज्र जैसे कई नामों से जाना जाता है। इनका समय निश्चित नहीं है। फिर भी कुछ प्रमाणों के आधार पर राहुल सांकृत्यायन ने इनका जन्म 769 ई. में माना है। ये जाति से ब्राह्मण थे परंतु छुआछूत, ऊँच-नीच, जातिभेद आदि के खिलाफ थे। इन्होंने जातिभेद की दीवार को तोड़ते हुए एक शर (तीर) बनाने वाली कन्या को अपनी योगिनी बनाया। इसीलिए इन्हें 'सरहपा' (शर हस्त पाद) कहा जाने लगा। इनके द्वारा रचित 32 ग्रंथ बताए जाते हैं जिसमें 'दोहाकोश' विशेष रूप से प्रसिद्ध है। इनके साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं – पाखंड और आडंबर का विरोध, गुरु सेवा का समर्थन, सहज भोग मार्ग से महासुख की प्राप्ति का वर्णन, भावों का सहज प्रवाह। इनकी रचनाएँ मूल रूप में प्राप्त नहीं हैं। उनका तिब्बती अनुवाद खोजकर राहुल सांकृत्यायन ने अपभ्रंश मिश्रित हिन्दी में काव्य-अनुवाद प्रस्तुत किया है। जैसे –

जहाँ मन पवन न संचरइ, रवि ससि नाह पवेस।

तहँ बह चित्त बिराम करू, सरहे कहिय उवेस॥

2. **शबरपा** : सरहपा के प्रमुख शिष्य शबरपा का जन्मवर्ष 780 ई. माना जाता है। ये क्षत्रिय थे, लेकिन शबरों के समान जीवन बिताने के कारण इन्हें 'शबरपा' कहा जाने लगा। इनकी रचनाएँ 'चर्यापद' में संकलित हैं। इनकी रचनाओं की मुख्य विशेषताएँ हैं – माया मोह का विरोध और सहज मार्ग से महासुख की प्राप्ति पर बल।
3. **लुइपा** : शबरपा के प्रमुख शिष्य थे – लुइपा। चौरासी सिद्धों में इनका स्थान सबसे ऊँचा माना जाता है। इनकी साधना से प्रभावित होकर उड़ीसा के राजा और मंत्री भी इनके शिष्य बन गए थे। इनकी कविता में रहस्य भावना का वर्णन उत्यंत महत्वपूर्ण है।
4. **डोंबिपा** : डोंबिपा का जन्म मगध में हुआ। इनका जन्मवर्ष 840 ई. के आसपास माना जाता है। इनके गुरु का नाम विरूपा था। इन्होंने 21 ग्रंथों की रचना की थी। इनमें डोंबिगीतिका, योगाचार्य और अक्षरद्विकोपदेश के नाम प्रमुख हैं। आध्यात्मिकता और रहस्य भावना इनके साहित्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं।
5. **कमरिपा** : ये उड़ीसा के राजवंशी थे। इन्होंने उड़ीसा में वज्रघण्टा के साथ मिलकर बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार किया था। तंत्रों पर ये विशेष रूप से विश्वास रखते थे।
6. **कण्हपा** : कण्हपा का जन्म 820 ई. में कर्नाटक में हुआ था। इनके बारे में डॉ.रामकुमार वर्मा ने बताया है कि 'कर्नाटक में जन्म लेने के कारण इन्हें 'कर्णपा' भी कहा गया है। यों अपने श्याम वर्ण के कारण इन्हें कृष्णपा या कण्हपा नाम दिया गया। ये बहुत बड़े विद्वान थे, साथ ही सिद्धों में सर्वश्रेष्ठ कवि भी थे।' ये सोमपुरी (बिहार) में रहते थे। जालंधरपा इनके गुरु थे। 'चौरासी सिद्धों में अनेक सिद्ध इनके शिष्य थे। इनकी कविता की मुख्य विशेषताएँ हैं - दार्शनिकता, रहस्य भावना, गीतात्मकता, शास्त्रीय रूढ़ियों का खंडन। इनकी भाषा सरल सहज है। इन्होंने 74 ग्रंथों की रचना की। कण्हपा की एक प्रसिद्ध उक्ति का भाव यह है कि "पंडित लोग आगम, वेद और पुराण के व्यर्थ ही चक्कर लगाया करते हैं, यह वैसा ही है जैसे कि पक्के श्रीफल की परिक्रमा करता हुए भँवरे का अज्ञान। अर्थात न तो भँवरा श्रीफल के रस को जानता है, और न पंडित आत्मतत्व को जानता है।"
7. **कुक्कुरिपा** : कुक्कुरिपा का जन्म कपिलवस्तु में हुआ था। इनका जन्मकाल अज्ञात है। ये चर्परीपा नामक सिद्ध के शिष्य थे। इन्होंने भी अन्य सिद्धों की भाँति सहज जीवन का समर्थन अपनी रचनाओं में किया तथा 16 ग्रंथों की रचना की।

प्रिय छात्रो! इन प्रमुख सिद्ध साहित्यकारों पर इस चर्चा से आप यह समझ गए होंगे कि, सिद्ध साहित्य जनभाषा में रचित काव्य है जिसमें संभवतः हिन्दी के प्रारंभिक रूप के संकेत रहे होंगे। यह काव्य सिद्ध मत के प्रचार की दृष्टि से रचित है। फिर भी दार्शनिक और आध्यात्मिक प्रतीकों तथा रहस्यभावना के कारण इसमें कवित्व का समावेश हुआ है। इस काव्य में धार्मिक-

सामाजिक रूढ़ियों पर प्रहार करने वाली अक्खड़ काव्यभाषा का गठन किया और योग साधना जैसे गोपनीय विषयों पर लोकचर्चा का माहौल बनाया। यह काव्य प्रवृत्ति भिक्खु वृत्ति के स्थान पर सहज जीवन का समर्थन करती है।

सिद्ध साहित्य का महत्व यह है कि –

1. सिद्ध साहित्य ने जो प्रवृत्तियाँ आरंभ कीं, उनका विस्तार आगे भक्तिकाल में हुआ।
2. इस साहित्य ने रूढ़िवाद का खंडन जिस अक्खड़पन के साथ किया, उसने कबीर जैसे संतों की बानियों को प्रभावित किया।
3. भक्तिकाल की सामाजिक चेतना के बीज इस साहित्य में उपलब्ध हैं।
4. कृष्ण काव्य पर भी सिद्ध साहित्य के प्रवृत्तिमार्ग का प्रभाव देखा जा सकता है।

बोध प्रश्न

- सरहपा के साहित्य की क्या विशेषताएँ हैं?
- सिद्ध साहित्य का क्या महत्व है?

3.3.2 जैन साहित्य

हिन्दी साहित्य के आदिकाल की अत्यंत महत्वपूर्ण प्रवृत्ति के रूप में जैन साहित्य उभरकर सामने आया। इतना ही नहीं, यदि उत्तर अपभ्रंश काल की ‘प्राकृत की छाया से युक्त हिन्दी’ वाले सिद्ध साहित्य को बलपूर्वक ‘हिन्दी’ के इतिहास में शामिल न किया जाए, तो हिन्दी साहित्य के इतिहास का वास्तविक आरंभ ‘जैन साहित्य’ से ही मानना सटीक होगा। जैन साहित्य भी प्राकृत और अपभ्रंश में बड़ी मात्रा में रचा गया है। इसलिए यह सावधानी आवश्यक है कि हिन्दी के जैन साहित्य के अंतर्गत प्राकृत और अपभ्रंश की रचनाओं को शामिल न किया जाए। इस दृष्टि से 1184 ई. में रचित शालिभद्र सूरि की रचना ‘भरतेश्वर बाहुबली रास’ को हिन्दी की पहली साहित्यिक कृति माना जा सकता है।

डॉ. रामकुमार वर्मा ने बताया है कि ‘454 ई. में देवर्धिगणि द्वारा गुजरात में समस्त जैन धर्म के ग्रंथों का आलेखन हुआ। इनकी भाषा प्राकृत ही थी। आगे चलकर अपभ्रंश में जैन धर्म का समस्त वैभव व्यक्त हुआ। जब अपभ्रंश में आधुनिक भाषाओं के चिह्न दृष्टिगत हुए तो श्वेतांबर संप्रदाय का साहित्य अधिकतर गुजराती में लिखा गया और दिगंबर संप्रदाय का साहित्य हिन्दी में।’ इन कवियों की रचनाएँ आचार, रास, फागु, चरित आदि विभिन्न शैलियों में मिलती हैं। यहाँ तक कि ‘जैन साधुओं ने ‘रास’ को एक प्रभावशाली रचना शैली का रूप दिया। जैन तीर्थंकरों के जीवन चरित तथा वैष्णव अवतारों की कथाएँ जैन आदर्शों के आवरण में ‘रास’ नाम से पद्यबद्ध की गईं। जैन मंदिरों में श्रावक लोग रात्रि के समय ताल देकर ‘रास’ का गायन करते थे।’ (डॉ.रामगोपाल शर्मा ‘दिनेश’)।

3.3.2.1 अपभ्रंश जैन कवि

हिन्दी में जैन साहित्य की रचना अपभ्रंश जैन काव्यों की परंपरा का अगला विकास है। इसलिए पहले हम अपभ्रंश जैन कवियों पर विचार करेंगे।

1. **स्वयंभू देव** : स्वयंभू देव को अपभ्रंश के वाल्मीकि माना जाता है। इनका ग्रंथ 'पउम चरिउ' राम कथा पर आधारित है। इसीलिए उसे 'जैन रामायण' भी कहा जाता है। ये 783 ई. के आसपास विद्यमान थे। इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं – 'पउम चरिउ', 'रेट्ठिनेमि चरिउ' और 'स्वयंभू छंद'। इनमें 'पउम चरिउ' (पद्म चरित्र) विशेष उल्लेखीय है। यह राम के जीवन की कथा पर आधारित अपूर्ण महाकाव्य है। जैन धर्म के अनुरूप कवि ने राम की वाल्मिकीय कथा में कई नई काल्पनिक घटनाएँ जोड़ी है। इसमें 12 हजार श्लोक और 5 कांड हैं। कवि ने अंत में यह दर्शाया है कि राम मुनींद के इस उपदेश के साथ निर्वाण प्राप्त करते हैं कि राग से दूर रहकर ही मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है।
2. **देवसेन** : देवसेन को जैन आचार्य के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त है। वे दसवीं शताब्दी में हुए। उन्होंने 933 ई. में रचित अपनी रचना 'श्रावकाचार' में जैन गृहस्थों के आचरण के नियमों का प्रतिपादन किया, जिन्हें श्रावक कहा जाता है। श्रावकाचार में कुल 250 दोहे हैं। कवि ने कहा है कि –

   जो जिण सासण भाषयउ, सो मइ कहियउ सारू।
   ओ पालइ सइ भाउ करि, सो सरि पावइ पारू॥

   अर्थात, मैं भगवान महावीर की वाणी का सार प्रस्तुत कर रहा हूँ। जो कोई निष्ठापूर्वक इसका पालन करेगा, वह भवसागर के पार उतर जाएगा।
3. **पुष्पदंत** : जैन साहित्य परंपरा में दसवीं शताब्दी के अपभ्रंश भाषा के कवि पुष्पदंत का नाम भी बहुत आदर से लिया जाता है। ये पहले शैव थे, परंतु बाद में जैन हो गए। इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं – महापुराण, णय कुमार चरिउ, जसहर चरिउ। ये तीनों ही काव्य जैन धर्म और 'जिन भक्ति' पर केंद्रित हैं। इनमें भी 'महापुराण' विशेष उल्लेखनीय है। इसमें 63 महापुरुषों के चरित्र का वर्णन है। इन महापुरुषों में राम भी शामिल है। धर्म प्रधान रचना होने पर भी इसमें सरस काव्यात्मकता और भावप्रवणता पाई जाती है। इसकी भाषा अपभ्रंश से हिन्दी की ओर बढ़ती हुई परिवर्तनशील भाषा है।

3.3.2.2 हिन्दी जैन कवि

मूलतः अपभ्रंश के इन रचनाकारों के पश्चात आदिकाल में हिन्दी में काव्य रचना करने वाले साहित्यकारों की एक लंबी परंपरा मिलती है। इनमें से कुछ प्रमुख साहित्यकारों का विवरण इस प्रकार है -

1. शालिभद्र सूरि : शालिभद्र सूरि को सही अर्थ में 'हिन्दी का पहला कवि' माना जा सकता है। इनकी रचना 'भरतेश्वर बाहुबली रास' है जिसका रचना काल 1184 ई. है। 'भरतेश्वर बाहुबली रास' की कथा पुष्पदंत के महापुराण में 16-18 संधियों तक वर्णित एक इतिवृत्त पर आधारित है। इसमें बताया गया है कि प्रथम जैन तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के पुत्र चक्रवर्ती सम्राट बनकर कई राजाओं को जीत लेते हैं। शासन की महत्वाकांक्षा इतनी बढ़ जाती है कि वे अपने ही भाई बाहुबली पर आक्रमण कर देते हैं। बाहुबली भी भरतेश्वर से पूरी शक्ति से युद्ध करते हैं। भरतेश्वर दैवीय शक्ति से युक्त विशेष चक्र की सहायता से बाहुबली को जीतने का प्रयास करते हैं। परंतु वह दिव्यचक्र अपने ही परिवार के लोगों पर वार नहीं करता। इधर बाहुबली विजय प्राप्ति के निकट होते हैं परंतु उनके मन में वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। दोनों भाई युद्ध में हुई हिंसा आदि से ग्लानियुक्त हो जाते हैं। बाहुबली घोर तप करते हैं और भरतेश्वर बाहुबली के चरणों में गिरकर क्षमा याचना करते हैं। इस प्रकार कथा वीर रस से आरंभ होते हुए भी अंततः शांत रस में परिणत हो जाती है।

इस काल में ओज गुण के कुछ बेहद मार्मिक प्रसंग मिलते हैं। जैसे –

कहिरे भरहेसर कुण कहीइ।
मइ सिउं रणि सुरि न रहीइ।
चक्र धरइ चक्रवर्ती विचार।
तउ अह्या पुरि कुंभार अपार।

जब भरतेश्वर का दूत बार-बार भरतेश्वर के चक्रवर्ती राजा होने पर डींग हाँकता है और बाहुबली को आत्मसमर्पण करने के लिए प्रेरित करता है तब उपर्युक्त उक्ति के द्वारा ही उपेक्षा से बाहुबली उत्तर देते हैं कि 'भरतेश्वर के विषय में क्या बताते हो, मेरे सामने तो युद्ध में सुर-असुर भी नहीं ठहरते। यदि उस चक्रवर्ती को चक्र-धारण का ही अधिक घमंड है तो जाकर उनसे कहो कि हमारे यहाँ एक नहीं, कई चक्र-धारी (कुम्हार) हैं।' यहाँ व्यंग्य और उपहास उड़ाया जा रहा है। इस रचना के विषय में डॉ.गणपतिचंद्र गुप्त लिखते हैं, 'पात्रों के संवाद, वस्तु-वर्णन, अभिव्यंजना-शैली एवं छंद-योजना की दृष्टि से भी रचना रोचक, आकर्षक एवं वैविध्यपूर्ण है। दूत और बाहुबली के संवादों में नाटकीयता के साथ-साथ व्यंजना का वैभव भी विद्यमान है। विभिन्न प्रकार के अलंकारों – अनुप्रास, यमक, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति आदि का निरूपण आकर्षक रूप में हुआ है। सोरठा, चौपाई, त्रोटक, धवल आदि छंदों का इसमें प्रयोग हुआ है।' जहाँ तक भाषा का प्रश्न है तो यह राजस्थानी का वह रूप है जब गुजराती इससे पृथक नहीं हुई थी।

2. आसगु कवि : कवि आसगु तेरहवी शताब्दी के उत्तरार्ध में विद्यमान थे। इनकी रचनाओं में 'चंदनबाला रास' एवं 'जीवदया रास' विशेष उल्लेखनीय हैं। चंदनबाला रास का रचनाकाल 1200 ई. है। यह पैंतीस छंदों का एक लघु खंडकाव्य है। इसमें नायिका चंदनबाला की चारित्रिक पवित्रता का चित्रण है। चंदनबाला अत्यंत कष्ट सहती है। अंततः उसे स्वयं महावीर भोजन

कराते हैं। इस रचना में कवि का दृष्टिकोण मूलतः धार्मिक है। इसमें नारी सौंदर्य, नायिका की चेष्टाओं, शृंगार, करुणा, उत्साह आदि की अभिव्यक्ति व्यंजनापूर्ण सरस्ता से की है।

आसगु कवि की दूसरी रचना 'जीवदया रास' है। इसमें जैन धर्म के उपदेशों को पद्य-बद्ध किया गया है। इसका साहित्यिक दृष्टि से कोई विशेष महत्व नहीं है। यत्र-तत्र रूपकों का सुंदर प्रयोग अवश्य हुआ है।

3. विजयसेन सूरि : आदिकालीन जैन कवि विजयसेन सूरि का जन्मवर्ष 1231 ई. के आसपास माना गया है। इनकी रचना 'रेवंतगिरि रास' प्रसिद्ध है। इसमें तीर्थंकर नेमिनाथ की प्रतिमा तथा रेवंतगिरि तीर्थ का वर्णन किया गया है। भावपूर्ण प्रकृति चित्रण इस काव्य की विशेषता है। जैसे –

कोयल कलयलो मोर केकारओ
सम्मए महुयए महुर गुंजारवो॥

4. अन्य जैन साहित्यकार : इन प्रमुख कवियों और उनकी रचनाओं के अतिरिक्त, जिनधर्म सूरि की रचना 'स्थूलिभद्र रास' (1209 ई.) में मुनि स्थूलिभद्र और वेश्या कोशा की कथा के माध्यम से भोग और संयम का संघर्ष दिखाया गया है। धर्मभावना से परिपूर्ण यह कृति भी पर्याप्त भावपूर्ण है। इसी प्रकार सुमतिगणि की रचना नेमीनाथ रास (1213 ई.) के 58 छंदों में जैन तीर्थंकर नेमीनाथ के चरित्र का सारस शैली में वर्णन किया गया है।

इन जैन रास काव्यों के अतिरिक्त, एक परंपरा जैन फागु काव्यों की भी मिलती है। आदिकालीन जैन फागु काव्यों के अंतर्गत जिनचंद सूरि फागु (रचनाकार अज्ञात), सिरिभूलीभद्र फागु (रचनाकार जिणपद्मसूरि), श्री नेमीनाथ फागु (रचनाकार राजेश्वर सूरि) तथा वसंत विलास फागु (रचनाकार अज्ञात) सम्मिलित हैं। इनमें लोक परंपरा से प्राप्त शैली में फागु गीतों के माध्यम से तीर्थंकरों के चरित का वर्णन और धर्म प्रचार किया गया है। प्रसंगवश नायिकाओं के रूप सौंदर्य, यौवन और प्रेमोन्माद का भी इन काव्यों में सुंदर चित्रण हुआ है।

जैन साहित्य के संदर्भ में, निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि –

(1) जैन साहित्य की भाषा अपभ्रंश से अलग होती हुई हिन्दी का प्राचीन रूप है। जैन साहित्य का काफी भाग गुजरात में रचित है। इसलिए इस पर नागर अपभ्रंश का भी प्रभाव है और शब्द योजना भी उसी के व्याकरण के अनुसार है।

(2) जैन साहित्य में वीर, शृंगार और करुण रसों का समावेश है। लेकिन मुख्य रस शांत ही है।

बोध प्रश्न

- भरतेश्वर बाहुबली रास में किस की कथा है?
- चंदनबाला रास के रचनाकार कौन हैं?
- जैन साहित्य में किन रसों का समावेश है?

3.3.3 नाथ साहित्य

आदिकाल के साहित्य की तीसरी महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है – नाथ साहित्य। मत्सयेंद्रनाथ के शिष्य गोरखनाथ (गोरक्षनाथ) नाथ संप्रदाय के प्रवर्तक माने जाते हैं। इस संप्रदाय के साधक योगी अपने नाम के साथ 'नाथ' शब्द जोड़ते हैं। इनकी वेशभूषा के संदर्भ में डॉ.हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि नाथ योगी को स्पष्ट रूप से पहचाना जा सकता है। मेखला, श्रुंगी, सेली, गूदरी, खप्पर, कर्ण-मुद्रा, बाघंबर, झोला आदि ये लोग धारण करते हैं। कान फाड़कर कुंडल धारण करने के कारण ये लोग 'कनफटा' भी कहे जाते हैं।

नाथ संप्रदाय को कई अन्य नामों से भी जाना जाता है। जैसे – सिद्धमत, सिद्धमार्ग, योगमार्ग, अवधूत मत। नाथों की संख्या 9 मानी गई है। इन्हें ही 'नवनाथ' कहा जाता है। इनके नाम हैं – आदिनाथ, मत्स्येंद्रनाथ, गोरखनाथ, गाहिणीनाथ, चर्पटनाथ, चौरंगीनाथ, ज्वालेंद्रनाथ, भर्तृनाथ और गोपीचंद नाथ।

1. **आदिनाथ** : आदिनाथ इस संप्रदाय के प्रथम आचार्य माने जाते हैं। इन्हें ही 'शिव' माना गया है। ये नाथों के नाथ भी कहे जाते हैं।
2. **मत्स्येंद्रनाथ** : मत्स्येंद्रनाथ गोरखनाथ के गुरु माने जाते हैं। इन्हें मीननाथ तथा मछंदरनाथ भी कहा जाता है। माना जाता है कि इन्होंने योग की शिक्षा शिव से प्राप्त की थी। ये योग के ज्ञाता थे परंतु रूप-सौंदर्य पर मुग्ध होकर एक स्त्री के प्रेम पाश में बंध गए थे। इस प्रेम पाश से मुक्त कराने का प्रयास इनके शिष्य गोरखनाथ ने किया था। इस घटना के बारे में यह उक्ति प्रचलित है – 'जाग मछन्दर गोरख आया।'

मत्स्येंद्रनाथ ने तंत्र विद्या संबंधी कई ग्रंथ रचे। जैसे – कौलज्ञान निर्णय, कुल वीर तंत्र। कुलानंद, ज्ञानकारिका। इनकी देन के बारे में डॉ.गणपतिचंद्र गुप्त का कथन है, 'मत्स्येंद्रनाथ ने नए पंथ का प्रवर्तन भले ही न किया हो, किंतु (सिद्धों की) सहज साधना के स्थान पर तंत्र एवं योग को प्रतिष्ठित करने का कार्य अवश्य आरंभ कर दिया था, जिसे उनके शिष्य गोरखनाथ ने पूरा किया।'

3. **गोरखनाथ** : गोरखनाथ का एक नाम गोरक्षपा भी मिलता है। प्रारंभ में ये सिद्ध संप्रदाय से जुड़े थे। बाद में अपना स्वतंत्र संप्रदाय 'नाथ संप्रदाय' के नाम से चलाया। इनके जन्मकाल के संबंध में विवाद की स्थिति है। नवीन खोजों में इनका समय ईसा की तेरहवीं शती माना गया है। गोरखनाथ ने हठयोग का उपदेश दिया था। यहाँ 'ह' का अर्थ सूर्य तथा 'ठ' का अर्थ चंद्र है। इन दोनों का योग 'हठयोग' कहलाता है। 'हठयोग' दार्शनिकता की दृष्टि से शैवमत के अंतर्गत है जबकि व्यावहारिकता की दृष्टि से पतंजलि के योग से संबंधित। डॉ.हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इन्हें अपने युग का सबसे बड़ा नेता कहा है। गोरखनाथ के जन्म तथा उनके कार्यों की प्रशंसा

करते हुए हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि 'विक्रम संवत की दसवीं शताब्दी में भारतवर्ष के महान गुरु गोरक्षनाथ का आविर्भाव हुआ। शंकराचार्य के बाद इतना प्रभावशाली और इतना महिमान्वित महापुरुष भारतवर्ष में दूसरा नहीं हुआ। भारतवर्ष के कोने-कोने में उनके अनुयायी आज भी पाए जाते हैं। भक्ति-आंदोलन के पूर्व सबसे शक्तिशाली धार्मिक आंदोलन गोरखनाथ का योग मार्ग ही था। भारतवर्ष की ऐसी कोई भाषा नहीं है जिसमें गोरक्षनाथ संबंधी कहानियाँ न पाई जाती हों। इन कहानियों में परस्पर ऐतिहासिक विरोध बहुत अधिक है परंतु फिर भी इनसे एक बात अत्यंत स्पष्ट हो जाती है – गोरक्षनाथ अपने युग के सबसे बड़े नेता थे।' डॉ.पीतांबरदत्त बड़थ्वाल ने उनकी 14 रचनाओं को प्रामाणिक माना है – सबदी, पद, प्राण संकली, शिष्या दर्शन, नरवै बोध, अभयमात्र जोग, आत्म-बोध, पंद्रह तिथि, सप्तवार, मछींद्र-गोरख बोध, रोमावली, ग्यान तिलक, ग्यान चौंतीसा एवं पंचमात्रा। डॉ. बड़थ्वाल ने उनकी रचनाओं को 'गोरखबानी' नाम से संकलित किया है।

गोरखनाथ ने अपने सिद्धांतों की मीमांसा जनभाषा में 'सबदियों' और 'पदों' में प्रस्तुत की है। गुरु की महिमा बताते हुए वे कहते हैं –

गुर कीजै गहिला निगुरा न रहिला, गुर बिन ग्यान न पायला रे भाईला।
दूधै धोया कोइला उजला न होइला, कागा कंठे पहुप माल हंसला न भइला॥

इंद्रिय निग्रह पर बल देते हुए कहा गया है –

भोगिया सूते अजहूँ न जागे। भोग नहीं रे रोग अभागे॥
भोगिया कहै भल भोग हमारा। मनसइ नारि किया तन छारा॥

सहजता पर बल देते हुए गोरखनाथ लिखते हैं –

सहज गोरखनाथ वणिज कराई।
पञ्च बलद नौ गाई॥
सहज सुभावै बाषर लाई।
मोरे मन उड़यांनी आई॥

4. **गाहिणीनाथ** : ये गोरखनाथ के शिष्य थे। इन्होंने ज्ञानेश्वर महाराज के पितामह गोविंदपंत को उपदेश दिया था। ये ज्ञानेश्वर के पिता विट्ठल के भी गुरु बताए जाते हैं। इन्हें गहिणीनाथ या गाहिणीनाथ भी कहा गया है। इनका समय 13 वीं शताब्दी का मध्य भाग माना जाता है।
5. **चर्पटनाथ :** इनका जन्म मनुखेत पत्तन में हुआ। इनका पूर्वनाम चरकानंद नाथ था। कहीं इन्हें गोरखनाथ का शिष्य तो कहीं बालानाथ का शिष्य बताया गया है।
6. **चौरंगीनाथ :** ये 'पूरन भगत' नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके गुरु गोरखनाथ थे। इनके विषय में किंवदंती है कि किसी आरोप में सजा के तौर पर आँखें फोड़कर और हाथ-पैर काटकर कुएँ में

डाल दिया गया था। यह भी बताया जाता है कि मत्स्येंद्रनाथ के प्रभाव से गोरखनाथ ने इन्हें सुंदर शरीर से संपन्न (चौरंगी) किया तथा रस्सी की सहायता से कुएँ से बाहर निकाला।

7. **ज्वालेंद्रनाथ :** ज्वालेंद्रनाथ गोपीचंद के गुरु थे। गोपीचंद की माता मैनावती भी ज्वालेंद्रनाथ से प्रभावित थीं। इन्हें भी कुएँ में डाल दिया गया था। गोरखनाथ के प्रयास तथा गोपीचंद के अनुनय विनय के बाद ये कुएँ से बाहर निकले।
8. **भर्तृनाथ :** इनका नाम भर्तृहरि या भरधरी भी प्रसिद्ध है। ये जालंधरपा के शिष्य थे। भर्तृनाथ के योगी बनने की कथा बड़ी रोचक है। इसके अनुसार पत्नी पिंगला की मृत्यु के बाद गुरु गोरखनाथ के उपदेश से भर्तृनाथ का मोह दूर हुआ और वे गोरखनाथ का शिष्यत्व ग्रहण कर योगी हो गए।
9. **गोपीचंदनाथ** : ये गुरु ज्वालेंद्रनाथ के शिष्य थे। कहा जाता है कि इन्होंने जब राज्य छोड़ा तो परिवारवालों ने इन्हें रोकने का बहुत प्रयास किया, किंतु ये रुके नहीं और योगी बन गए। इनके नाम से भी कई सारी कथाएँ और किंवदंतियाँ प्रचलित हैं।

बोध प्रश्न

- गोरखनाथ ने गुरु महिमा के बारे में क्या कहा है?
- हठयोग किसे कहा जाता है?

3.4 पाठ-सार

सिद्ध साहित्य के अंतर्गत 84 सिद्धों की रचनाएँ सम्मिलित हैं। इनकी भाषा मुख्यतः अपभ्रंश है, जिसमें हिन्दी के बहुत कम लक्षण मिलते हैं। इन्हें संक्रमण काल की हिन्दी कविता का उदाहरण माना जा सकता है। सिद्ध साहित्य में आध्यात्मिक शिक्षा के अलावा कर्मकांड के विरोध के स्वर भी सुनाई पड़ते हैं। प्रमुख सिद्ध साहित्यकार हैं – सरहपा, शबरपा, कमरिपा, लुइपा, डोंबिपा, कण्हपा, कुक्कुरिपा आदि।

जैन साहित्य के अंतर्गत जैन मुनियों द्वारा रचित रासो और फागु काव्य शामिल है। आरंभिक जैन साहित्य अपभ्रंश में रचित है। स्वयंभू, देवसेन और पुष्पदंत इस वर्ग के प्रमुख कवि हैं। हिन्दी के प्रथम कवि के रूप में शालिभद्र सूरि का नाम स्वीकृति प्राप्त कर चुका है। इन्होंने 1184 ई. में 'भरतेश्वर बाहुबली रास' की रचना की, जो हिन्दी की पहली काव्यकृति मानी जाती है। आदिकालीन हिन्दी जैन कवियों में शालिभद्र सूरि के बाद विजयसेन सूरि, जिनभद्र सूरि, सुमतिगणि, जिन चंद सूरि आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

आदिकालीन हिन्दी साहित्य के इतिहास में नाथ साहित्य का योगदान भी बहुत महत्वपूर्ण है। कुल नौ नाथों में सबसे प्रमुख हैं – गुरु गोरखनाथ। गोरखनाथ ने शंकराचार्य के समान तत्कालीन समाज को जागरण का संदेश दिया।

3.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से आप निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त कर सकते हैं –

1. आदिकाल की प्रवृत्तियों में सिद्ध साहित्य को 84 सिद्धों में समृद्ध किया।
2. सरहपा सर्वप्रथम उल्लेखनीय सिद्ध है। उन्होंने आध्यात्मिक शिक्षा देने के साथ अपने आचरण द्वारा जाति भेद की दीवार को तोड़ा।
3. सिद्ध साहित्य रूढ़िवाद का खंडन करता है और प्रवृत्ति मार्ग का समर्थन करता है।
4. जैन साहित्य की आरंभिक रचनाएँ अपभ्रंश में हैं। यही बात सिद्ध साहित्य के बारे में भी सच है।
5. अपभ्रंश के प्रभाव से मुक्त होने की कोशिश की गवाही देने वाली पहली रचना 'भरतेश्वर बाहुबली रास' हैं। 1184 ई. में शालिभद्र सूरि द्वारा रचित यह छोटी सी रचना मूलतः जैन साहित्य के तहत आती है।
6. नाथ साहित्य में सबसे अधिक महत्व गुरु गोरखनाथ का है। इन्होंने हठयोग का उपदेश दिया और इन्हें अपने युग का सबसे बड़ा सामाजिक-धार्मिक नेता माना जाता है।
7. सिद्ध साहित्य, जैन साहित्य और नाथ साहित्य का प्रभाव आगे हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल और रीतिकाल की प्रवृत्तियों पर भी पड़ा।

3.6 शब्द संपदा

1. अनुशीलन = चिंतन, मनन
2. काव्यात्मकता = काव्यगत, काव्य गुण से परिपूर्ण
3. चित्तवृत्ति = प्रवृत्ति, झुकाव, मन की वह अवस्था जिससे मनुष्य विचार करता है
4. निरूपण = सोच-समझकर किसी विषय या वस्तु का विवेचन करना
5. भावप्रवणता = भावुकता, संवेदनशीलता
6. विशिष्ट = विशेष

3.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग <u>500</u> शब्दों में दीजिए।

1. सिद्ध संप्रदाय पर चर्चा कीजिए।
2. प्रमुख जैन हिन्दी कवियों का परिचय दीजिए।
3. गुरु गोरखनाथ के देन पर प्रकाश डालिए।
4. नाथ संप्रदाय के कवियों का परिचय दीजिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग <u>200</u> शब्दों में दीजिए।

1. सिद्ध सरहपा व उनकी कविताओं के विषय में संक्षेप में बताइए।
2. 'भरतेश्वर बाहुबली रास' का परिचय दीजिए।
3. नाथ संप्रदाय पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए

1. सिद्धों की संख्या कितनी मानी जाती है? ( )

(अ) 81 (आ) 82 (इ) 84 (ई) 85

2. सिद्धों के नामों के अंतिम छोर पर लगा शब्द 'पा' सिद्धों के संदर्भ में किस अर्थ में प्रयुक्त होता है? ( )

(अ) आदरार्थक (आ) निरादरार्थक (इ) निरर्थक (ई) व्यंग्यार्थक

3. सिद्धों और नाथों का प्रभाव किस पर देखा जाता है? ( )

(अ) संतकाव्य (आ) रामकाव्य (इ) कृष्णकाव्य (ई) रीतिकाव्य

II रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए

1. जैन साधुओं ने .... को एक प्रभावशाली रचना शैली का रूप दिया।
2. .... को अपभ्रंश का वाल्मीकि माना जाता है।
3. .... को जैन रामायण कहा जाता है।
4. ………….. में जैन गृहस्थों के आचरण के नियमों का प्रतिपादन किया गया है।

II सुमेल कीजिए

i) शालिभद्र सूरि	(अ) अक्षरद्विकोपदेश
ii) शबरपा	(आ) भरतेश्वर बाहुबली रास
iii) डोंबिपा	(इ) चर्यापद
iv) स्वयंभू	(ई) चंदनबाला रास
v) आसगु कवि	(उ) पउम चरिउ

3.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. नगेंद्र और हरदयाल
2. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी
3. हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास, हजारी प्रसाद द्विवेदी
4. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, रामकुमार वर्मा
5. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (प्रथम खंड), गणपतिचंद्र गुप्त
6. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. राम सजन पांडेय

इकाई 4 : प्रमुख रासो काव्य

रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 मूल पाठ : प्रमुख रासो काव्य

4.3.1 रासो काव्य : एक परिचय

4.3.2 रासो साहित्य

4.3.3 रासो साहित्य की प्रासंगिकता

4.3.4 रासो साहित्य की भाषा

4.4 पाठ-सार

4.5 पाठ की उपलब्धियाँ

4.6 शब्द संपदा

4.7 परीक्षार्थ प्रश्न

4.8 पठनीय पुस्तकें

4.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य का उदय एक ऐसे बदलावों से भरे काल में हुआ, जब भारत के समाज और राजनीति में भारी उथल-पुथल मची हुई थी। साधारण जनता कई अलग-अलग मान्यताओं वाले धार्मिक संप्रदायों के एक साथ उभार के कारण बड़ी हद तक भ्रमित सी थी। इसीलिए विशेष रूप से नाथ संप्रदाय से जुड़े योगियों ने अपने साहित्य द्वारा मनुष्य को चरित्र की दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त करने की प्रेरणा दी।

बौद्ध और जैन मत के सिद्धांतों से प्रभावित सिद्धों और जैन कवियों ने भी क्रमशः जाति-पाँति के भेदभाव और मानवीय दुर्बलताओं से बचने का उपदेश दिया। इस धार्मिक वातावरण के समानांतर उस काल का राजनैतिक वातावरण बेहद अस्थिर था। देशी राजागण या तो भोग-विलास में डूबे रहते थे, या परस्पर अहंकार की टकराहट के कारण अनावश्यक युद्धों में लिप्त रहते थे। यही वह समय था, जब भारत पर विदेशी शक्तियों के हमले शुरू हुए। हमलावार विदेशी राजाओं ने भारत के अलग-अलग हिस्सों में भारी लूटपाट मचाई। उनके भारतीय देशी राजाओं से घनघोर युद्ध हुए। इन परिस्थितियों में उन राजाओं के आश्रित कवियों ने वीरतापूर्ण महाकाव्यों की रचना की। इन वीर-काव्यों को 'रासो' कहा जाता है। इन्हीं ग्रंथों के आधार पर आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस काल को 'वीरगाथाकाल' नाम दिया था।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई में हम आदिकाल की प्रमुख काव्यधारा 'रासो साहित्य' पर विचार करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- रासो शब्द के क्रमिक विकास के विषय में जान सकेंगे।
- रासो साहित्य की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- रासो साहित्य की प्रासंगिकता पर विचार कर सकेंगे।
- रासो साहित्य की भाषा के विषय में जान सकेंगे।

4.3 मूल पाठ : प्रमुख रासो काव्य

4.3.1 रासो : एक परिचय

'रासो' शब्द को लेकर काफी विवाद की स्थिति है। "गार्साँ द तासी ने इसका संबंध 'राजसूय' से स्थापित किया है तो आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'बीसलदेव रासो' में प्रयुक्त 'रसायण' शब्द से 'रास' या 'रासो' की व्युत्पत्ति सिद्ध की है, किंतु अब ये दोनों ही प्रयास अमान्य समझे जाते हैं। इधर डॉ. दशरथ राम, डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. माता प्रसाद गुरु आदि विद्वानों ने संस्कृत के 'रासक' से 'रास' का संबंध सिद्ध किया है। प्राकृत अपभ्रंश के नियमानुसार 'रासक' के 'रासअ', 'रासउ', 'रास' आदि रूप विकसित हो जाते हैं जबकि राजस्थानी में प्रायः संज्ञाएँ अकारात्मक से ओकारांत हो जाती हैं, अतः इसमें 'रास', 'रासउ', के स्थान पर 'रासो' का प्रयोग होना स्वाभाविक है। इस प्रकार 'रास', 'रासउ', 'रासु', 'रासो' आदि शब्द मूलतः 'रास्क' (नृत्य-विशेष, छंद-विशेष एवं काव्य-विशेष) के ही परिवर्तित एवं विकसित रूप हैं।" (डॉ.गणपतिचंद्र गुप्त)।

स्मरणीय है कि जन सामान्य में 'रास' शब्द का प्रयोग सारस नाच-गान के अर्थ में किया जाता है। कृष्ण और गोपियों के सामूहिक नृत्य को 'रास लीला' तथा कृष्णलीला के लोकगीतों को 'रसिया' कहा जाता है। अतः शास्त्र और लोक दोनों में रास 'सारस साहित्य' का वाचक है। यह आवश्यक नहीं कि वह केवल वीरगाथा ही हो।

'रासो' के अर्थ में परिवर्तन और विकास धीरे-धीरे हुआ है। डॉ.गणपतिचंद्र गुप्त लिखते हैं, 'जन-साधारण के द्वारा नृत्य-गान के साथ 'रासक पदों' – आगे चलकर रासक काव्यों – के प्रयोग की परंपरा सातवीं से लेकर चौदहवीं-पंद्रहवीं शती तक बराबर रही है। प्रारंभ में इसका स्तर अत्यंत निम्न था, किंतु आगे चलकर इसके स्तर का उत्थान क्रमशः होता रहा। लगभग 12 वीं शती में कदाचित इनकी लोकप्रियता को देखकर जैन कवियों का ध्यान भी इनकी ओर गया और उन्होंने इन्हीं को अपने तीर्थंकरों के चरित-गान एवं धार्मिक उपदेशों का माध्यम बनाया।' ध्यान दिया

जाए तो रासो काव्य परंपरा के दो प्रकार साफ तौर पर दिखाई देते हैं – (1) धार्मिक रासो काव्य तथा (2) ऐतिहासिक रासो काव्य। 'धार्मिक रासो काव्य' मुख्यतः जैन साहित्य का अंग है।

जहाँ तक 'ऐतिहासिक रासो काव्य' का प्रश्न है तो इस वर्ग की आदिकालीन रचनाओं में खुमाण रासो, बीसलदेव रासो, हम्मीर रासो, परमाल रासो और पृथ्वीराज रासो शामिल हैं। डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त ने बड़ी ही सटीक टिप्पणी की है। वे लिखते हैं, 'हिन्दी में जैन-धर्म के आश्रय में एक विशिष्ट काव्य-परंपरा की लोकप्रियता एवं प्रचार को देखकर अनेक जैनेतर कवियों का भी ध्यान इसकी ओर आकृष्ट हुआ, जिन्होंने इसे नया मोड़ दिया। इन कवियों में से अधिकांश राज्याश्रित थे, जिन्होंने महापुरुषों एवं तीर्थंकरों के स्थान पर अपने आश्रयदाताओं के गुण-गान के लक्ष्य को लेकर काव्य रचना की। उनके सामने धर्म प्रचार का उद्देश्य न होकर राजाओं को प्रसन्न करना ही उद्देश्य था। फलतः उनके ग्रंथ रासो संज्ञक होते हुए भी दृष्टिकोण, विषय-वस्तु एवं शैली की दृष्टि से मूल परंपरा से इतनी दूर चले गए कि उन्हें एक नई या भिन्न परंपरा के रूप में मान्यता देने की आवश्यकता प्रतीत होती है।' चंदबरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो' इस कोटि की उत्कृष्ट रचना है। यहाँ यह बताना आवश्यक है कि रासो काव्य परंपरा में एक नया मोड़ तेरहवीं शती में आया जब नरपति नाल्ह ने 'बीसलदेव रासो' की रचना की लेकिन यह रचना वीर-चरितात्मक न होकर मूलतः एक विरह-काव्य है। यह भी ध्यान में रखा जाना चाहिए कि ऐतिहासिक काव्यों की अखंड परंपरा उसके एक-डेढ़ शताब्दी बाद प्रतिष्ठित हुई।

बोध प्रश्न

- 'रासो' काव्य का सामान्य अर्थ क्या है?
- 'ऐतिहासिक रासो काव्य' से क्या अभिप्राय है?

4.3.2 रासो साहित्य

प्रिय छात्रो! जैसा कि आपको पहले बताया जा चुका है, धर्म, राजनीति, समाज आदि का प्रभाव साहित्य पर अनिवार्य रूप से पड़ता है। रासो साहित्य के लेखन के समय ही राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियाँ जटिल थीं। "जिस समय से हमारे हिन्दी साहित्य का अभ्युदय होता है, वह लड़ाई-भिड़ाई का समय था, वीरता के गौरव का समय था।" (आचार्य रामचंद्र शुक्ल)। इसका प्रभाव यह पड़ा कि काव्य से यश और अर्थ की प्राप्ति की इच्छा रखने वाले कवि राजाओं के आश्रय में रहकर वीर रस और शृंगार रस से परिपूर्ण काव्यों की रचना करने लगे। इन राजकवियों ने अपने आश्रयदाता राजाओं की वीरता का खूब बखान किया।

प्रायः ये बखान अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतीत होते हैं। काव्य में यह स्वाभाविक है क्योंकि इससे ओज गुण तथा उदात्त तत्व का समावेश होता है। वीरों की गाथाएँ होने के कारण ये रचनाएँ 'वीरगाथाएँ' कहलाती हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने माना है कि हिन्दी साहित्य में वीरगाथाएँ दो

रूपों में मिलती हैं – प्रबंध काव्य के साहित्यिक रूप में और वीर गीतों के रूप में। साहित्यिक प्रबंध के रूप में जो प्राचीन ग्रंथ उपलब्ध है, वह है 'पृथ्वीराज रासो।' वीर गीत के रूप में हमें सबसे पुरानी पुस्तक 'बीसलदेव रासो' मिलती है, यद्यपि उसमें समयानुसार भाषा के परिवर्तन का आभास मिलता है। वस्तुतः 'पृथ्वीराज रासो' और 'बीसलदेव रासो' – ये ही रासो काव्य आदिकाल की सीमा में रचित होने के कारण इस काल के प्रामाणिक रासो साहित्य के रूप में स्वीकार किए जाने चाहिए। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के बाद अन्य इतिहासकारों और शोधकर्ताओं के अध्ययन से पता चलता है कि शुक्ल जी द्वारा गिनवा गए 'हम्मीर रासो' का तो अस्तित्व ही नहीं है। इसी प्रकार, 'खुमाण रासो' और 'परमाल रासो' आदिकाल के बाद की रचनाएँ सिद्ध हुई हैं। जानकारी के लिए यहाँ इन सभी पर विचार किया जा रहा है।

बोध प्रश्न

- वीरगाथा किसे कहा जाता है और हिन्दी में कितनी प्रकार की वीरगाथाएँ हैं?

1. हम्मीर रासो (शाङ्र्गधर)

'हम्मीर रासो' किन्हीं शाङ्र्गधर नामक कवि की रचना मानी जाती है। परंतु इसकी कोई प्रति नहीं मिलती। अर्थात, इस रचना का अस्तित्व ही प्रमाणित नहीं है। फिर भी 'प्राकृत पैंगलम्' में मिले कुछ छंदों के आधार पर इस रचना के बारे में कल्पना कर ली गई है। डॉ. माताप्रसाद गुप्त के अनुसार "इस नाम की कोई रचना अभी तक नहीं मिली है, किंतु 'प्राकृत पैंगलम्' में अनेक छंद विविध वृत्तों में हम्मीर के संबंध उद्धृत हैं, इसलिए इस बात की यथेष्ट संभावना है कि कोई 'हम्मीर रासो' भी लिखा गया था और उसी से ये छंद लिए गए हैं। इनका रचयिता अज्ञात है। ये छंद वीर रस के हैं और काव्य की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। उन्होंने इसे चौदहवीं शती ईसवीं की संभावित रचना माना है। (हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1, पृ. 715)।

बोध प्रश्न

- 'हम्मीर रासो' क्यों प्रामाणिक नहीं है?

2. **खुमाण रासो (दलपति विजय)**

इसे नौवीं शताब्दी की रचना माना जाता रहा है। इसका कारण यह है कि इसमें नौवीं शताब्दी के चित्तौड़ नरेश खुमाण के युद्धों का चित्रण है। लेकिन यह खुमाण वास्तव में कौन हैं, इसका पता नहीं चलता क्योंकि नौवीं-दसवीं शती में चित्तौड़ के रावल खुमाण नाम के तीन राजा हुए हैं। इन्हें एक ही मानकर कर्नल टाड ने 'खुमाण रासो' के आधार पर विस्तार से चर्चा की है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं, 'यह समस्त वर्णन 'दलपति विजय' नामक किसी कवि के रचित 'खुमाण रासो' के आधार पर लिखा गया जान पड़ता है। पर इस समय खुमाण रासो की जो प्रति प्राप्त है, वह अपूर्ण है और उसमें महाराणा प्रताप सिंह तक का वर्णन है।' इस ग्रंथ में 17 वीं शती

के चित्तौड़ नरेश राजसिंह तक का वर्णन मिलने के कारण अब इसे 17 वीं शती की रचना माना जाता है; आदिकाल की नहीं।

यह ग्रंथ पाँच हजार छंदों में रचित है। इसमें युद्धों के वर्णन के साथ नायिका भेद, षड्ऋतु वर्णन आदि का चित्रण है। इसका मुख्य विषय राजाओं की प्रशंसा करना है। इसमें वीर के साथ-साथ शृंगार रस भी है। भाषा राजस्थानी है तथा दोहा, सवैया, कवित्त आदि छंद हैं। उदाहरण द्रष्टव्य है –

पिउ चित्तौड़ न आविऊ, सावण पहिली तीज।
जोवै बाट बिरहिणी खिण-खिण अणवै खीज॥
संदेसो पिण साहिबा, पाछो फिरिय न देह।
पंछी घाल्या पिंजरे, छूटण रो संदेह॥

बोध प्रश्न

- 'खुमाण रासो' को नौवीं शताब्दी की रचना क्यों माना जाता है?

3. बीसलदेव रासो (नरपति नाल्ह)

इसके रचनाकार नरपति नाल्ह हैं। अंतःसाक्ष्य के आधार पर इसका रचनाकाल संवत 1272 अर्थात सन 1215 ई. माना जाता है। इसमें अजमेर व साँभर के राजा बीसलदेव तथा रानी राजमती के प्रेम, विवाह तथा विवाहोत्तर जीवन का वर्णन है। विवाह के बाद एक दिन राजा बीसलदेव अपनी रानी राजमती से गर्वपूर्वक कहते हैं, 'हमारे यहाँ नमक की खान है, इसलिए मेरे समान और कोई नरेश नहीं।' बस क्या था, रानी ने भी पलटकर कह दिया कि 'आपसे बढ़कर भी नरेश हैं, जिनके यहाँ हीरों की खान हैं; जैसे – उड़ीसापति।' रानी के इस कथन से राजा बीसलदेव क्रुद्ध हो गए। स्वाभिमान को ठेस लगने से उन्हें अपमान महसूस हुआ। वे अपना राज्य छोड़कर उड़ीसा चले गए। 12 वर्ष बाद रानी के अनुनय-विनय के संदेश के बाद वे लौट कर आए। इस काव्य में स्वाभिमान के साथ-साथ नारी सौंदर्य, विरह आदि का भी मार्मिक वर्णन है। ध्यान रखा जाना चाहिए, यह रासो प्रचलित अर्थ में वीरगाथा नहीं है। यहाँ कवि का उद्देश्य न तो इतिहास को बताना है और न ही किसी राजा की प्रशंसा करना। यहाँ उद्देश्य स्वाभिमान के साथ नारी चरित्र का वर्णन करना है। स्वयं कवि कहता है –

बागवाणी मो वर दियो
अस्त्री रसायण करूँ बखाण। ××
हंस बाहणि मिगलोचनि नारि,
सीस समारइ दिन गिणइ,
जिण दिहाडाउ झूरितां॥

अर्थात, हे सरस्वती! मुझे वर दीजिए कि मैं 'स्त्री रसायण' का वर्णन करूँ। ×× हंसगमनी मृगलोचनी नारी सिर को सुलझाती हुई दिन गिनती है। हाय! किसी को परदेशवासी की पत्नी न बनाए। उसके सारे दिन विलाप करते ही व्यतीत होते हैं।

इस काव्य को 'संदेश-काव्य' की परंपरा में भी परिगणित किया जाता है। किसी भी दृष्टि से यह 'वीरगाथा' नहीं, बल्कि 'विरहगाथा' है। नारी जाति के प्रति कवि की गहरी सहानुभूति इस काव्य की विशेषता है। विरहिणी का कथन है कि 'हे ईश्वर! तुमने मुझे नारी जन्म क्यों दिया? इसकी अपेक्षा यदि किसी बनखंड की कोयल बना दिया होता, तो अपनी इच्छा से मैं किसी चंपा की डाल पर तो बैठ सकती थी!' नरपति नाल्ह द्वारा रचित इस काव्य में मार्मिक अनुभूतियों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति द्रष्टव्य है। इसकी भाषा तेरहवीं शती की राजस्थानी भाषा है।

बोध प्रश्न

- 'बीसलदेव रासो' को 'संदेश-काव्य' की परंपरा में क्यों परिगणित किया जाता है?

4. परमाल रासो या आल्हा खंड (जगनिक)

जगनिक द्वारा रचित 'परमाल रासो' या 'आल्हा खंड' (आल्हा) एक लोक गेय काव्य है। इसमें महोबा (उत्तर प्रदेश) के राजा परमर्दिदेव (परमाल) तथा उनके यहाँ रहने वाले दो वीर भाइयों आल्हा और ऊदल के वीरतापूर्ण युद्धों का वर्णन है। आल्हा उत्तर भारत में बहुत ही प्रसिद्ध है और वर्षा काल में गाई जाती है। इसका शब्द संयोजन और छंद प्रवाह अत्यंत ओजपूर्ण है। गाते समय आवाज में ऊँचाई आ जाती है, जिससे श्रोता के तन-मन में स्फूर्ति सी छा जाती है। एक उदाहरण देखें –

बारह बरिस लै कूकर जीवै, औ तेरह लै जिये सियार।
बरिस अठारह छत्री जीवै, आगे जीवन को धिक्कार॥

इस विषय में रामचंद्र शुक्ल का कथन है, 'इन गीतों के समुच्चय को सर्वसाधारण 'आल्हाखंड' कहते हैं जिससे अनुमान होता है कि आल्हा संबंधी ये वीरगीत जगनिक के रचे उस बड़े काव्य के एक खंड के अंतर्गत थे जो चंदेलों की वीरता के वर्णन में लिखा गया होगा। आल्हा और ऊदल परमाल के सामंत थे और बनाफर शाखा के क्षत्रिय थे। इन गीतों का एक संग्रह 'आल्हाखंड' के नाम से छपा है। फर्रूखाबाद के तत्कालीन कलेक्टर मि.चार्ल्स इलियट ने पहले पहल इन गीतों का संग्रह करके छपवाया था।'

चार्ल्स इलियट ने सन 1865 ई. में इसे 'आल्हाखंड' नाम से प्रकाशित कराया तो था, परंतु यह मौखिक परंपरा पर ही आधारित है। चार्ल्स वाली प्रति के आधार पर ही डॉ.श्यामसुंदर दास ने पाठ का निर्धारण कर इसे 'परमाल रासो' के नाम से नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित करवाया। इसका रचनाकाल 13 वीं शती का आरंभ माना जाता है, परंतु इसका मूल रूप सुरक्षित

न होने के कारण इसे प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता। जो प्रतियाँ उपलब्ध हैं, वे काफी बाद की हैं। अतः इसे आदिकाल की समय सीमा के बाद की रचना मानना पड़ेगा। इसलिए 'परमाल रासो' के विषय में डॉ.रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' ने यह निष्कर्ष दिया है कि 'भाषा की दृष्टि से इस काव्य का मूल्यांकन कर पाना संभव नहीं, क्योंकि मूल रूप का कोई भी अंश अब शुद्ध रूप में सुरक्षित नहीं है। ××× छंद-विधान की दृष्टि से इस काव्य की एक विशेष शैली है, जिसे 'आल्हा-शैली' कहना ही उचित होगा।'

बोध प्रश्न

- 'आल्हाखंड' किसे कहते हैं?

5. पृथ्वीराज रासो (चंद बरदाई)

पृथ्वीराज रासो हिन्दी साहित्य का 'आदि महाकाव्य' है। यह एक महत्वपूर्ण रचना होने के साथ-साथ अत्यधिक विवादास्पद भी है। पृथ्वीराज रासो के रचयिता चंद बरदाई माने जाते हैं, जो पृथ्वीराज चौहान के सखा, मंत्री तथा राजकवि थे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने चंद बरदाई के विषय में लिखा है कि, 'ये हिन्दी के प्रथम महाकवि माने जाते हैं और इनका 'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी का प्रथम महाकाव्य है। चंद दिल्ली के अंतिम हिंदू सम्राट महाराज पृथ्वीराज के सामंत और प्रसिद्ध राजकवि हैं। ×× इनके पूर्वजों की भूमि पंजाब थी, जहाँ लाहौर में इनका जन्म हुआ था। इनका और महाराज पृथ्वीराज का जन्म एक ही दिन हुआ था और दोनों ने एक ही दिन यह संसार भी छोड़ा था। ये महाराज के राजकवि ही नहीं, उनके सखा और सामंत भी थे तथा षड्भाषा, व्याकरण, काव्य, साहित्य, छंदशास्त्र, ज्योतिष, पुराण, नाटक आदि अनेक विद्याओं में पारंगत थे।'

पृथ्वीराज रासो के चार संस्करण मिलते हैं – बृहत, मध्यम, लघु और लघुतम। बृहत संस्करण में 16 हजार छंद हैं और कुल 69 समय (सर्ग)। यह काव्य इतिहास और लोक प्रसिद्ध गाथाओं का अनोखा मिश्रण है। उदाहरण के लिए, इसमें एक सर्ग प्रसिद्ध लोक चरित्र पद्मावती पर केंद्रित है जिसमें इतिहास-नायक पृथ्वीराज चौहान और आक्रमणकारी मुहम्मद गोरी के युद्ध का वर्णन तो है ही, पद्मावती के शृंगार का वर्णन भी है। उदाहरण देखें–

(1) शृंगार वर्णन

मनहुँ कला ससभान, कला सोलह सो बन्निय।
बाल बैस, ससि ता समीप, अम्रित रस पिन्निय॥
विगसि कमल, स्रिग, भ्रमर, बेनु, खंजन, मृग लुट्टिय।
हीर, कीर अरु बिंब मोति, नखसिख अहि घुट्टिय॥

(2) युद्ध वर्णन

बज्जिय घोर निसाँन रान चौहान चहौं दिस।
सकल सूर सामंत समरि बल जंत्र मंत्र तिस॥
उट्ठि राज प्रिथिराज बाग मनो लग्ग वीर नट।
कढ़त तेग मनवेग लगत मनो बीजु झट्ट घर॥
षुरासान सुलतान खंधार मीरं। बलष स्यो बलं तेग अच्चूक तीरं॥
रुहंगी फिरंगी हलब्बी सुमानी। ठटी ठट्ट बल्लोच ढालं निसानी॥

बोध प्रश्न

- 'पृथ्वीराज रासो' काव्य में किस प्रकार का मिश्रण पाया जाता है?

पृथ्वीराज रासो की कथा और विशेषता

'पृथ्वीराज रासो' 69 सर्गों वाला विशालमय महाकाव्य है। इसकी कथावस्तु के अंतर्गत मंगलाचरण के बाद क्षत्रियों की उत्पत्ति, अजमेर के सोमेश्वर का विवाह दिल्ली के अनंगपाल (तोमर) की पुत्री कमला के साथ, पृथ्वीराज का जन्म, अनंगपाल की द्वितीय पुत्री सुंदरी का विवाह कन्नौज के राठौर विजयपाल के साथ, पृथ्वीराज को गोद लिया जाना, जयचंद को बुरा लगना, राजसूय यज्ञ, कैमास वध, पृथ्वीराज द्वारा संयोगिता-हरण, पृथ्वीराज का भोग-विलास में लीन होना, शहाबुद्दीन का आक्रमण, पृथ्वीराज द्वारा अनेक युद्धों का लड़ा जाना तथा अंततः गजनी देश में मारा जाना सम्मिलित हैं। मान्यता है कि महाराज पृथ्वीराज के पराजित होने पर जब मोहम्मद गोरी उन्हें बंदी बनाकर गजनी ले गया तो उन्हें मुक्त कराने के उद्देश्य से चंद बरदाई भी गजनी चले गए। चलते समय उन्होंने अपना काव्य 'पृथ्वीराज रासो' अपने चौथे बेटे जल्हण (जल्ल) को सौंप दिया। यथा, 'पुस्तक जल्हन हत्थ दै चलि गज्जन नृपकाज।' बाद में, जल्हण ने इस काव्य के शेष भाग को पूरा किया।

'पृथ्वीराज रासो' में यह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि पृथ्वीराज का पतन उनकी अपनी ही तीन महत्वपूर्ण गलतियों के कारण होता है – एक कैमास जैसे साथी को छोटी सी बात पर मार देना, दूसरे जयचंद जैसे शक्तिशाली नरेश के राजसूय यज्ञ का विरोध करना और तीसरे संयोगिता के साथ विलास में इस प्रकार लीन हो जाना कि राज-काज की सुध भी भूल जाना।' इस काव्य से यह भी ज्ञात होता है कि चंद बरदाई ने पृथ्वीराज को विभिन्न अवसरों पर सावधान भी किया था। अभिप्राय यह है कि चंद बरदाई कोई स्तुतिवाचक दरबारी नहीं, कलम और तलवार दोनों के धनी राजकवि थे, जो आवश्यकता पड़ने पर राजा को झिड़क भी सकते थे।

बोध प्रश्न

- पृथ्वीराज के पतन का कारण क्या था?

'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता

'पृथ्वीराज रासो' एक ऐसी रचना है जिसकी प्रामाणिकता संदेह और विवाद का विषय बनी रही है। इसकी बहुत सारी घटनाएँ इतिहास-सिद्ध नहीं हैं। कर्नल टाड ने इसे एक ऐतिहासिक ग्रंथ मानकर इसका अंग्रेजी में अनुवाद करना प्रारंभ किया था कि 1875 ई. में डॉ. बूलर को कश्मीर में जयानक नामक कवि द्वारा संस्कृत में रचित रचना 'पृथ्वीराज विजय' प्राप्त हुई। उससे मिलान करने पर इसमें कई बातें–घटनाएँ बेमेल सिद्ध हुईं। डॉ.बूलर ने इसे अप्रामाणिक घोषित कर दिया। पं.गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने भी इसे अप्रामाणिक माना है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसके लिए 'जाली' शब्द का प्रयोग किया है। वे लिखते हैं – 'इस संबंध में इसके अतिरिक्त और कुछ कहने की जगह नहीं कि यह पूरा ग्रंथ वास्तव में जाली है। ... इस दशा में भाटों के इस वाग्जाल के बीच कहाँ पर कितना अंश असली है, इसका निर्णय असंभव होने के कारण यह ग्रंथ न तो भाषा के इतिहास के और न साहित्य के इतिहास के जिज्ञासुओं के काम का है।' लेकिन कुछ आलोचक ऐसे भी हैं जो इसे प्रामाणिक मानते हैं। कुछ ऐसे भी हैं जो इसे अर्ध प्रामाणिक मानते हैं।

'पृथ्वीराज रासो' को 'अप्रामाणिक' मानने वालों में कविराज मुरारिदान, कविराज श्यामलदान, पं.गौरीशंकर हीराचंद ओझा, मुंशी देवी प्रसाद मुंसिफ़, आचार्य रामचंद्र शुक्ल तथा अमृतलाल शील प्रमुख हैं।

इस रचना को 'प्रामाणिक' मानने वालों में मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, मिश्र बंधु, डॉ.श्यामसुंदर दास, महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री, अगरचंद नाहटा, मोहन सिंह राव और डॉ. दरशरथ शर्मा प्रमुख हैं।

'अर्ध प्रामाणिक' मानने वालों में सुनीति कुमार चाटुर्ज्या और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी प्रमुख हैं। द्विवेदी जी मानते हैं कि इसकी रचना शुक-शुकी संवाद के रूप में हुई थी। जिस सर्ग में यह पद्धति दिखे वह प्रामाणिक है और जहाँ यह पद्धति न दिखे वहाँ इसे अप्रामाणिक मानना चाहिए। डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त बताते हैं, 'डॉ. द्विवेदी केवल उन्हीं सर्गों को प्रामाणिक मानते हैं जिनका आरंभ शुक-शुकी संवाद से हुआ है। इसी आधार पर उन्होंने अपने संपादित 'संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो' में इन सात सर्गों को स्थान दिया है– (1) आरंभिक सर्ग, (2) इंछिनी का विवाह, (3) शशिव्रता का विवाह, (4) तोमर पाहार का शहाबुद्दीन को पकड़ना, (5) संयोगिता का विवाह, (6) कैमास वध और (7) गौरी वध।

बोध प्रश्न

- 'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता के संबंध में हजारी प्रसाद द्विवेदी क्या कहते हैं?

अप्रामाणिकता के लिए तर्क

जो आलोचक पृथ्वीराज रासो को अप्रामाणिक मानते हैं उनके तर्क ये हैं -

(1) इसमें आई घटनाएँ पूरी तरह इतिहास से मेल नहीं खातीं।

(2) इसमें चालुक्य, चौहान तथा परमार क्षत्रियों को अग्निवंशी माना गया है जबकि ये सूर्यवंशी ठहरते हैं।

(3) अनंगपाल, बीसलदेव तथा पृथ्वीराज के राज्यों के संदर्भ भी ठीक नहीं हैं।

(4) संयोगिता स्वयंवर जैसी घटनाएँ इतिहास से मेल नहीं खाती हैं।

(5) पृथ्वीराज रासो में पृथ्वीराज की माँ का नाम कमला बताया गया है, जबकि उनकी माँ का नाम कर्पूरी था।

(6) पृथ्वीराज द्वारा गुजरात के राजा भीमसिंह का वध इतिहास सम्मत नहीं है।

(7) पृथ्वीराज की बहन पृथा का विवाह मेवाड़ के राणा समरसिंह के साथ बताया गया है जो ऐतिहासिक नहीं है।

(8) मोहम्मद शहाबुद्दीन गोरी की मृत्यु पृथ्वीराज चौहान के हाथों दिखाई गई है, जो इतिहास से मेल नहीं खाती।

(9) सोमेश्वर का वध पृथ्वीराज के हाथों दिखाया गया, यह भी इतिहास सम्मत नहीं है।

(10) इसमें आई हुई तिथियों में लगभग 90-100 वर्षों का अंतर है।

बोध प्रश्न

- 'पृथ्वीराज रासो' की अप्रामाणिकता के संबंध में तीन तर्क बताइए।

प्रामाणिकता के लिए तर्क

इसके विपरीत, जो आलोचक पृथ्वीराज रासो को प्रामाणिक मानते हैं, उनके द्वारा भी कई तर्क दिए जाते हैं। जैसे –

(1) डॉ. दशरथ शर्मा का मत है कि इसका मूल प्रक्षेपों में छिपा हुआ है और जो लघुतम प्रतियाँ हैं, उनमें इतिहास संबंधी अशुद्धियाँ नहीं मिलती हैं।

(2) जहाँ तक तिथियों में 90-100 वर्षों के अंतर का प्रश्न है, तो वह संवत की भिन्नता के कारण है। इसके निराकरण के लिए मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या ने 'आनंद संवत' की बात कही है। इसके हिसाब से ये तिथियाँ भी शुद्ध सिद्ध होती हैं।

(3) अप्रामाणिक मानने वाले विद्वान यह भूल गए लगते हैं कि पृथ्वीराज रासो इतिहास ग्रंथ नहीं है। यह एक काव्य रचना है और इसमें कल्पना का समावेश होना स्वाभाविक है। अतः इसमें इतिहास की सच्ची घटनाओं को (ज्यों का त्यों) खोजना निरर्थक है। अतः इतिहास की घटनाओं के पृथ्वीराज रासो की घटनाओं से मेल न खाने पर उसे अप्रामाणिक घोषित करना न्यायोचित नहीं है।

(4) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है कि 'पृथ्वीराज रासो' की रचना शुक-शुकी संवाद के रूप में हुई थी। जिन समयों (सर्गों) में यह शैली नहीं मिलती उन्हें प्रक्षिप्त माना जाना चाहिए। यदि यह तर्क मान लिया जाए तो वे अंश जो इतिहास के विरुद्ध हैं, प्रक्षिप्त सिद्ध होते हैं।

(5) इसके बाद 'पृथ्वीराज रासो' में शेष अंश प्रामाणिक सिद्ध होते हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे 12 वीं शताब्दी का ग्रंथ सिद्ध किया है क्योंकि इसमें बारहवीं शताब्दी की हिन्दी भाषा की 'संयुक्ताक्षरमयी अनुस्वारांत' प्रवृत्ति मिलती है।

(6) पृथ्वीराज रासो में अरबी-फारसी के शब्द आए हैं। इस आधार पर भी यह कहा जाता है कि यह अप्रामाणिक है। परंतु हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि चंद बरदाई लाहौर के निवासी थे। उस समय तक वहाँ मुसलमानों का प्रभाव आ चुका था। मुसलमानों के पास अरबी-फारसी शब्दावली थी। उस शब्दावली का प्रयोग चंद बरदाई द्वारा किया जाना स्वाभाविक है।

'पृथ्वीराज रासो' की प्रासंगिकता के विषय में डॉ. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' ने लिखा है, 'वस्तुतः विद्वानों ने बाल की खाल खींचने की चेष्टा में अनेक ऐसे तर्क प्रस्तुत किए हैं, जो इस काव्य की प्रामाणिकता के लिए उचित कसौटी नहीं बन सकते। 'पृथ्वीराज रासो' ही नहीं, 'रामचरितमानस', 'सूरसागर', 'बीजक' आदि अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों पर भी यदि अनेक प्रकार के तर्क दिए जाएँ, तो उनकी प्रामाणिकता भी किसी न किसी सीमा तक संदेह का विषय बन सकती है। 'रामचरितमानस' में तो प्रक्षिप्त अंश स्वीकार किए भी जाते हैं। कई ऐसे पद भी मिलते हैं, जो सूर और मीरा दोनों के नाम से प्रसिद्ध हैं। अतः प्रक्षिप्तांशों या इतिहास-विरोधी कथनों के आधार पर 'पृथ्वीराज रासो' को अप्रामाणिक मानना उचित नहीं है। चंद ने पृथ्वीराज के जीवन की घटनाओं का जैसा सजीव वर्णन किया है, उसे देखकर यही कहा जा सकता है कि वह पृथ्वीराज का समकालीन कवि था। अतः 'रासो' को अप्रामाणिक मानना उचित नहीं है। यदि इस विवाद में कोई सत्यांश झलकता भी है, तो वह इतना ही कि 'पृथ्वीराज रासो' में पर्याप्त प्रक्षिप्त अंशों का भी समावेश हुआ है।' यहाँ इस कथन से सहमत हुआ जा सकता है।

बोध प्रश्न

- 'पृथ्वीराज रासो' को अप्रामाणिक मानना क्यों न्यायोचित नहीं है?

4.3.4 रासो साहित्य की भाषा

आदिकालीन ऐतिहासिक रासो काव्यों में भाषा के विविध रूप दिखाई देते हैं। 'पृथ्वीराज रासो' में कई भाषाएँ मिली हुई हैं। भाषा गड्डमड्ड वाली स्थिति में है, तो भी यह अवश्य है कि शब्दावली का चयन परिस्थितियों के अनुकूल है। रासो काव्य में डिंगल तथा पिंगल, नामक दो काव्य शैलियाँ मिलती हैं। डिंगल में बुंदेलखंडी तथा अवधी के साथ राजस्थानी का मिश्रण होता

है। पिंगल काव्य शैली में ब्रजभाषा का वह रूप मिलता है जिसमें राजस्थानी बोलियों का मिश्रण है। "आदिकालीन हिन्दी साहित्य में वीर रस की रचनाओं में डिंगल शैली का प्रयोग होता था तथा कोमल भावों की अभिव्यंजना पिंगल शैली में की जाती थी।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. नगेंद्र)। डिंगल में ओज गुण प्रधान कर्कश शब्दावली अपनाई जाती थी और पिंगल में माधुर्य गुण प्रधान कोमल शब्दावली। इन काव्यों में विभिन्न प्रकार के छंदों (छप्पय, दोहा आदि) का प्रयोग किया गया है। 'पृथ्वीराज रासो' में लगभग अड़सठ प्रकार के छंदों का प्रयोग मिलता है। 'पृथ्वीराज रासो' में महाकाव्य के लक्षणों के अनुरूप नवों रसों का परिपाक है। अन्य रासो ग्रंथों में शृंगार, वीर, अद्‌भुत, करुण, रौद्र और शांत रस विशेष रूप से मिलते हैं।

बोध प्रश्न

- 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा कैसी थी?

4.4 पाठ-सार

'रास' शब्द का तात्पर्य सामान्य नाचने-गाने से भी लिया जाता है और विशिष्ट नाट्यरूप से भी। प्राकृत अपभ्रंश के नियमानुसार 'रासक' के 'रासअ', 'रासउ', 'रास' आदि रूप विकसित हो जाते हैं जबकि राजस्थानी में प्रायः संज्ञाएँ अकारात्मक से ओकारात्मक हो जाती हैं, अतः 'रासो' का प्रयोग होना स्वाभाविक है। आदिकालीन रासो काव्य मुख्यतः दो प्रकार के हैं – धार्मिक रासो काव्य और ऐतिहासिक रासो काव्य। धार्मिक रासो काव्य में जैन साहित्य आता है। ऐतिहासिक रासो काव्य में बीसलदेव रासो, परमाल रासो और पृथ्वीराज रासो आदि स्वीकार किए जाते हैं। 'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता तथा अप्रामाणिकता पर बराबर विवाद बना रहा है। तथापि इसके साहित्यिक महत्व को नकारा नहीं जा सकता। यह 'हिन्दी का प्रथम महाकाव्य' है। रासो साहित्य से देशभक्ति, राज भक्ति, सामंती समाज, आपसी युद्ध, ईर्ष्या, द्वेष आदि की जानकारी मिलती है। तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त होता है। इनमें भाषा तथा शैली की विविधता भी द्रष्टव्य है।

4.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं –

1. आदिकाल में उपलब्ध रासो काव्य दो प्रकार के हैं - ऐतिहासिक और धार्मिक।
2. धार्मिक रासो काव्यों की गणना जैन साहित्य के अंतर्गत की जाती है, जबकि ऐतिहासिक रासो काव्यों को वीरगाथाओं के अंतर्गत रखा गया है।
3. आदिकालीन ऐतिहासिक रासो काव्यों में चंदबरदाई का 'पृथ्वीराज रासो' प्रमुख है। इसकी चार अलग-अलग संस्करण मिलते हैं। यह एक विकासशील महाकाव्य है अतः इसमें प्रक्षेप भी

बड़ी मात्रा में है। इसके बावजूद यह माना जाता है कि शुक-शुकी संवाद के रूप में इसका मूल रूप इतिहास सम्मत और प्रामाणिक है।

4. आदिकालीन ऐतिहासिक रासो काव्यों में नरपति नाल्ह कृत 'बीसलदेव रासो' मूलतः विरह काव्य है, वीर काव्य नहीं। इसमें नारी मन की पीड़ा का मार्मिक अंकन है।

4.6 शब्द संपदा

1. अप्रामाणिक = जो मानने योग्य न हो, जो प्रमाण से सिद्ध न हो
2. उदात्त तत्व = ऊँचा, महान, श्रेष्ठ
3. ओज गुण = तेज, प्रताप, कविता का वह गुण जिसे सुनकर लोगों में वीरता, उत्साह आदि का आवेश हो
4. प्रक्षेप = ग्रंथ में जोड़ा गया अंश
5. प्रामाणिक = सिद्ध हुआ
6. राज्याश्रित = जिसका पालन-पोषण राज्य या शासन द्वारा हो
7. सर्ग = सृजन, रचना, किसी ग्रंथ या काव्य का अध्याय
8. सामंत = किसी राजा के अधीन रहने वाला ऊँचे ओहदे वाला सरदार जो अपने क्षेत्र में राजा जैसा व्यवहार करता हो

4.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग <u>500</u> शब्दों में दीजिए।

1. 'पृथ्वीराज रासो' की अप्रामाणिकता तथा प्रामाणिकता पर अपना मत व्यक्त कीजिए।
2. 'बीसलदेव रासो' का साहित्यिक परिचय दीजिए।
3. ऐतिहासिक रासो साहित्य की प्रासंगिकता पर प्रकाश डालिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग <u>200</u> शब्दों में दीजिए।

1. 'रासो' शब्द पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
2. 'परमाल रासो' पर चर्चा कीजिए।
3. रासो साहित्य पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
4. रासो साहित्य की भाषा पर टिप्पणी लिखिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए

1. 'पृथ्वीराज रासो' के रचयिता कौन हैं? ( )
   (अ) जगनिक (आ) दलपतिविजय (इ) चंदबरदाई (ई) नरपति नाल्ह
2. किस काव्य में महाराज परमर्दिदेव के शौर्य का वर्णन है? ( )
   (अ) परमाल रासो (आ) पृथ्वीराज रासो (इ) खुमाण रासो (ई) बीसलदेव रासो
3. पृथ्वीराज रासो में कुल कितने समय (सर्ग या अध्याय) हैं? ( )
   (अ) 7 (आ) 69 (इ) 15 (ई) 12

II रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

1. 'पृथ्वीराज रासो' की रचना .... संवाद के रूप में हुई थी।
2. बीसलदेव रासो को .... की परंपरा में परिणत किया जाता है।
3. .... लोक गेय काव्य है।
4. .... काव्य शैली में ब्रजभाषा का वह रूप मिलता है जिसमें राजस्थानी बोलियों का मिश्रण है।

4.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. नगेंद्र और हरदयाल
3. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (प्रथम खंड), गणपतिचंद्र गुप्त
4. हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, लक्ष्मी नारायण वार्ष्णेय
5. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह

इकाई 5 : भक्ति आंदोलन : सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 मूल पाठ : भक्ति आंदोलन : सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

5.3.1 भक्ति आंदोलन : सामान्य परिचय

5.3.1.1 'भक्ति' का अर्थ और विस्तार

5.3.1.2 भक्ति साहित्य की प्रेरणा

5.3.1.3 राजनैतिक परिवेश का प्रभाव

5.3.2 भक्ति आंदोलन की सामाजिक पृष्ठभूमि

5.3.3 भक्ति आंदोलन की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

5.4 पाठ-सार

5.5 पाठ की उपलब्धियाँ

5.6 शब्द संपदा

5.7 परीक्षार्थ प्रश्न

5.8 पठनीय पुस्तकें

5.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल पर्याप्त विस्तार वाला काल है। उसे अखिल भारतीय मध्यकालीन भक्ति आंदोलन का अंग माना जाता है। भक्ति तथा भक्ति आंदोलन के उदय को लेकर भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों में मतभेद रहा है। कुछ विद्वानों के अनुसार भक्ति आंदोलन ईसाईयत की देन है, तो कुछ के अनुसार यह अरब संस्कृति और इस्लाम के प्रभाव का परिणाम है। कुछ विद्वानों ने तात्कालिकता को महत्व दिया तो कुछ ने इसे भारतीय चिंतनधारा का स्वाभाविक विकास माना। इस इकाई में भक्ति आंदोलन की सामाजिक और राजनैतिक पृष्ठभूमि पर चर्चा की जा रही है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप –

- भक्ति आंदोलन के स्वरूप के बारे में जान सकेंगे।
- भक्ति आंदोलन की सामाजिक पृष्ठभूमि के विषय में जान सकेंगे।
- भक्ति आंदोलन की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को समझ सकेंगे।

- भक्ति आंदोलन के अखिल भारतीय परिप्रेक्ष्य को समझ सकेंगे।
- भक्ति से संबंधित संप्रदायों और उनके आचार्यों के बारे में जान सकेंगे।

5.3 मूल पाठ : भक्ति आंदोलन : सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

5.3.1 भक्ति आंदोलन : सामान्य परिचय

प्रिय छात्रो! भारत के इतिहास को देखने से यह पता चलता है कि मध्यकाल में समूचे भारत वर्ष में भक्ति आंदोलन का फैलाव हुआ। इसका अर्थ है कि 'भक्ति' को व्यक्तिगत आध्यात्मिक साधना से आगे बढ़कर सामाजिक-सांस्कृतिक अभियान का रूप दिया गया। भक्ति का प्रारंभ कैसे हुआ, इस प्रश्न का उत्तर विद्वानों ने अपनी-अपनी तरह से अलग-अलग दिया है। जार्ज ग्रियर्सन ने भक्ति-भावना को ईसाई धर्म का प्रभाव माना किंतु उनकी इस बात को किसी ने स्वीकार नहीं किया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने भक्ति के प्रारंभ को तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों की देन माना। लेकिन आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने परिस्थितियों से अधिक महत्व परंपरा को दिया। अधिक संतुलित मतभेद हो सकते हैं कि भक्ति आंदोलन के उदय के लिए परिस्थितियों और परंपराओं दोनों का ही महत्व रहा।

उल्लेखनीय है कि भक्ति आंदोलन का आरंभ दक्षिण भारत में आलवार और नायनार संतों के माध्यम से हुआ। बाद में 800 ई. से 1700 ई. के बीच यह उत्तर भारत सहित समूचे दक्षिण एशिया में फैल गया। माना जाता है कि बौद्धमत की प्रतिक्रिया के रूप में शंकराचार्य ने इस आंदोलन को नेतृत्व प्रदान किया। संत बसवेश्वर, चैतन्य महाप्रभु, नामदेव, तुकाराम, जय देव, शंकर देव, गुरु नानक, कबीर, सूर, तुलसी, जायसी, रैदास, मीराँबाई आदि के माध्यम से इसने व्यापक जनजागरण के आंदोलन का रूप लिया और सारे समाज को गहराई तक प्रभावित किया।

भारत में साधना की तीन पद्धतियाँ अति प्राचीन काल से चली आ रही हैं – ज्ञान, कर्म और उपासना। इनमें उपासना ही 'भक्ति' का मूल है। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के शब्दों में "भक्ति के लिए यह स्वाभाविक हो गया कि वह बिखरी हुई शक्तियों में सामंजस्य लाकर अपनी दृष्टि किसी एक में निविष्ट करें। फलस्वरूप बहुदेवों की कल्पना सिमटकर धीरे-धीरे एक में ही समाहित होने लगी और कहा जाने लगा कि विद्वान लोग उसी (सत) को इंद्र, मित्र, वरुण या अग्नि के नाम से पुकारते हैं, इस एकेश्वरवाद की प्रतिष्ठा होने के बाद भक्ति के रूप में धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगा। पहले जहाँ प्रकृति का दैवीकरण किया गया वहीं अब देवों का मानवीकरण होने लगा जिसे आगे चलकर अवतारवाद कहा गया।" आगे चलकर विष्णु के दस अवतारों की परिकल्पना सामने आई और भक्ति पर केंद्रित इस मत को भागवत धर्म भी कहा जाने लगा। लेकिन याद रखिए कि भक्ति आंदोलन केवल अवतारवाद तक सीमित नहीं है, उसमें निर्गुण और निराकार ब्रह्म की साधना भी सम्मिलित है।

बोध प्रश्न

- भक्ति का मूल क्या है?
- अवतारवाद किसे कहते हैं?

5.3.1.1 'भक्ति' का अर्थ और विस्तार

आम बोलचाल में 'भक्ति' शब्द का प्रचलित अर्थ है – 'ईश्वरीय प्रेम में लीन होना।' अर्थात भक्ति आत्मा के परमात्मा से मिलन का माध्यम है। मोनियर विलियम्स के अनुसार 'भक्ति' की व्युत्पत्ति 'भज्' से हुई है। 'भज्' का तात्पर्य है – भाग लेना, सम्मिलित होना। अर्थात 'ईश्वरीय अनुभूति में श्रद्धा पूर्वक भाग लेना।' कहा जाता है कि भक्ति-भावना आर्यों के दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विचारों के फलस्वरूप क्रमशः श्रद्धा और उपासना से विकसित होकर भगवान के ऐश्वर्य में भाग लेने के अर्थ तक विस्तृत है। (हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. नगेंद्र, पृ.88)।

यह भी उल्लेखनीय है कि मध्यकाल में जो भक्ति आंदोलन पूरे भारत में फैला, उसकी दार्शनिक स्रोत वैदिक भक्ति परंपरा रही, तो उसे सामाजिक दृष्टि दक्षिण भारत से प्राप्त हुई। "वैदिक भक्ति परंपरा के समानांतर दक्षिण भारत में द्रविड़-संस्कृति गर्भित पृथक परंपरा का सूत्रपात हो चुका था। यह परंपरा ईसा पूर्व कई शताब्दियों से चली आ रही थी। इसमें शरणागति और समर्पण की भावना प्रबल रूप में पाई जाती थी और जो कालांतर में दाक्षिणात्य आचार्यों द्वारा उत्तर भारत में भी लोकप्रिय बनी।" (आचार्य परशुराम चतुर्वेदी)।

इस प्रकार स्पष्ट है कि मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के जीवन और साहित्य दोनों में क्रांति की भावना पैदा की। इससे पहले गौतम बुद्ध, महावीर आदि ने धार्मिक क्रांति तथा समाज सुधार का काम किया था। इसी प्रकार दक्षिण के आलवार भक्तों ने भक्तिपूर्ण उपासना-पद्धति का प्रचार किया। ये वैष्णव धर्म के अनुयायी थे। दक्षिण का यह वैष्णव मतवाद ही भक्ति के प्रचार का मूल प्रेरक है। दक्षिण के रामानुजाचार्य ने वैष्णव भक्ति का प्रचार उत्तर भारत में किया। भक्ति आंदोलन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें शास्त्रार्थ से मुक्त भक्ति का प्रचार निहित है तथा जाति-भेद के लिए इसमें कोई स्थान नहीं है क्योंकि आलवारों में निम्न वर्ग के भक्त भी थे। स्वयं रामानुज का प्रादुर्भाव भी इन्हीं लोगों की परंपरा से हुआ है। रामानुजाचार्य के विचारों को उत्तर भारत में रामानंद ने फैलाया। रामानंद ने भी वर्णाश्रम धर्म का उपदेश नहीं दिया तथा कई निम्न जाति के भक्तों को अपना शिष्य बनाया। इनमें कबीरदास प्रमुख हैं। इस प्रकार भक्ति के रूप में एक नया आंदोलन स्थापित हुआ जिसके प्रचार-प्रसार का माध्यम बना साहित्य। विभिन्न आंदोलनों और संप्रदायों (यथा निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति) के बावजूद भक्ति साहित्य का लक्ष्य एक ही था – 'आंतरिक प्रेम निष्ठा के आधार पर जीवन का उन्नयन और परिष्कार।' इस साहित्य में भक्ति-भावना को ही सर्वोत्तम पुरुषार्थ माना गया। भक्ति को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से भी बढ़कर परम पुरुषार्थ के रूप में अपनाया गया। अतः भक्ति आंदोलन लोकरक्षक, लोकरंजक और सामूहिक चेतना के जागरण का आंदोलन सिद्ध होता है।

बोध प्रश्न

- भक्ति आंदोलन की विशेषता क्या है?
- विभिन्न भक्ति आंदोलनों का लक्ष्य क्या था?

5.3.1.2 भक्ति साहित्य की प्रेरणा

प्रिय छात्रो! 'आदिकाल' के उपरांत, 14 वीं शताब्दी के मध्य से 19 वीं शताब्दी के मध्य तक के 500 वर्ष के लंबे काल खंड को हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'मध्यकाल' के नाम से पुकारा जाता है। इस पूरे काल की चेतना 'मध्यकालीन चेतना' है। 'मध्यकालीन चेतना' से अभिप्राय उस चिंतन परंपरा से है जिसमें व्यापक समाज की अपेक्षा उन संस्थाओं को केंद्रीय महत्व दिया जाता है जो समाज का संचालन करती हैं। ये संस्थाएँ हैं – धार्मिक सत्ता और राजनैतिक सत्ता। इनमें से धार्मिक सत्ता भक्ति आंदोलन के रूप में 17 वीं शती के मध्य तक प्रमुख रही, इसलिए 1350 से 1650 ई. तक के काल को पूर्व मध्यकाल अथवा भक्तिकाल कहना तर्क संगत है। इसके बाद 1850 ई. तक की अवधि को उत्तर मध्य काल या रीतिकाल कहा जाता है।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार, 'हिन्दी साहित्य के संदर्भ में भक्तिकाल से तात्पर्य उस काल से है, जिसमें मुख्यतः भागवत धर्म के प्रचार तथा प्रसार के परिणामस्वरूप भक्ति आंदोलन का सूत्रपात हुआ था। उसकी लोकोन्मुखी प्रवृत्ति के कारण धीरे-धीरे लोक प्रचलित भाषाएँ भक्ति भावना की अभिव्यक्ति का माध्यम बनती गईं और कालांतर में भक्ति विषयक विपुल साहित्य की बाढ़ सी आ गई।' यद्यपि इस काल में भक्ति के अलावा अन्य साहित्य भी रचा गया, लेकिन उसका प्रभाव न के बराबर रहा। इसलिए पूर्व मध्यकाल को भक्तिकाल कहना पूर्णतः उचित है। यह काल लगभग पूरे भारत में भक्ति आंदोलन के उदय, प्रचार, प्रसार और विस्तार का काल था।

14 वीं शताब्दी के मध्य से 17 वीं शताब्दी के मध्य तक के काल (पूर्व मध्यकाल) को हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'भक्तिकाल' के नाम से जाना जाता है। इस काल का समूचा साहित्य मध्यकालीन भक्ति आंदोलन की काव्यात्मक परिणति है। इसलिए इसमें उस व्यापक जनजागरण की प्रेरणा के सूत्र छिपे हुए हैं, जिसने भारतीय समाज को मध्यकालीन राष्ट्रीय और सांस्कृतिक संक्रमण को झेलने की शक्ति प्रदान की थी। भक्ति की इस प्रधानता के कारणों के रूप में इतिहासकारों ने तीन विचार प्रस्तुत किए हैं, जो निम्नलिखित हैं –

(1) आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने यह माना है कि इस युग में मुस्लिम शासकों का आधिपत्य हो जाने के कारण हिंदू जाति अवसाद का अनुभव करने लगी थी। इस्लाम से आक्रांत और पददलित भारतीय जनता के निराश हृदयों में भक्ति और शांति का संचार करने के लिए तत्कालीन कवियों ने भक्तिपरक काव्य की रचना की। वे यह मानते हैं कि भक्ति का मूल स्रोत दक्षिण भारत था, जिसे राजनैतिक परिवर्तन के कारण शून्य पड़ते हुए उत्तर भारत की जनता के हृदय क्षेत्र में फैलाने के

लिए पूरा स्थान मिला। लुटी-पिटी जनता की चित्तवृत्ति का झुकाव स्वाभाविक रूप से ईश्वर भक्ति की ओर हुआ और उसी के अनुरूप साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन हुआ।

(2) दूसरी मान्यता के अनुसार भक्ति आंदोलन हिन्दी साहित्य में केवल तात्कालिक प्रतिक्रिया के रूप में नहीं उभरा, बल्कि आदिकाल के बाद भक्ति भावना का उदय कोई आकस्मिक घटना न होकर उस चिंतनधारा का सहज विकास है, जो भारतीय लोकमानस में पिछली कई शताब्दियों से प्रवाहित होती हुई अपने पूर्ण विकास के लिए अनुकूल भक्ति की तलाश कर रही थी। जयशंकर प्रसाद ने इसके लिए दार्शनिक संदर्भ को रेखांकित करते हुए कहा है कि "दुखवाद जिस मनन शैली का फल था, वह बुद्धि या विवेक के आधार पर तर्कों के आश्रय में बढ़ती रही। अनात्मवाद की प्रतिक्रिया होनी ही चाहिए। फलतः पिछले काल में भारत के दार्शनिक अनात्मवादी ही भक्तिवादी बने और बुद्धिवाद का विकास भक्ति के रूप में हुआ।" इस आधार पर सिद्धों और नाथों की परंपरा में भक्ति आंदोलन के सूत्र खोजे जा सकते हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसी प्रकार भक्ति आंदोलन को भारतीय परंपरा का अपना स्वतःस्फूर्त विकास माना है। वे हिन्दी के भक्ति साहित्य के मूल में बौद्ध तत्ववाद को निहित मानते हैं और ज़ोर देकर कहते हैं कि लोक के स्तर पर पहुँचकर बौद्ध-धर्म लोक-धर्म बना और धीरे-धीरे निर्गुण तथा सगुण भक्ति धाराओं का प्रेरक तत्व बन गया। वे मानते हैं कि यदि भारत में इस्लाम न भी आता तो भी भक्ति साहित्य का 75 प्रतिशत वैसा ही होता जैसा आज है। अर्थात वे मुस्लिम आक्रमण की तत्कालीन परिस्थिति को भक्ति आंदोलन का केवल एक गौण कारण मानते हैं। साथ ही, उनकी यह भी मान्यता है कि मध्यकाल में प्राकृत और अपभ्रंश की शृंगारिकता की प्रतिक्रिया ने भी लोक चिंता के साथ जुड़ी हिन्दी कविता में भक्तिपरक रचनाओं को बढ़ावा दिया। वे भक्ति आंदोलन के उदय के संदर्भ में विचार करने के क्रम में ग्रियर्सन की इस मान्यता को भी खारिज करते हैं कि भक्ति आंदोलन बिजली की चमक के समान अचानक पैदा हुआ था। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भक्ति साहित्य की लंबी परंपरा से जोड़कर भक्ति आंदोलन के उदय को देखते हैं। उनका स्पष्ट मानना है कि भक्ति आंदोलन 'बिजली की चमक' नहीं, बल्कि उसके लिए 'मेघखंड' बहुत पहले से इकट्ठे हो रहे थे।

(3) भक्ति साहित्य के उदय के संबंध में शुक्ल जी के मुस्लिम आक्रमण को प्रधानता देने तथा द्विवेदी जी के परंपरा तत्व को महत्ता देने के सिद्धांतों के समन्वय पर आधारित एक तीसरी मान्यता भी है। वह यह है कि यदि इस्लाम के प्रचार और प्रतिक्रिया की व्याख्या सहज भाव और कुंठाहीन मन से की जाए, तो भक्ति साहित्य के उदय की मूल प्रेरणा के रूप में उक्त दोनों ही सिद्धांतों को स्वीकार किया जा सकता है। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार "भक्ति काव्य के विकास के पीछे (i) बौद्ध धर्म का लोकमूलक रूप है और (ii) प्राकृतों के शृंगार काव्य की प्रतिक्रिया है तो (iii) इस्लाम के सांस्कृतिक आतंक से बचाव की सजग चेष्टा भी है।"

अगर आप इस समय की राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और दार्शनिक परिस्थितियों पर विचार करें, तो पाएँगे कि –

1. हिन्दी साहित्य में भक्तिकाव्य की मूल प्रेरणा उस काल में भारत भर में फैला हुआ 'भक्ति आंदोलन' है।
2. भक्ति आंदोलन भारतीय समाज में जड़ जमा चुके भेदभाव पूर्ण आचार-व्यवहार की प्रतिक्रिया के रूप में पहले-पहल दक्षिण भारत में आरंभ हुआ।
3. दक्षिण से भक्ति आंदोलन उत्तर भारत में पहुँचा।
4. उत्तर भारत में उस समय इस्लाम के आगमन के कारण संघर्ष का माहौल था। इस माहौल में भक्ति आंदोलन को पनपने का अनुकूल अवसर मिला।

बोध प्रश्न

- पूर्व मध्यकाल को 'भक्तिकाल' कहना उचित क्यों है?
- भक्ति की प्रधानता का क्या कारण है?
- 'मध्यकालीन चेतना' से क्या अभिप्राय है?

5.3.1.3 राजनैतिक परिवेश का प्रभाव

भक्ति आंदोलन की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को समझने के लिए भक्तिकालीन राजनैतिक वातावरण को भी समझना जरूरी है। आपको यह याद रखना होगा कि, राजनैतिक दृष्टि से भक्तिकाल के एक छोर पर मुहम्मद तुगलक (1325-1351 ई.) और दूसरे छोर पर शाहजहाँ की सत्ता (1628-1658 ई.) विद्यमान है। अर्थात, यह काल भारतीय इतिहास का वह महत्वपूर्ण समय है, जिसमें दिल्ली सल्तनत में तुगलक वंश से लेकर मुगल वंश तक का आधिपत्य रहा।

मुहम्मद तुगलक एक सनकी परंतु निष्पक्ष शासक था। उसने राजधानी को दिल्ली से देवगिरि (दौलताबाद) ले जाने के चक्कर में दिल्ली क्षेत्र को उजाड़ दिया, ताँबे के सिक्के चलाए, चीन पर हमले का प्रयास किया और मिस्र के खलीफा से अपने शासन के लिए धार्मिक स्वीकृति ली। इसके बावजूद हिंदुओं के प्रति उदारता के कारण उसके सरदार भी उससे नाराज हो गए। आगे चलकर उसके उत्तराधिकारी फिरोज़शाह ने कट्टरवादी सरदारों के समक्ष समर्पण कर दिया और इस तरह सत्ता पर उसकी पकड़ कमजोर हो गई।

1398 में तुर्क सरदार तैमूर लंग ने विशाल सेना लेकर भारत पर आक्रमण किया। दिल्ली में उसने घर-घर घुसकर भयानक लूटपाट की और समरकंद में वापस जाकर लूट के धन से शानदार इमारतें, राजमहल और मस्जिदें बनाईं। भारत की दशा दीन-हीन हो चुकी थी। 1414 से 1451 तक सैयद वंशीय स्थानीय शासकों ने दिल्ली पर अधिकार रखा। इसके बाद लोदी वंश के अफगान सरदार ने दिल्ली के राज्य पर जबरदस्ती कब्जा कर लिया। इस वंश का अंतिम सुल्तान इब्राहिम

लोदी हुआ, जिसे मुगलों का सामना करना पड़ा और लोदी वंश का शासन समाप्त हो गया। इस काल में उत्तर भारत के मालवा, ग्वालियर, कन्नौज, बिहार, बंगाल और गुजरात जैसे राज्यों से दिल्ली की केंद्रीय सत्ता को अनेक बार युद्ध करना पड़ा। लोदी वंश के शासन काल में प्रांतों पर दिल्ली की पकड़ ढीली हो चुकी थी और मालवा आदि आजाद होने लगे थे। 1526 में इब्राहिम लोदी और सूबेदारों के मध्य गृहयुद्ध की स्थिति का लाभ उठाकर पानीपत के युद्ध में बाबर ने इब्राहिम लोदी को पराजित कर दिया। बाबर ने अफगान सरदार दिलावर खान का आमंत्रण पाकर यह आक्रमण किया था।

बाबर के आगमन के साथ दिल्ली में मुगल शासन की स्थापना हुई। राणा सांगा सहित कई हिंदू-मुस्लिम शासकों-सूबेदारों को जीतकर वह शीघ्र ही उत्तर भारत का एकछत्र शासक बन गया। उसके बाद हुमायूँ सुलतान बना। उसकी असामयिक मृत्यु के कारण उसके पुत्र अकबर को 13 वर्ष की उम्र में ही दिल्ली की सत्ता मिल गई। अकबर ने अनेक चुनौतियों का सामना करते हुए अपनी शक्ति, दूरदर्शिता, बुद्धिमत्ता और दृढ़ता से शासन को सुदृढ़ बनाया। युद्ध और विवाह की दुहरी राजनीति के सहारे अनेक प्रांतीय शासकों को पराजित भी किया और अपने अनुकूल भी बनाया। महाराणा प्रताप जैसे कुछ स्वाभिमानी राजपूतों को छोड़कर अधिकतर शासकों ने मुगल साम्राज्य की सर्वोपरिता को स्वीकार कर लिया और बदले में मान-मर्यादा तथा ऊँचे पद प्राप्त किए।

अकबर के बाद जहाँगीर और उसके बाद कूटनैतिक चालों से शाहजहाँ गद्दीनशीन हुए। शाहजहाँ के पुत्र औरंगजेब ने अपने भाई दाराशिकोह के युवराज बनने का खुलकर विरोध किया। हिंसा और कूटनीति के बल पर अपने सब प्रतिद्वंद्वियों को रास्ते से हटाकर और शाहजहाँ को बंदी बनाकर औरंगजेब ने 1658 में सत्ता हासिल कर ली। यही समय भक्तिकाल की अंतिम सीमा (1650 के आसपास) को भी व्यक्त करता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि राजनैतिक दृष्टि से समस्त उत्तर भारत इस काल में विदेशी आक्रांताओं के द्वारा स्थापित सत्ता के अधीन आ चुका था। परंपरागत भारतीय राजनैतिक शक्तियाँ और संस्थाएँ अंततः मुगल सत्ता के समक्ष आत्म समर्पण कर चुकी थीं। साथ ही प्रतिशोध, विरोध और विद्रोह की चिंगारियाँ भी ठंडी राख़ के भीतर से समय-समय पर अपने अस्तित्व का संकेत देती रहती थीं। निश्चय ही, सामान्य जनता इन तमाम युद्धों और कूटनैतिक चालों में सर्वाधिक हानि उठाती थी और इन सबसे ऊब चुकी थी। कहना न होगा कि इस ऊब ने सामान्य जनता को भक्ति आंदोलन से जुड़ने के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान किया।

बोध प्रश्न

- भक्तिकालीन राजनैतिक परिस्थिति कैसी थी?

5.3.2 भक्ति आंदोलन की सामाजिक पृष्ठभूमि

भक्तिकालीन साहित्य व्यापक भक्ति आंदोलन का हिस्सा है। इस आंदोलन की पृष्ठभूमि में विद्यमान समाज संक्रमण काल से गुजरने वाला समाज है। यों तो भारतीय समाज में अलग-अलग

स्रोतों से आई हुई जातियाँ सम्मिलित थीं, जो इस काल से पूर्व ही सामंजस्य की प्रक्रिया को पूरा कर चुकी थीं; परंतु इस काल में एक ऐसी जाति का आगमन विजेता के रूप में भारतीय समाज में हुआ जिसके साथ सामंजस्य बिठाना सरल नहीं था। यह जाति थी मुसलमान जिसके धार्मिक-सामाजिक विश्वास और आचरण भारतीयों के लिए विजातीय थे। इसलिए परस्पर घुलने-मिलने की गति धीमी रही तथा हिंदुओं और मुसलमानों के बीच लंबे समय तक आपसी विश्वास पैदा नहीं हो सका। बल्कि दोनों के एक दूसरे को शंका और घृणा की दृष्टि से देखने के कारण छुआछूत और आपसी भेदभाव ही बढ़ा।

हिंदू धर्म वर्णाश्रम व्यवस्था पर टीका हुआ था जिसकी जकड़बंदी के कारण समाज का विकास अवरुद्ध हो रहा था। दूसरी ओर इस्लाम धर्म भाईचारे का संदेश लेकर चला, जिसमें धर्म-परिवर्तन द्वारा कोई भी शामिल हो सकता था। यह धर्म-परिवर्तन धार्मिकता के आधार पर होता, तो शायद अच्छा रहता, परंतु स्वार्थ, बलात्कार और भय के कारण इस काल में जो धर्म परिवर्तन की घटनाएँ हुईं उनसे हिंदू समाज में भीषण आशंका और आतंक का प्रसार हुआ, इसलिए हिंदुओं के समक्ष अपनी कुलीनता को बचाने की चुनौती पैदा हो गई, जिसने कट्टरता को बढ़ावा दिया। इसके अलावा कुछ मुस्लिम शासकों का हिंदू जनता के साथ क्रूरता और भेदभाव का व्यवहार होने के कारण भी जनता को इस्लाम का संदेश बंधुता की अपेक्षा क्रूरता से भरा ही लगा। अनेक मुस्लिम शासकों की स्वेच्छाचारिता, कट्टरता और पाखंडप्रियता ने भी हिंदू-मुस्लिम सामंजस्य स्थापित होने में बाधा उत्पन्न की। (द्रष्टव्य : परशुराम चतुर्वेदी, मुस्लिमकाल : पूर्व पीठिका, हिन्दी साहित्य का इतिहास : सं. नगेंद्र)।

इस काल में हिंदू समाज अनेक जातियों और उपजातियों में बँट चुका था, जिसके कारण आपसी सद्भाव में कमी आ गई थी। दास प्रथा भी प्रचलित थी। स्त्रियों का सम्मान नहीं रह गया था। अमीरों और मुस्लिम शासकों के यहाँ अपहरण करके लाई गईं कुलीन स्त्रियाँ भोग की वस्तु समझी जाती थीं और दासियों के रूप में उन्हें उपहार में दिया-लिया जा सकता था। हिंदू राजा भी विलासिता में पीछे न थे। वे सैयद मुस्लिम महिलाओं को नर्तकी और दासी के रूप में रखते थे। बहुविवाह, स्त्रियों के पुनर्विवाह पर प्रतिबंध और सती जैसी प्रथाओं के कारण स्त्रियों का जीवन नारकीय हो गया था। हिंदुओं में बढ़ते असुरक्षा भाव के कारण इस काल में पर्दा प्रथा का भी प्रचलन बढ़ा।

भक्तिकालीन भारतीय समाज में मुसलमान भी अनेक वर्गों में बँट चुके थे। ये वर्ग सत्ता में स्थान, मूल निवास स्थान, सांसारिक पृष्ठभूमि और जातिगत प्रभाव के आधार पर उत्पन्न हुए थे। इन विपरीत परिस्थितियों के बीच भी अच्छी बात यह हुई कि मुस्लिम समाज में आक्रमण की वृत्ति स्थान पर सहनशीलता का भाव भी धीरे-धीरे पनपा, जिसका विकास सूफी साधकों के माध्यम से हुआ। तलवार से आतंक पैदा करके प्रेम की पट्टी बाँधना इस काल में इस्लाम प्रचार की

नीति बन गया। हिंदुओं की भाँति ही मुस्लिम समाज में भी निम्न वर्ग और महिलाओं की स्थिति शोचनीय थी। हरम प्रथा के कारण मुस्लिम औरतें नारकीय जीवन जी रही थीं।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि यह समय सामाजिक बदलाव और संघर्ष का समय था। आम जनता दिग्भ्रम की शिकार हो रही थी। भौतिक आश्रय के अभाव में वह धार्मिक आश्रय की ओर आशा की दृष्टि से देख रही थी। इस अभाव की पूर्ति के लिए भक्ति आंदोलन ने उसे तेजस्वी नेतृत्व प्रदान किया। फलस्वरूप एक प्रकार का सामाजिक पुनर्जागरण ही भक्ति आंदोलन के माध्यम से पूरे समाज में आरंभ हो गया।

बोध प्रश्न

- भक्ति आंदोलन की पृष्ठभूमि में कैसा समाज विद्यमान था?

5.3.3 भक्ति आंदोलन की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

सांस्कृतिक दृष्टि से भक्तिकालीन वातावरण में हिंदू और मुस्लिम संस्कृतियों का आमना-सामना, विरोध और समन्वय एक के बाद एक घटित हुआ। मध्यकालीन हिंदू संस्कृति में लोक और शास्त्र के अनुसार अलग-अलग जीवनधाराएँ विद्यमान थीं। इनके द्वारा एक ऐसी धार्मिक भावना का विकास हुआ जिसकी जड़ में एक दूसरे के प्रति सहिष्णुता का भाव था। उपनिषद और वेदांत की व्याख्याओं ने अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, केवलाद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद और शुद्धाद्वैतवाद जैसे मतों को विकसित किया जिनमें ईश्वर को निरपेक्ष मानकर उसकी भक्ति का प्रतिपादन किया गया है। (इन मतों पर हम अलग से चर्चा करेंगे।)

भक्तिकाल को विरासत में मध्यकालीन बोध से ग्रस्त एक ऐसी संस्कृति मिली थी जिसमें मानवीय पक्ष को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए परिवर्तन की आवश्यकता थी। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार, "इस काल में धर्म साधना की बाढ़ सी आ गई और गुह्य साधनाओं के अंतर्गत कृच्छ्र साधनाएँ भी प्रवेश पा गईं। धर्माचार और ज्ञान-चर्चा की आड़ में पाखंड को प्रश्रय मिलने लगा और समाज में एक प्रकार की अराजकता फैल गई। बाह्याडंबर तथा कर्मकांडीय बाह्य विधान के प्रति व्यंग्य किए जाने लगे।" इस वातावरण से जो घुटन पैदा हो रही थी, उसका समाधान जनता को भेदभाव रहित भक्ति में दिखाई दिया। इस कारण भी भक्ति आंदोलन को खूब फलने-फूलने का अवसर मिला।

प्रिय छात्रो! अब तक की चर्चा से यह तो आप समझ ही चुके होंगे कि मध्यकालीन भक्ति आंदोलन भारतीय इतिहास की अद्वितीय और विशिष्ट घटना है। इसने पूरे भारतीय जनमानस को कई शताब्दियों तक प्रभावित किया। इसकी दार्शनिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के रूप में भारतीय चिंताधारा की पूरी परंपरा विद्यमान है। इसे समझने के लिए इतिहास में और पीछे जाना पड़ेगा। भारत वर्ष में 8 वीं शताब्दी में वेदमत और लोकमत का जमकर समन्वय हुआ। उसके कारण सारा का सारा धार्मिक आंदोलन व्यापक समाज और जनता की ओर मुड़ गया। यही वह दौर था जब मठों और विहारों में पला-पुसा बौद्धधर्म धीरे-धीरे क्षीण हुआ। इसी समय शंकराचार्य (788-820 ई.) ने ज्ञानप्रधान अध्यात्म और उपनिषद की परंपरा का पुनः उत्थान किया। ब्रह्म के साक्षात्कार

के इस ज्ञानप्रधान मार्ग के अतिरिक्त आलवार भक्तों द्वारा समर्पणप्रधान भक्ति मार्ग का प्रचार किया गया। दक्षिण के कई आचार्यों ने गीता, उपनिषद और ब्रह्मसूत्र के आधार पर भक्ति के सिद्धांत की स्थापना की। 9 वीं शताब्दी के अंत में पुंडरीकाक्ष, पुलकनाथ, लक्ष्मीनाथ और यामुनाचार्य ने आलवार भक्तों की वाणी का प्रचार प्रसार किया।

उपनिषद, ब्रह्मसूत्र और गीता पर शंकराचार्य के भाष्य के आधार पर प्रतिष्ठित अद्वैतवाद ज्ञानमार्ग का मुख्य सिद्धांत बना। शंकराचार्य ने जीव और ब्रह्म का अद्वैत संबंध बताते हुए जगत को मिथ्या अर्थात असत्य माना। इसे मायावाद भी कहते हैं। ब्रह्मसूत्र की अलग-अलग व्याख्याओं ने ही आगे चलकर भक्ति मार्ग की अलग-अलग धाराओं को जन्म दिया। रामानुजाचार्य ने ब्रह्मसूत्र का भाष्य करते हुए विशिष्टाद्वैतवाद का प्रतिपादन किया। उन्होंने जीव और जगत को स्वतंत्र होते हुए भी ईश्वर के अधीन माना और दास्य भाव की भक्ति का प्रचार किया। इन्हीं की शिष्य परंपरा में रामानंद हुए। इन्होंने जातिपाँति से निरपेक्ष भक्ति का मार्ग सबके लिए खोल दिया तथा राम (ब्रह्म) के निर्गुण और सगुण दोनों रूपों को स्वीकार किया।

रामानुजाचार्य के अतिरिकत माध्वाचार्य ने द्वैतवाद और माधुर्यभाव की उपासना का प्रतिपादन किया जबकि निंबार्काचार्य ने द्वैताद्वैत या भेदाभेदावाद का प्रतिपादन किया। निंबार्काचार्य के मत से जीव, जगत और ब्रह्म एक दूसरे से अलग होते हुए भी तात्विक रूप से अभिन्न हैं, जीव और जगत का अस्तित्व ईश्वर की इच्छा के अधीन है, तथा जीव और ईश्वर का संबंध अंश और अंशी का है। उनके अनुसार कृष्ण परात्पर ब्रह्म हैं। उन्होंने राधा की उपासना पर विशेष बल दिया। राधावल्लभ संप्रदाय और हरिदासी (सखी) संप्रदाय इसी से प्रेरित हैं।

भक्तिकाल की दार्शनिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में विष्णु स्वामी के रुद्र संप्रदाय में हुए वल्लभाचार्य का महत्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने शुद्धाद्वैतवाद का प्रवर्तन किया। इसे ब्रह्मवाद भी कहते हैं। वल्लभाचार्य ने शंकराचार्य के मायावाद का खंडन करते हुए ब्रह्म की सर्वव्यापकता स्वीकार की और पुष्टिमार्गीय भक्ति का विकास किया। इसमें भगवत-अनुग्रह को महत्व प्रदान किया गया तथा श्रीमद् भागवत की नवधाभक्ति (श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन) में माधुर्य भाव को जोड़कर दशधा भक्ति का प्रचार किया। माधुर्य भाव की भक्ति में भक्त अपने आराध्य से कांताभाव से प्रेम करता है। गोपियों तथा मीरा का कृष्ण के प्रति प्रेम इसी कोटि का है। इसमें भक्त और भगवान का संबंध गोपी और कृष्ण के समान होता है। ध्यान रहे कि माधुर्य भक्ति सूफी प्रेम मार्ग से भिन्न है। सूफी प्रेम मार्ग में ईश्वर स्त्री और भक्त पुरुष है, अतः कांताभाव न होने से वह माधुर्य भक्ति नहीं है।

इन सबके साथ-साथ भक्ति आंदोलन की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के निर्माण में इस्लाम के एकेश्वरवाद और सूफियों के 'अनलहक' का भी प्रभाव माना गया है।

बोध प्रश्न

- शुद्धाद्वैतवाद को ब्रह्मवाद क्यों कहा जाता है?

- अद्वैतवाद को मायावाद क्यों कहा जाता है?
- द्वैताद्वैतवाद का क्या अर्थ है?

5.4 पाठ-सार

हिन्दी साहित्य के पूर्व मध्यकाल को 'भक्ति काल' के नाम से जाना जाता है। इसका विस्तार लगभग 1350 ई. से लगभग 1650 ई. तक अर्थात कुल तीन शताब्दियों तक माना जाता है। वास्तव में यह समय पूरे भारतवर्ष में 'भक्ति आंदोलन' के जन्म और प्रचार-प्रसार का समय था। इसलिए यह कहना अधिक उचित है कि हिन्दी का भक्ति साहित्य वास्तव में देशव्यापी भक्ति आंदोलन का हिस्सा था।

यों तो भारत में वैदिक काल से ही ईश्वर की आराधना के तीन मार्गों ज्ञान, कर्म और उपासना के भीतर भक्ति का भी समावेश रहा है। लेकिन मध्यकाल में बौद्ध और जैन मतों के उभार के बाद शंकराचार्य ने ब्रह्म, जीव और माया के संबंध का जो सिद्धांत दिया, उसकी अलग-अलग व्याख्याओं ने भक्ति के अलग-अलग संप्रदायों को जन्म दिया। इसी क्रम में रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैत का प्रतिपादन करते हुए दास्य भाव की भक्ति पर बल दिया। इनके शिष्य रामानंद ने भक्ति के इस आंदोलन को दक्षिण भारत से उत्तर भारत तक ले जाने का महान कार्य किया। इनके अलावा माध्वाचार्य ने माधुर्य भाव, निंबार्काचार्य ने द्वैताद्वैत और वल्लभाचार्य ने दशधा भक्ति का प्रचार किया।

भक्ति के इन विविध संप्रदायों ने ईश्वर को समर्पण भाव द्वारा प्राप्त करने की साधना पर बल दिया तथा सब प्रकार के सामाजिक भेदभाव और ऊँच-नीच के विचार का खंडन किया। तत्कालीन समाज के सामने एक बड़ा द्वंद्व इस्लाम के आगमन से उत्पन्न हो गया था। अपने समतामूलक सामाजिक स्वरूप के कारण इस्लाम ने वर्णव्यवस्था और जातिप्रथा के सताए हुए लोगों को अपनी ओर आकर्षित भी किया। उसी समय भक्ति आंदोलन ने भारतीय समाज की रूढ़ियों का खंडन किया तथा ईश्वर की प्राप्ति के लिए समर्पण और शरणागति का सरल रास्ता प्रस्तुत किया। दक्षिण के संत कई शताब्दी पहले ही यह घोषित कर चुके थे कि ईश्वर के समक्ष सब बराबर हैं – चाहे वे किसी भी जाति या वर्ण के हों। इस घोषणा ने भी भक्ति आंदोलन की मूल प्रेरणा का काम किया।

कुल मिलकर चौदहवीं शती से सत्रहवीं शती के बीच के लगातार बदलते सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश ने भक्ति आंदोलन को पनपने और फैलने का अवसर प्रदान किया।

5.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

1. अपने आराध्य के प्रति परम प्रेम ही भक्ति है। इसकी भारत में प्राचीन समय से ही परंपरा चली आ रही है।
2. चौदहवीं शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक भारत में व्यापक भक्ति आंदोलन चला।

3. भक्ति आंदोलन दक्षिण भारत से उत्तर भारत में पहुँचा। उस समय उत्तर भारत में इस्लाम के आगमन के कारण संघर्ष का माहौल था। इस माहौल में भक्ति काव्य को पनपने का अनुकूल अवसर मिला।
4. भक्ति आंदोलन केवल धार्मिक आंदोलन नहीं था। वह सामूहिक परिवर्तन की गति प्रदान करने वाला आंदोलन भी था। इसीलिए भारतीय समाज में जड़ जमा चुके भेदभावपूर्ण आचार-व्यवहार की आलोचना इस आंदोलन की मुख्य विषय वस्तु बनी।

5.6 शब्द संपदा

1. अनात्मवाद = आत्मा की अस्वीकृति का सिद्धांत, जड़वाद
2. अवतारवाद = अवतारों की धार्मिक अवधारणा में विश्वास रखने वाला सिद्धांत
3. उपासना = आराधना, प्रार्थना, पूजा-सेवा करना
4. एकेश्वरवाद = वह मत जो बहुदेववाद के विरुद्ध केवल एक ईश्वर को जगत का नियंता मानता है
5. पुरुषार्थ = वह मुख्य अर्थ, उद्देश्य या प्रयोजन जिसकी प्राप्ति या सिद्धि के लिए मनुष्य का प्रयत्न करना आवश्यक कर्तव्य है
6. मानवीकरण = मनुष्य रूप देना, मनुष्य बनना, रचनाकार द्वारा अमूर्त एवं जड़ पदार्थों का मानवी रूप में चित्रण

5.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. भक्ति साहित्य को प्रभावित करने वाले राजनैतिक परिवेश पर चर्चा कीजिए।
2. भक्ति आंदोलन की सामाजिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए।
3. भक्ति आंदोलन की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का परिचय दीजिए।
4. 'भक्ति आंदोलन लोकरक्षक, लोकरंजक और सामूहिक चेतना के जागरण का आंदोलन है।' इस कथन को सिद्ध कीजिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. भक्ति आंदोलन के उदय के कारणों पर विचार कीजिए।
2. भक्ति आंदोलन के अखिल भारतीय स्वरूप पर प्रकाश डालिए।

3. भक्ति आंदोलन के प्रमुख आचार्यों का परिचय दीजिए।

4. 'भक्ति' के अर्थ पर चर्चा कीजिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए

1. अद्वैतवाद के प्रवर्तक कौन हैं ? ( )
   (अ) शंकराचार्य (आ) रामानुजाचार्य (इ) यामुनाचार्य (ई) वल्लभाचार्य
2. विशिष्टाद्वैत का प्रतिपादन किसने किया था? ( )
   (अ) शंकराचार्य (आ) यामुनाचार्य (इ) रामानुजाचार्य (ई) वल्लभाचार्य
3. शुद्धाद्वैतवाद का प्रवर्तन किसने किया था? ( )
   (अ) शंकराचार्य (आ) वल्लभाचार्य (इ) रामानुजाचार्य (ई) मध्वाचार्य

II रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

1. बौद्ध मत की प्रतिक्रिया के रूप में .... ने भक्ति आंदोलन को नेतृत्व प्रदान किया।
2. .... ने दशधा भक्ति का प्रचार किया।
3. .... ने पुष्टिमार्गीय भक्ति का विकास किया।

III सुमेल कीजिए

i) अद्वैतवाद	(अ) शंकराचार्य
ii) विषष्टाद्वैतवाद	(आ) रामानुजाचार्य
iii) द्वैतवाद	(इ) मध्वाचार्य
iv) द्वैताद्वैतवाद	(ई) निंबार्काचार्य
v) शुद्धाद्वैतवाद	(उ) वल्लभाचार्य

5.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. नगेंद्र और हरदयाल
3. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह
4. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, गणपतिचंद्र गुप्त

इकाई 6 : भक्तिकाल की सामान्य विशेषताएँ

रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 मूल पाठ : भक्तिकाल की सामान्य विशेषताएँ

6.3.1 भक्तिकाल का नामकरण

6.3.2 भक्तिकाल की प्रवृत्तियाँ

(1) निर्गुण-भक्ति धारा

(क) ज्ञानाश्रयी शाखा या संत काव्य की सामान्य विशेषताएँ

(ख) प्रेममार्गी सूफी-काव्य की सामान्य विशेषताएँ

(2) सगुण-भक्ति धारा

(क) कृष्णभक्ति शाखा की सामान्य विशेषताएँ

(ख) रामभक्ति शाखा की सामान्य विशेषताएँ

6.4 पाठ-सार

6.5 पाठ की उपलब्धियाँ

6.6 शब्द संपदा

6.7 परीक्षार्थ प्रश्न

6.8 पठनीय पुस्तकें

6.1 प्रस्तावना

साहित्य के इतिहासकारों के लिए साहित्य के इतिहास का कालविभाजन जितना दुष्कर कार्य था शायद उतना सरल उनका नामकरण हो गया था। इन इतिहासकारों के सामने पर्याप्त मात्रा में सामग्रियाँ थीं तथा जिनके आधार पर इन्होंने काल-नामकरण किया। इसमें दो राय नहीं कि आदिकाल को छोड़कर मध्यकालीन तथा आधुनिक काल का नामकरण सरल जान पड़ा होगा। चूँकि मध्यकाल तक आते-आते जो राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिस्थितियाँ देखने को मिलती हैं, उनसे यह अनुमान लगाना काफी सरल हो जाता है कि तत्कालीन जनता की मनोदशा कैसी थी। इसके अनुरूप कवियों का रचनाकर्म उसी मनोदशा के अनुसार तानेबाने में बुना जाने लगा। भले ही मार्ग सबके अलग थे, लेकिन लक्ष्य एक था – भक्ति। अपने आराध्य को खुश करना, उसमें तल्लीन हो जाना।

कौन कितना बड़ा भक्त था यह दिखाने या साबित करने की आवश्यकता नहीं थी। उनके लिए यह काफी था कि उन्हें अपनी शांति व आत्मसंतुष्टि का माध्यम मिल गया था। दूसरी ओर

उनकी सामाजिक चेतना उन्हें समाज की जड़-रूढ़ कुप्रथाओं को उखाड़ फेंकने की प्रेरणा दे रही थी। इसी खोज के फलस्वरूप सगुण और निर्गुण भक्ति की दो धाराएँ बहीं जिन्होंने सामान्य जनता को अपना लक्ष्य प्रदान किया।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के द्वारा आप –

- भक्तिकाल के नामकरण के औचित्य को जान सकेंगे।
- भक्तिकाल की निर्गुण और सगुण भक्ति काव्यधाराओं के बारे में जान सकेंगे।
- निर्गुण भक्ति धारा की शाखाओं - संत काव्य और सूफी काव्य - की सामान्य विशेषताओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- सगुण भक्ति धारा की शाखाओं - कृष्ण काव्य और राम काव्य - की सामान्य विशेषताओं को समझ सकेंगे।

6.3 मूल पाठ : भक्तिकाल की सामान्य विशेषताएँ

6.3.1 भक्तिकाल का नामकरण

चौदहवीं शताब्दी तक पूर्वी प्रदेशों में सहजयानी (सिद्ध) और नाथपंथी साधकों की साधनात्मक रचनाएँ प्राप्त होती हैं और पश्चिमी प्रदेशों में नीति, शृंगार और कथानक-साहित्य की रचनाएँ उपलब्ध होती हैं। एक में भावुकता, विद्रोह और रहस्यवादी मनोवृत्ति की प्रमुखता है और दूसरी में नियम-निष्ठा, रूढ़िपालन और स्पष्टवादिता का स्वर है। एक में सहज सत्य को आध्यात्मिक वातावरण में सजाया गया है, दूसरी में लौकिक वायुमंडल में। 14वीं-15वीं शताब्दी में दोनों प्रकार की रचनाएँ एक में सिमटने लगी थीं। दोनों के मिश्रण से उस भावी साहित्य की सूचना इसी समय मिलने लगी जिसे 'भक्ति साहित्य' के नाम से जाना गया। संक्षेप में कह सकते हैं कि इस काल की लगभग सभी रचनाओं में भक्ति की धारा प्रवाहित हुई है। भक्ति की इस मूल प्रवृत्ति के कारण इस काल को 'भक्तिकाल' नाम दिया गया है।

मिश्रबंधुओं ने इस काल को माध्यमिक काल कहते हुए इसके दो विभाग किए थे–

(1) पूर्व माध्यमिक काल (1445-1560 ई.)

(2) प्रौढ़ माध्यमिक काल (1561-1680 ई.)

मिश्रबंधुओं द्वारा दिए गए नाम की तुलना में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अधिक परिष्कृत नामकरण प्रस्तुत किया। उन्होंने मध्यकाल को पूर्वमध्यकाल (सं.1375-1700) और उत्तर मध्यकाल (सं.1700-1900) में विभाजित किया। जैसे कि आप जानते हैं, पूर्वमध्यकाल को भक्तिकाल (सं.1375-1700, तदनुसार, 1318-1643ई.) तथा उत्तर मध्यकाल को रीतिकाल (सं.1700-1900) के नाम से सर्वमान्यता मिली।

भक्तिकाल की चार मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं, जिन्हें भक्तिधाराओं और शाखाओं के नाम से जाना जाता है। इसका वर्गीकरण इस प्रकार किया जाता है –

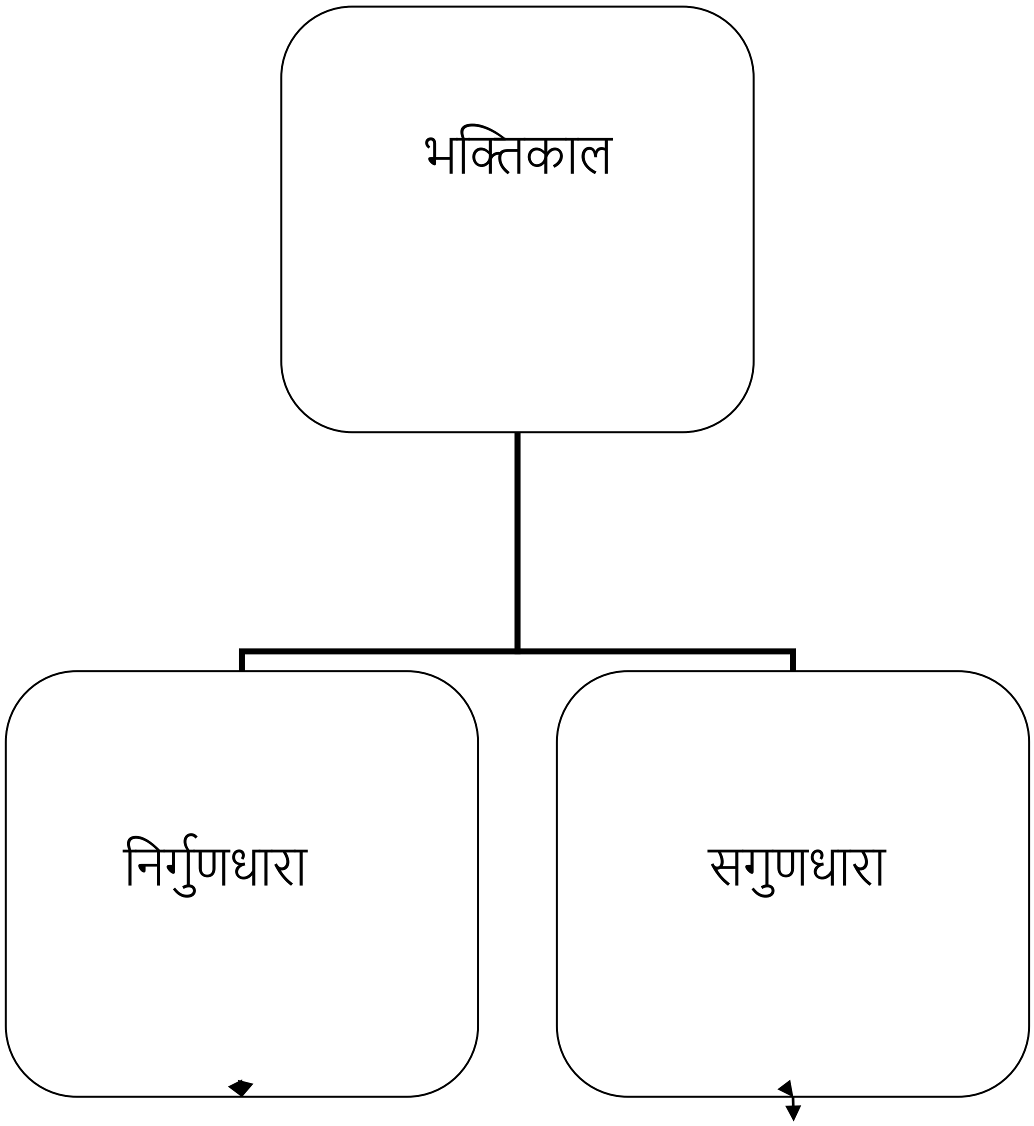

ज्ञानाश्रयी शाखा (प्रवर्तक कवि) कबीरदास

प्रेमाश्रयी शाखा (प्रवर्तक कवि) जायसी

कृष्णभक्ति शाखा (प्रवर्तक कवि) सूरदास

रामभक्ति शाखा (प्रवर्तक कवि) तुलसीदास

बोध प्रश्न

- मिश्र बंधुओं ने भक्तिकाल को क्या कहा?
- ‘भक्ति साहित्य’ किसे कहा जाता है?
- भक्तिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियाँ क्या हैं?

6.3.2 भक्तिकाल की प्रवृत्तियाँ

काव्यागत दृष्टि से भक्तिकाल, हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग माना जाता है। हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में भक्ति की दो धाराएँ – निर्गुण तथा सगुण प्रवाहित हुईं। ये ही भक्तिकाल की प्रमुख प्रवृत्तियों की सूचक हैं। आगे हम इनकी शाखाओं और विशेषताओं की चर्चा करेंगे।

(1) निर्गुण-भक्ति धारा

निर्गुण-भक्ति धारा के अंतर्गत दो प्रवृत्तियाँ या शाखाएँ विकसित हुईं – (1) ज्ञानाश्रयी शाखा तथा (2) प्रेमाश्रयी शाखा। चूँकि ज्ञानाश्रयी शाखा नामदेव एवं कबीर जैसे संतों द्वारा प्रवर्तित थी इसलिए इस ज्ञानाश्रयी शाखा को 'संत काव्य-परंपरा' के नाम से भी पुकारा जाता है। स्मरण रहे कि समस्त भक्तिकाव्य में शरणागति अथवा संपूर्ण समर्पण द्वारा आराधना की प्राप्ति का मार्ग बताया गया है। यहाँ इसकी विशेषताओं का उल्लेख किया जा रहा है।

(क) ज्ञानाश्रयी शाखा या संत काव्य की सामान्य विशेषताएँ

(i) **सद्‌गुरु का महत्व** : कबीर के गुरु स्वामी रामानंद थे। गुरु को भगवान से अधिक महत्व देना संत कवियों की एक सर्वमान्य विशेषता है –

गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूँ पाइ।

बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविन्द दियो बताइ॥

(ii) **ईश्वर के निर्गुण रूप में विश्वास** : भारत में ईश्वर के दो रूपों में उपासना की जाती रही है– निर्गुण ब्रह्म और सगुण ब्रह्म। संतों ने निर्गुण ईश्वर की भक्ति का मार्ग अपनाया। इसके पीछे इस्लाम का प्रभाव भी देखा जा सकता है। सभी वर्णों और तमाम जातियों के लिए वह निर्गुण ईश्वर एकमात्र ज्ञानमय है। वह अविगत है। वेद, पुराण तथा स्मृतियाँ उस तक नहीं पहुँच सकते –

निर्गुण राम जपहु रे भाई, अविगत की गति लखी न जाई।

(iii) **बहुदेववाद तथा अवतारवाद का विरोध** : संत कवियों ने हिंदू-मुस्लिम दोनों जातियों में द्वेष को शांत करने के लिए इस्लाम धर्म से प्रेरित एकेश्वरवाद का संदेश सुनाया और बहुदेववाद का घोर विरोध किया –

यह सिर नवे न राम कूँ, नाहीं गिरियो टूट।

आन देव नहिं परसिए, यह तन जाए छूट॥

(iv) **जाति-पाँति का विरोध** : हिंदू धर्म में वर्ण व्यवस्था एवं जाति-पाँति के नियम कड़े थे। उच्च कुल के लोगों के पास से गुजरना तक निम्न जाति के लोगों के लिए दंडनीय अपराध था। इस सौतेली व्यवस्था को देख संत कवियों ने एक सार्वभौम मानव धर्म की स्थापना करनी चाही। इसका विशेष कारण यह है कि एक तो अधिकांश संत निम्न जाति से संबंध रखते थे – कबीर

जुलाहे थे, रैदास चर्मकार थे। इसके अतिरिक्त भक्ति आंदोलन भी जाति-भेद एवं वर्ग-भेद को तुच्छ ठहरा रहा था। इसलिए इनके अनुसार व्यक्ति की पहचान उसके ज्ञान से होना चाहिए –

'जाति पाँति पूछे नहिं कोई, हरि को भजे सो हरे का होई।'

'जाति न पूछो साधु की पूछ लीजियो ज्ञान।'

(v) **रूढ़ियों और आडंबरों का विरोध** : संत समाज-सुधारक थे। इस कारण इन्होंने रूढ़ियों, मिथ्या आडंबरों तथा अंधविश्वासों का डटकर विरोध किया। इन्होंने मूर्तिपूजा, छुआछूत, तीर्थ, व्रत आदि विधि-विधानों, बाह्य आडंबरों और जाति-पाँति के भेद - दृढ़ शब्दों में खंडन किया। उदाहरणार्थ, कबीर ने एक ओर मूर्तिपूजकों पर व्यंग्य किया – पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहाड़ – तथा दूसरी ओर मुसलमानों को भी फटकार लगाई – यह तो खून वह बंदगी, कैसे खुशी खुदाय!

(vi) **रहस्यवाद** : निर्गुण संत काव्य के प्रमुख रचनाकार कबीर रहस्यवादी हैं। रहस्यवाद के मूल में अज्ञात शक्ति की जिज्ञासा काम करती है। इनके काव्य में मुख्यतः अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना हुई जिसे रहस्यवाद की संज्ञा दी गई है। जिज्ञासु जब ज्ञानी की कोटि पर पहुँचकर कवि भी होना चाहता है, तब तो अवश्य ही वह रहस्यवाद की ओर झुकता है। चिंतन के क्षेत्र का ब्रह्मवाद कविता के क्षेत्र में जाकर कल्पना और भावुकता का आधार पाकर इस रहस्यवाद का रूप धारण करता है। साहित्य के क्षेत्र में यही रहस्यवाद है। कबीर के शब्दों में –

मो को कहाँ ढूँढ़े बन्दे मैं तो तेरे पास में।

ना मैं देवल, ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में॥

इनके रहस्यवाद पर कहीं-कहीं योग का भी स्पष्ट प्रभाव है जहाँ कि इंगला, पिंगला और सहस्रदल कमल आदि प्रतीकों का प्रयोग है।

(vii) **भजन एवं नाम-स्मरण की महिमा** : संतों ने ईश्वर प्राप्ति के लिए प्रेम और नाम-स्मरण को परम आवश्यक माना है। वेद-शास्त्र इस संबंध में निरर्थक हैं –

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोई।

ढाई आखर प्रेम के, पढ़ै सो पंडित होइ॥ (कबीर)

(viii) **लोक-संग्रह की भावना** : इस वर्ग के सभी कवि पारिवारिक जीवन व्यतीत करने वाले थे। यही कारण है कि इनकी वाणी में जीवन के विभिन्न अनुभवों की धारा बहती है तथा साधना में वैयक्तिकता की अपेक्षा सामाजिकता अधिक है। इन्होंने समाज को दृष्टि में रखकर आत्म-शुद्धि पर बल दिया है।

(ix) **नारी के प्रति दृष्टिकोण** : संत कवियों ने नारी को माया का प्रतीक माना है तो दूसरी ओर सती और पतिव्रता के आदर्श की प्रशंसा भी की है। उदाहरण के तौर पर –

नारी की झाईं परत, अन्धा होत भुजंग।

कबिरा तिनकी कहा गति, नित नारी के संग॥ (कबीर)

संत कवि पारिवारिक जीवन बिताते थे, शायद यही कारण है कि उन्होंने पतिव्रता नारी की तारीफ भी की है –

पतिव्रता मैली भली, कानी कुचित कुरूप।

पतिव्रता के रूप पर, वारों कोटि सरूप॥ (कबीर)

(x) **रस-वस्तु** : काव्य के माध्यम से संतों ने अपनी अनुभूति को जनता तक पहुँचाने का प्रयास किया है, इस कारण रस की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता 'साधारणीकरण' इनके काव्य में विद्यमान है। संतों ने अधिकतर साखियों, सवैयों एवं पदों की रचना की है। दांपत्य प्रतीकों के माध्यम से संयोग एवं वियोग शृंगार के उदाहरण मिलते हैं।

(xi) **भाषा एवं काव्य-शैली** : संत काव्य की भाषा जनसामान्य की भाषा है। तत्कालीन परिवेश के अनुरूप संतों की वाणी मुख्यतः जनता के अशिक्षित, उपेक्षित और पिछड़े हुए वर्गों के लिए थी। संत घुमक्कड़ जीवन बिताते थे, अतः उनकी रचनाओं में उन विभिन्न प्रदेशों की बोलियों के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं, जहाँ उन्होंने भ्रमण किया था। फलतः इनके काव्य में ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी, पंजाबी तथा राजस्थानी का अधिक प्रयोग मिलता है। इस कारण इनकी भाषा को सधुक्कड़ी भाषा भी कहा जाता है।

संत कवियों ने अपने विचारों की अभिव्यक्ति मुख्यतः 'साखी' और 'सबद' के माध्यम से की है। साखियों की रचना दोहा, छंद में हुई है और सबद से तात्पर्य गेय पदों से है। इनके काव्य में मुख्यतः गेय मुक्तक शैली का प्रयोग हुआ है। गीति काव्य के सभी तत्व – भावात्मकता, संगीतात्मकता, सूक्ष्मता, वैयक्तिकता और भाषा की कोमलता, इनकी वाणी में मिलते हैं। उपदेशात्मक पदों में गीति-माधुर्य के स्थान पर बौद्धिकता आ गई है।

(ख) प्रेममार्गी सूफी-काव्य की सामान्य विशेषताएँ

निर्गुण भक्तिधारा की दूसरी शाखा प्रेममार्गी शाखा या सूफी काव्य परंपरा के नाम से जानी जाती है। इसके प्रतिनिधि कवि मलिक मुहम्मद जायसी हैं जो हिन्दी के प्रमुख कवि हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने माना था कि इस शाखा के अधिकांश कवि सूफी थे जो इस्लाम के अनुयायी भी थे। "अब इस परंपरा में पचास से अधिक कवियों के अस्तित्व का पता चला है, जिनमें से बहुसंख्यक हिंदू थे। इन हिंदू कवियों ने काव्यारंभ में गणेश, सरस्वती, कृष्ण, ब्रह्मा आदि हिंदू देवी-देवताओं की स्तुति करते हुए अपने धर्म पर पूर्ण आस्था व्यक्त की है।" (डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त, हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य : प्रवृत्ति विश्लेषण, हिन्दी साहित्य का इतिहास – सं. नगेंद्र, पृ.150)। अतः इस

धारा के काव्य को सूफीमत के प्रचार के लिए ही रचित मानना उचित न होगा। बल्कि ये काव्य हिंदू और मुस्लिम दोनों के अनुयायियों द्वारा रचित गंगा-जमुनी सभ्यता के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। इन्होंने ईश्वर प्राप्ति का मुख्य साधन प्रेम को माना। इसलिए निर्गुणधारा की यह शाखा प्रेममार्गी शाखा कहलाई। इसकी मुख्य प्रवृत्तियाँ निम्नवत हैं –

(i) **प्रेमभावना** - प्रेमाख्यानकों का मुख्य उद्देश्य प्रेम का प्रतिपादन करना है। प्रेम के वियोग पक्ष को इन्होंने अत्यधिक महत्व दिया है। इनके अनुसार प्रेम का असली रूप विरह में ही निखरता है, मिलन में नहीं। विरह अवस्था का वर्णन करते हुए उन्होंने बारहमासा के वर्णन को भी बहुत महत्व दिया है और इस संबंध में भारतीय पद्धति का ही व्यवहार किया है। हिन्दी प्रेमाख्यानकों अथवा सूफी काव्यकृतियों की एक बड़ी विशेषता है – प्रेम को जीवन का सर्वोपरि तत्व मानना। इसीलिए यहाँ प्रेम के प्रति एक उच्च दृष्टि का परिचय मिलता है। यह प्रेम सभी सामाजिक, नैतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक बाधाओं और कुंठाओं से परे है। सूफी काव्य में ब्रह्म परम सौंदर्यमय है और साधक परम प्रेममय।

(ii) प्रबंधात्मकता - इस परंपरा के काव्य प्रबंधात्मक शैली में रचित हैं, अतः उनमें कथात्मक तत्वों की प्रमुखता का होना स्वाभाविक है। इन कवियों ने पौराणिक आख्यानों के रोमांटिक तत्वों को विस्तार देते हुए उनकी आधारभूत भावना एवं धार्मिक मर्यादा को सुरक्षित रखा है। काव्यतत्व की दृष्टि से इनकी कथावस्तु में स्वाभाविकता की अपेक्षा वैचित्र्य की ही प्रमुखता है। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए यहाँ इन्हें नए-नए दृश्य, पात्र, प्रसंग, वातावरण तथा घटनाओं की नवीन सृष्टि करनी पड़ी है, वहीं अंतर्कथाओं का नियोजन भी किया है। डॉ.गणपतिचंद्र गुप्त के शब्दों में "वस्तुतः जो कार्य आज के सामान्य पाठक के लिए रोमानी व जासूसी उपन्यास करते हैं, वही कार्य मध्ययुगीन पाठक के लिए ये आख्यान करते थे – अतः इनकी कथावस्तु में असाधारण, विचित्र एवं रोमांचक घटनाओं की अधिकता का होना स्वाभाविक ही है।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. नगेंद्र, पृ.152)।

(iii) **चरित्र-चित्रण** - सूफी प्रेमाख्यानकों की कथाएँ किसी न किसी दंतकथा या लोक प्रचलित गाथा पर आधारित हैं। इनमें मानव पात्रों के साथ ही मानवेतर पात्र भी मिलते हैं। मानव पात्रों में प्रायः राजकुमार (नायक), राजकुमारी (नायिका) एवं उनसे संबंधित विभिन्न व्यक्ति आते हैं। मानवेतर पात्रों में नायिका के संरक्षक के रूप में असुर या राक्षस, नायक के सहयोगी के रूप में बैताल, हंस, तोता आदि या नायक को सोते हुए उठा ले जानेवाली अप्सराएँ, परियाँ आदि आती हैं। मानवेतर पात्र स्थिति के अनुसार कथानक को आगे बढ़ाने में अपना योगदान देते हैं तथा उसी के अनुरूप इनमें प्रवृत्ति-विशेष का विकास दिखाया गया है, लेकिन इनके पूरे व्यक्तित्व का निरूपण नहीं हुआ है। मुख्य बल नायक-नायिका के चरित्र विकास पर रहता है। इन काव्यों में प्रेम का केंद्र नारी पात्र है। वह परमात्मा का प्रतीक है। परशुराम चतुर्वेदी के शब्दों में – "सूफी कवियों ने नारी

को यहाँ अपनी प्रेम साधना के साध्य रूप में स्वीकार किया है, जिसके कारण वह इनके किसी प्रेमी के लौकिक जीवन की निरी भोग्य वस्तु मात्र नहीं रह जाती। वह उन साधकों की दृष्टि में स्वयं एक सिद्धि बनकर आती है और इसी कारण इन प्रेमाख्यानों में उसे प्रायः अलौकिक गुणों से युक्त भी बतलाया जाता है।"

(iv) **लोक-पक्ष एवं संस्कृति समन्वय की भावना -** सूफियों ने भारतीय परंपरा में विद्यमान प्रेम-कहानियाँ लेकर उनका अपने प्रयोजन के अनुरूप वर्णन किया है। संस्कृति समन्वय की भावना से इन्होंने हिंदू धर्म के सिद्धांतों, रहन-सहन और आचार-विचार का सुंदर वर्णन किया है। इनके प्रेमकाव्यों में लोक जीवन का भी चित्रण है, जैसे अंधविश्वास, मनौतियाँ, तंत्र-मंत्र, जादू-टोना, विभिन्न लोकोत्सव, तीर्थ, व्रत, सांस्कृतिक वातावरण बड़ी सफलता से अंकित किए गए हैं जिनसे तत्कालीन जीवन को समझने में सहायता मिलती है।

(v) **शैतान व माया -** सूफी प्रेमकाव्यों में साधक को अपने मार्ग से भ्रमित करने वाले व्यवधान को शैतान अथवा माया बताया गया है। साधक अपने पीर या गुरु की कृपा से ही शैतान के पंजे से मुक्त हो सकता है। शैतान के द्वारा उपस्थित रुकावटों व संकटों से साधक की अग्निपरीक्षा होती है और उसके प्रेम में दृढ़ता तथा उज्ज्वलता आती है। उदाहरण के लिए जायसी के पद्मावत में राघव चेतन शैतान, नागमती माया और हीरामन तोता गुरु के प्रतीक माने जाते हैं।

(vi) **मंडनात्मक शैली -** संतों के स्वर में खंडनात्मकता की चुभने वाली कर्कशता थी जबकि सूफियों ने किसी संप्रदाय विशेष का खंडन नहीं किया। उन्होंने अपने कोमल स्वभाव से दोनों जातियों की एकता स्थापित करने में अधिक सफलता प्राप्त की। इसके पीछे थी उनकी मनोवैज्ञानिक पद्धति। इस नीति के कारण अनेक हिंदू सहज ही सूफी मत की ओर आकर्षित हुए।

(vii) **भाव एवं रस-व्यंजना -** प्रेमाख्यान काव्यों में प्रेम के सामने सामाजिक मर्यादाओं और परंपराओं का कोई मूल्य नहीं है। इस कारण इनकी प्रेम-भावना साहस एवं संघर्ष की भावना से अनुप्राणित है। इसे स्वच्छ रोमांटिक प्रेम कहा जा सकता है। उद्दीपन विभाव के अंतर्गत सूफियों ने सखा-सखी, वन, उपवन, ऋतु परिवर्तन आदि अन्य उपकरणों का सहारा लिया है। संयोग शृंगार में इन्होंने इतनी रुचि नहीं दिखाई। सौंदर्य-निरूपण में नायिका के नख-शिख, रूप-रंग, हाव-भाव, सूक्ष्म गुणों जैसे कला-कौशल, विदग्धता आदि का भी समावेश किया है। इनका काव्य कल्पना-शक्ति की सबलता और अनुभूति की सजीवता से अनुप्राणित है। सूफी कवियों का उद्देश्य लौकिक प्रेम कहानियों द्वारा अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना कर अव्यक्त सत्ता का आभास देना था। इस कारण रहस्यात्मकता की अभिव्यक्ति के लिए सांकेतिक विधान या प्रतीकों का उपयोग किया गया है।

(viii) **काव्य का स्वरूप -** ये प्रेमपरक रचनाएँ महाकाव्य की कोटि में तो आती हैं लेकिन इनमें भारतीय महाकाव्यों जैसी सर्गबद्धता नहीं है। चूँकि कवि का उद्देश्य किसी महान चरित्र का चित्रण

न होकर प्रेम-तत्व का प्रतिपादन करना है। इसलिए इनमें नायक के उच्च कुल का ध्यान नहीं रखा गया है। हिन्दी के अधिकांश विद्वानों ने इनकी शैली को 'मसनवी' कहा है। मसनवी पद्धति के आधार पर कथा-आरंभ के पहले ईश्वर की वंदना, मुहम्मद साहब की स्तुति, तत्कालीन बादशाह की प्रशंसा तथा आत्म-परिचय आदि दिया जाता है। गणपतिचंद्र गुप्त ने इनके काव्य रूप को 'कथा काव्य' माना है। उसे ही प्रेमाख्यानक कहा गया है क्योंकि इनमें महाकाव्य आदर्शवादी प्रयोजन के स्थान पर स्वच्छ प्रेम की कथात्मक अभिव्यक्ति मिलती है।

(ix) **भाषा एवं शैली -** इनकी भाषा अवधी है। कुछ सूफी कवियों पर भोजपुरी का तो कुछ ब्रजभाषा का भी प्रभाव है। अवधी भाषा में तद्भव शब्दों के अलावा मुहावरों तथा लोकोक्तियों का भी अच्छा प्रयोग मिलता है। शैली की दृष्टि से अन्योक्ति व समासोक्ति के साथ अतिशयोक्ति पर प्रायः इनका अधिक बल रहा है। समासोक्ति के सबसे सफल प्रयोक्ता जायसी हैं। यों तो प्रेमाख्यानकों में सभी अलंकारों के उदाहरण उपलब्ध हो जाते हैं, फिर भी उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक और अतिशयोक्ति के विभिन्न भेद व उपभेदों की इनमें प्रमुखता देखी जा सकती है।

कुल मिलाकर, मध्ययुग में रचित सूफी एवं असूफी प्रेमगाथाओं में विस्मय, दैवी और अलौकिक तत्व समान रूप में मिलते हैं। रोमांस प्रधानता के कारण साहसिकता और शौर्य का भी सम्मिश्रण है।

बोध प्रश्न

- रहस्यवाद किसे कहते हैं?
- रहस्यात्मकता की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों का प्रयोग क्यों किया जाता है?
- मसनवी शैली किसे कहते हैं?

(2) सगुण-भक्ति धारा

छात्रो! आप जान चुके हैं कि सगुण भक्ति धारा में ईश्वर के अवतार रूप का गुणगान किया गया है। इसकी 2 शाखाएँ हैं – (i) रामभक्ति शाखा एवं (ii) कृष्णभक्ति शाखा। कृष्णभक्ति शाखा के प्रवर्तक कवि सूरदास तथा रामभक्ति शाखा के प्रवर्तक कवि तुलसीदास हैं।

(क) कृष्णभक्ति शाखा की सामान्य विशेषताएँ

कृष्णभक्ति शाखा के कवियों ने अपने आराध्य कृष्ण की लीलाओं का भाव विभोर होकर गायन किया। कृष्ण साक्षात परब्रह्म है। वे विष्णु के अवतार हैं और भक्तों पर कृपा करने के लिए लोकरंजक लीलाएँ करते हैं। इन लीलाओं के वर्णन में ही कृष्णभक्त कवि अपने कवि कर्म की सार्थकता मानते हैं। हिन्दी के इस काव्यधारा के प्रवर्तक और प्रमुख कवि हैं – सूरदास। इस शाखा की प्रमुख प्रवृत्तियाँ इस प्रकार हैं –

(i) **कृष्ण की लीलाएँ -** हिन्दी में कृष्णभक्त कवियों की दृष्टि कृष्ण की लीलाओं में विशेष रूप से कृष्ण के बाल और किशोर जीवन की ओर गई है। वस्तुतः इस शाखा में वात्सल्य, सख्य एवं माधुर्य

भाव की भक्ति का प्राधान्य है। वात्सल्य भाव के अंतर्गत कृष्ण की बाल-क्रीड़ाएँ, चेष्टाओं एवं यशोदा के माँ हृदय की मधुरिम भावनाओं का स्वरूप दर्शनीय है। सख्य भाव में कृष्ण और ग्वालों के जीवन की रमणीय आकर्षक एवं मनोरंजक घटनाएँ उपलब्ध होती हैं और माधुर्य भाव के अंतर्गत गोपी-लीला की प्रस्तुति है।

(ii) **भक्ति-भावना -** कृष्ण-काव्य में मुख्यतः चार भाव मिलते हैं – रति-भाव, भक्ति-भाव, वात्सल्य-भाव एवं निर्वेद। निर्वेदजन्य भाव की अभिव्यक्ति आत्मग्लानि एवं दैन्य की अभिव्यक्ति करने वाले पदों में हुई है। सूरदास वात्सल्य रस के एकमात्र सम्राट हैं। रति-भाव के संयोग और वियोग दोनों ही रूपों में कृष्ण-भक्त कवियों की कला-कुशलता दर्शनीय है। यहाँ इन सभी भावों का विलय भक्ति के महाभाव में होता है। कृष्ण भक्त कवियों ने कृष्ण की आराधना दास्य भाव के स्थान पर माधुर्य भाव से की। साथ ही, सख्य भाव और वात्सल्य भाव को भी स्वीकार किया।

(iii) **प्रेम-वर्णन -** सूरदास और अन्य कृष्ण-कवियों ने प्रेम के स्वच्छ तथा परिमार्जित रूप का वर्णन मार्मिक शब्दों में किया है। उनकी आत्मानुभूति इसमें मिली हुई है। प्रेम में आत्म-समर्पण का भाव वात्सल्य-रूप, सखा-रूप और कांत-रूप में मिलता है। कहीं-कहीं दास रूप भी दिखाई देता है।

(iv) **प्रकृति-चित्रण -** बाह्य-प्रकृति का चित्रण भाव की पृष्ठभूमि, उद्दीपन भाव तथा अलंकारों के विधान के लिए हुआ है। इन कवियों ने मानव-प्रकृति चित्रण में भी अपनी सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति का परिचय दिया है। विशेष रूप से सूरदास ने 'भ्रमर गीत' में प्रकृति और गोपियों में बिंब-प्रतिबिंब संबंध दर्शाया है।

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि कृष्ण-भक्त कवियों ने हिन्दी साहित्य के भंडार को सुसमृद्ध और सुसमुन्नत करने में अभूतपूर्व योग दिया, जिससे कृष्ण-काव्य का विकास परवर्ती साहित्य में भी बहुत विशाल रूप में हुआ।

(क) **रामभक्ति शाखा की सामान्य विशेषताएँ**

रामभक्ति शाखा सगुण उपासना का बेहद महत्वपूर्ण अंग है। इस शाखा के भक्त कवियों के आराध्य देव राम हैं। राम भी कृष्ण की भाँति विष्णु के अवतार तथा निर्गुण-निराकार ब्रह्म के सगुण-साकार रूप है। हिन्दी भक्तिकाव्य में रामभक्ति शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि तुलसीदास हैं। तो भी अन्य अनेक भक्त कवियों ने इस शाखा को विस्तार प्रदान किया। इस शाखा की सामान्य प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं -

(i) **समन्वय की भावना -** राम काव्य में राम के साथ कृष्ण, शिव, गणेश आदि देवताओं की भी स्तुति की गई है। उदाहरण के तौर पर 'रामचरितमानस' में तुलसी ने सेतुबंध के अवसर पर राम द्वारा शिव की पूजा करवाई है। स्मरण रहे कि समूचा भक्ति आंदोलन अपने आप में समन्वय की विराट चेष्टा ही थी जिसका नेतृत्व स्वामी रामानंद ने किया। इस समन्वय भावना के कारण ही तुलसी को महात्मा बुद्ध के बाद सबसे बड़ा लोक नायक माना जाता है।

(ii) **राम अवतार रूप में -** रामभक्तों के लिए राम विष्णु के अवतार और ब्रह्म के रूप हैं। वे पाप के विनाश और धर्मोद्धार के लिए भिन्न-भिन्न युगों में अवतार लेते हैं। इनके राम में शील, शक्ति, सौंदर्य का समन्वय है। उन्हें प्रेम से पाया जा सकता है।

(iii) **लोक-संग्रह की भावना** - राम-भक्त कवियों ने गृहस्थ जीवन की उपेक्षा नहीं की। लोक-सेवा की भावना से इन्होंने आदर्श गृहस्थ राम-सीता का उदाहरण उपस्थत कर जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयत्न किया है। राम आदर्श पुत्र और आदर्श राजा हैं। सीता आदर्श पत्नी, कौशल्या आदर्श माता, लक्ष्मण और भरत आदर्श भाई हैं, तो हनुमान आदर्श सेवक है। सुग्रीव आदर्श सखा है। राम काव्यों में जीवन का मूल्यांकन आचार की कसौटी पर किया गया है। सारे मानवीय संबंधों पर खड़ा समाज आचार के बल पर ही जी सकता है। तुलसी ने राम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में वर्णित करके अपने युग को एक आदर्श चरित नायक प्रदान किया।

(iv) **भक्ति का स्वरूप -** राम भक्ति के केंद्र में भी शरणागति का भाव सबसे ऊपर है। राम-भक्त कवियों ने दास्य भाव की भक्ति के अनुरूप अपने और आराध्य के बीच सेवक-सेव्य भाव को स्वीकार किया है। तुलसीदास का कहना है–

'सेवक सेव्य भाव बिनु, भव न तरिय, उरगारि।'

इन कवियों ने 'ज्ञान' तथा 'कर्म' दोनों की अलग-अलग महत्ता स्वीकार करते हुए भी 'भक्ति' को श्रेष्ठ माना है। इनकी भक्ति पद्धति वैधी (शास्त्र-विधि द्वारा सेवा-पूजा, उपासना करना) कोटि में आती है। इसमें नवधा भक्ति (भक्ति के नौ प्रकार) के प्रायः सभी अंगों का विधान है। ये भक्त 'विशिष्टाद्वैतवाद' से प्रभावित हैं। अर्थात, इनके लिए ब्रह्म की भाँति जीव भी सत्य है जो ब्रह्म का अंश है। जीव और ब्रह्म में अंश-अंशी का भाव है : 'ईश्वर अंश जीव अविनाशी।' (तुलसी)

(v) **पात्रों का चरित्र-चित्रण -** राम साहित्य के केंद्र में राम का 'लोकरक्षक' रूप प्रतिष्ठित है। इसलिए राम-काव्य के पात्रों द्वारा आचार एवं लोक मर्यादा की स्थापना करने की कोशिश की गई है। इनमें रजोगुणी (ऐश्वर्य, ठाठ-बाठ की लालसा वाला), तमोगुणी (आलस, प्रमाद, द्वेष आदि नकारात्मक भावनाओं वाला) एवं सत्वगुणी (सीधा और सच्चा) – सभी पात्रों की अभिव्यक्ति है और अंत में सत्य की असत्य पर विजय दिखलाई गई है।

(vi) **रस -** अपनी व्यापकता के कारण इसमें सभी रसों का समावेश है किंतु सेवक-सेव्य भाव की भक्ति के कारण शांत रस की प्रधानता है। 'रामचरितमानस' के युद्ध-वर्णन में वीर और रौद्र रस हैं। नारद-मोह में हास्य रस विद्यमान है तो राम के विलाप में तथा लक्ष्मण की मूर्च्छा प्रसंगों में करुण रस की धारा प्रवाहित हो रही है। सीता-राम के मिलन और विरह के प्रसंगों में क्रमशः संयोग और वियोग शृंगार का सुंदर परिपाक हुआ है।

(vii) **भाषा एवं शैली** - रामकाव्य की मुख्य भाषा अवधी है। हालांकि तुलसी ने ब्रजभाषा का भी सफल प्रयोग किया है। तुलसीदास को लोक और शास्त्र दोनों का बहुत व्यापक ज्ञान था। उनके काव्य ग्रंथों में जहाँ लोक-विधियों के सूक्ष्म अध्ययन का प्रमाण मिलता है, वहीं शास्त्र के गंभीर अध्ययन का भी परिचय मिलता है। उपमा और रूपक अलंकार के प्रयोग में वे सिद्धहस्त हैं। दोहा, चौपाई, सवैया आदि छंदों का प्रयोग राम काव्य में प्रचुरता से मिलता है।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि – संत कवियों की साखियों और पदों, जायसी के 'पद्मावत', सूरदास के 'सूरसागर', गोस्वामी तुलसीदास की असाधारण कृति 'रामचरितमानस' हिन्दी साहित्य को भक्तिकाल की अनुपम देन हैं। इस काव्य ने (1) ज्ञान और भक्ति के संदेश द्वारा मध्यकालीन समाज के मनोबल का निर्माण किया। (2) भारतीय अस्मिता को नई परिभाषा से महिमा मंडित किया। (3) मनुष्य और मनुष्य की समानता व ईश्वर की सर्वोपरिता का आदर्श रचा। (4) पाखंड का खंडन किया। (5) आध्यात्मिक प्रेम में संपूर्ण भाव का प्रतिपादन किया। (6) मानवतावाद, पारिवारिक और सामाजिक आदर्शों की स्थापना, लोक मर्यादा की स्थापना तथा मनुष्य की रागात्मक वृत्ति का परिष्कार किया। (7) विभिन्न काव्यविधाओं और काव्यभाषा का निरंतर विकास किया। अतः भक्ति काल की उपलब्धियाँ अनेकविध और बहुआयामी हैं। इसे उचित ही 'हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग' माना गया है।

बोध प्रश्न

- तुलसी को लोक नायक क्यों माना जाता है?
- भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य का स्वर्ण युग कहना क्यों उचित है?

6.4 पाठ-सार

14वीं–15वीं शताब्दी के आते-आते साहित्य में एक सामन्य प्रवृत्ति दिखाई देने लगी थी। यह साहित्य ईश्वर-भक्ति की भावना से लबालब था जो तत्कालीन व्यापक अखिल भारतीय भक्ति आंदोलन का परिणाम था। चाहे वह भक्ति बिना आकार वाले ईश्वर (निर्गुण) के प्रति हो या आकार वाले ईश्वर (सगुण) के प्रति। भक्ति करना एवं तत्कालीन समाज को ईश्वर की ओर उन्मुख करना इस साहित्य का मुख्य लक्ष्य रहा। इस कारण विद्वानों ने चाहे कितने नाम इस काल के लिए सुझाए हों लेकिन सर्वसम्मति से भक्ति का नामकरण माना गया। निर्गुणभक्ति के दो सितारे कबीर और जायसी ने इन भक्ति साधना को चमकाया तो सूर और तुलसी ने सगुण साकार ब्रह्म की साधना द्वारा अपने भक्ति साहित्य को चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया। अगर देखा जाए तो संपूर्ण भक्ति साहित्य के दो पक्ष उभरते हैं – एक, लोकपक्ष और दूसरा, आत्मानुभूति पक्ष। कबीर, जायसी और तुलसी का साहित्य लोकपक्ष को लेकर चला, जबकि कृष्णभक्त कवियों ने अपनी आत्मानुभूति के तहत अपने आराध्य के लोकरंजक रूप का चित्रण किया।

6.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस पाठ के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं –

1. हिन्दी साहित्य के इतिहास में चौदहवीं शताब्दी के मध्य से सत्रहवीं शताब्दी के मध्य तक की अवधि के दौरान सबसे अधिक प्रमुखता भक्ति साहित्य की दिखाई देती है। इसीलिए इस काल को भक्ति काल कहा जाता है।
2. भक्ति काव्य मुख्यतः दो प्रकार के हैं – निर्गुण भक्ति काव्य और सगुण भक्ति काव्य।
3. निर्गुण भक्ति काव्य के अंतर्गत संत काव्य और सूफी काव्य शामिल हैं। इन्हें क्रमशः ज्ञानमार्गी और प्रेममार्गी काव्य कहा जाता है।
4. सगुण भक्ति काव्य में भी दो मुख्य शाखाएँ हैं - कृष्ण भक्ति शाखा और राम भक्ति शाखा।

6.6 शब्द संपदा

1. आराधना	=	पूजा, उपासना
2. उद्दीपन	=	उकसाने या भड़काने की क्रिया या भाव
3. चर्मकार	=	चमड़े का काम करने वाला
4. तल्लीनता	=	किसी काम में दत्तचित होकर लगा हुआ, डूबा हुआ
5. ब्रह्मवाद	=	एक सिद्धांत जिसके अनुसार संपूर्ण ब्रह्म से निकला है उसीकी शक्ति से चल रहा है
6. रहस्यवाद	=	चिंतन मनन के द्वारा ईश्वर से संपर्क स्थापित करने की प्रवृत्ति
7. शराणागति	=	शरण में आने की क्रिया या भाव

6.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. संतकाव्य और रामकाव्य के लोकपक्ष पर प्रकाश डालते हुए दोनों के मूलभेद को स्पष्ट कीजिए।
2. सूफीकाव्य और सूरकाव्य की भाषा एवं काव्यशैलियों पर चर्चा कीजिए।
3. रामभक्ति शाखा की सामान्य प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।
4. संतकाव्य की सामान्य विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।
5. सूफीकाव्य की सामान्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. भक्ति काल के नामकरण का औचित्य सिद्ध कीजिए।

2. सूफीकाव्य की प्रबंधात्मक शैली पर चर्चा कीजिए।

3. कृष्णभक्ति शाखा की सामान्य प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए

1. नवधा भक्ति से क्या तात्पर्य है? ( )
   (अ) नौ प्रकार की भक्ति (आ) नौ कवियों की भक्ति
   (इ) नौ भक्तों की भक्ति (ई) नौ व्यक्तियों की भक्ति
2. सूफीकाव्य में पात्रों को कितने श्रेणियों में रखा जा सकता है? ( )
   (अ) चार (आ) तीन (इ) दो (ई) पाँच
3. 'जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान' – पंक्ति संतकाव्य की किस प्रवृत्ति को दर्शाती है? ( )
   (अ) जाति-पाँति का समर्थन (आ) भेदभाव का समर्थन
   (इ) जाति-पाँति का विरोध (ई) भेदभाव का विरोध

II रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

1. अलौकिक प्रेम की अभिव्यक्ति को .... कहा जाता है।
2. प्रेमाख्यानकों का मुख्य उद्देश्य .... का प्रतिपादन करना है।
3. माधुर्य भाव के अंतर्गत .... की प्रस्तुति है।
4. .... पद्धति के आधार पर कथा-आरंभ के पहले ईश्वर की वंदना, मुहम्मद साहब की स्तुति आदि दिया जाता है।

III रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

i) भ्रमरगीत	(अ) जायसी
ii) रामचरितमानस	(आ) सूरदास
iii) पद्मावत	(इ) तुलसीदास

6.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल

2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, हजारी प्रसाद द्विवेदी

3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं.नगेंद्र और हरदयाल

इकाई 7 : प्रमुख निर्गुण कवि

रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 मूल पाठ : प्रमुख निर्गुण कवि
7.3.1 निर्गुण भक्ति काव्य : संत मत
7.3.1.1 संत कबीरदास
7.3.1.2 कबीर की काव्यागत विशेषताएँ
7.3.1.3 अन्य संत कवि
7.3.1.4 निर्गुण भक्ति काव्य : सूफी मत
7.3.1.4.1 मलिक मुहमद जायसी
7.3.1.4.2 जायसी की काव्यगत विशेषताएँ
7.3.1.5 सूफी परंपरा के अन्य प्रमुख कवि
7.4 पाठ-सार
7.5 पाठ की उपलब्धियाँ
7.6 शब्द संपदा
7.7 परीक्षार्थ प्रश्न
7.8 पठनीय पुस्तकें

7.1 प्रस्तावना

प्रिय छात्रो! भक्तिकालीन हिन्दी कविता को अध्ययन की सुविधा के लिए दो वर्गों में बाँटा जाता है। एक को निर्गुण काव्यधारा तथा दूसरे को सगुण काव्यधारा कहा जाता है। इस इकाई में आप निर्गुण काव्यधारा के प्रमुख रचनाकारों के योगदान और महत्व से परिचित होंगे। जैसा कि आप जानते हैं, निर्गुण धारा की दो शाखाएँ हैं – (1) संत मत या ज्ञानमार्गी शाखा तथा (2) सूफी मत या प्रेममार्गी शाखा। दोनों ही शाखाएँ निर्गुण-निराकार ब्रह्म की भक्ति (परम प्रेम) पर ज़ोर देती हैं। लेकिन दोनों की साधना पद्धति में कुछ अंतर भी है। संत मत के प्रमुख कवि हैं कबीर। इसी प्रकार सूफी मत के प्रमुख कवि हैं जायसी।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप –

- हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल के वर्गीकरण के बारे में जान सकेंगे।

- भक्तिकाल की निर्गुण काव्यधारा के प्रमुख कवियों के बारे में जान सकेंगे।
- संतकाव्य में कबीर के विशेष योगदान को समझ सकेंगे।
- सूफी अथवा प्रेममार्गी शाखा में मलिक मुहम्मद जायसी के महत्व को समझ सकेंगे।

7.3 मूल पाठ : भक्तिकाल की सामान्य विशेषताएँ

7.3.1 निर्गुण भक्ति काव्य : संत मत

ज्ञान साधना द्वारा निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति का समर्थन करने वाले ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों अथवा संत कवियों में कबीरदास, रैदास, नानकदेव, जंभनाथ, हरिदास निरंजनी, सींगा, लालदास, दादूदयाल, मूलकदास, बाबालाल और सुंदरदास मुख्य हैं। इनमें अधिकांश संत अद्वैतवादी और एकेश्वरवादी हैं। स्मरणीय है कि कबीर के पहले से ही हिन्दी क्षेत्र में सरहपाद, तिल्लोपाद और गोरखनाथ की बानियों के माध्यम से अद्वैत का प्रचार हो चुका था। 'हिन्दी साहित्य कोश' के अनुसार "योग, बौद्ध और वेदांत तीनों के मिलने से शंकर (शंकराचार्य) के समय में ही उत्तरी भारत में अद्वैतवाद का प्रचार था। बौद्धों और औपनिषदों के बाहर जाने से अद्वैत ईरान और मिस्र में गया था। वह मुसलमानों के आने पर सूफीमत का रूप रखकर भारत में वापस आया। इसका भी अद्वैत में योगदान है। सब धाराओं के मिल जाने से कबीर का अद्वैतवाद 15 वीं शताब्दी में संभव हुआ।"

संत कवियों में कबीर, दादू और मलूक अद्वैतवादी तथा नानक भेदाभेदवादी हैं। इसे यों समझें कि, कबीर के अनुसार परमात्मा और जीवात्मा पूर्णतः एक है, जबकि नानक इनमें बड़े-छोटे का अंतर मानते हैं। साधना प्रणाली की दृष्टि से कबीर, सुंदरदास और हरिदास योगसाधना से प्रभावित हैं, जबकि दादू, नानक, रैदास, जंभनाथ और बाबालाल योग साधना से अप्रभावित संत हैं। इन्होंने कहीं-कहीं 'सुरत' और 'शब्द योग' आदि का उल्लेख तो किया है, लेकिन उसमें कबीर जैसी गहराई और प्रामाणिकता नहीं है।

बोध प्रश्न

- कबीर और नानक की साधना प्रणाली में क्या अंतर है?

7.3.1.1 संत कबीरदास

कबीर (1398 ई.-1518 ई.) भक्तिकाल की निर्गुण भक्ति की ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। जनश्रुतियों के अनुसार कबीर का लालन-पालन एक जुलाहा दंपति ने किया था। उनके हिंदू या मुसलमान होने पर भी विवाद रहा है। स्वयं कबीर के ही शब्दों में– 'हिंदू कहो तो मैं नाहिं, मुसलमान भी नाहिं।"

कबीर वर्णाश्रम व्यवस्था को नकारते हैं और कर्म करने का संदेश देते हैं। उन्होंने हिंदुओं और मुसलमानों, दोनों के बाह्य आडंबरों का आजीवन विरोध किया और दोनों को फटकार लगाई।

जहाँ वे ब्राह्मणों को फटकारते हैं– 'पांडे कौन कुमति तोहे लागी', वे मुसलमानों को भी फटकारने में पीछे नहीं रहते– 'कस रे मुल्ला बांग नेवाजा!' कबीर की कर्मभूमि काशी रही। उनके जीवन का अधिकांश समय काशी में बीता था। उन्होंने दूर-दूर की यात्राएँ कीं। उनके शिष्य भी दूर-दूर तक फैले हुए थे। कबीर स्वयं निरक्षर थे। कबीर कहते हैं कि – 'मसि कागद छुयो नहिं, कलम गह्यो नहिं हाथ।' अतः उनकी वाणियों व उपदेशों को उनके शिष्य लिख लेते थे।

कुछ जनश्रुतियों के अनुसार, रामानुजाचार्य की शिष्य-परंपरा के गुरु रामानंद ने कबीर को दीक्षा दी थी, तो कुछ जनश्रुतियाँ सूफी संत शेख तकी को उनका गुरु बताती हैं। अधिकांश आलोचक रामानंद को कबीर के गुरु के रूप में मान्यता देते हैं जिन्होंने कबीर को राम नाम की दीक्षा दी थी। लेकिन कबीर के राम, राजा दशरथ के पुत्र राम नहीं हैं, बल्कि वे निर्गुण और निराकार ब्रह्म हैं।

कबीर के साहित्य पर सिद्ध-नाथों का प्रभाव भी देखा जा सकता है। कबीर में अपने आराध्य 'राम' के प्रति पूर्ण समर्पण भाव देखा जा सकता है। यह समर्पण भाव ही 'भक्ति' की अनिवार्य शर्त है। वे अपने आराध्य की 'बहुरिया' ही नहीं, 'कुत्ता' तक बनने को तैयार हैं– 'हरि मेरा पीउ मैं हरि की बहुरिया' और 'कबीर कूता राम का।' कबीर शास्त्रों से ज्यादा महत्व अनुभव को देते हैं। वे आध्यात्मिक दुनिया के साथ ही, भौतिक दुनिया के सरोकार और संघर्ष से भी जुड़े हुए हैं। उनकी कविता में गज़ब की तार्किकता, प्रश्नाकुलता और आत्मविश्वास है। कबीर अपनी कविता के माध्यम से बड़े सहज प्रश्न पूछते हैं और ये प्रश्न बड़े-बड़े शास्त्र-पुराण, मान्यताएँ, रीति-रिवाज आदि को असहज कर देते हैं। सामाजिक आचार-विचार, मान-मर्यादा, लोक-व्यवहार, अंधविश्वास, धार्मिक कठमुल्लापन की तर्कहीनता दिखाने में कबीर की कविता व्यंग्यात्मक हो गई है।

व्यंग्य की तीक्ष्णता और प्रभावोत्पादकता कबीर के काव्य की एक अलग दुनिया दिखलाती है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर की व्यंग्य-शैली के संबंध में लिखा है – "सच पूछा जाए तो आज तक हिन्दी में ऐसा जबरदस्त व्यंग्य लेखक पैदा ही नहीं हुआ। उनकी साफ चोट करने वाली भाषा, बिना कहे भी सब कुछ कह देने वाली शैली और अत्यंत सादी किंतु अत्यंत तेज प्रकाशन-भंगी अनन्य साधारण है। हमने देखा है कि बाह्याचार पर आक्रमण करने वाले संतों और योगियों की कमी नहीं है, पर इस कदर सहज और सरस ढंग से चकनाचूर करने वाली भाषा कबीर के पहले बहुत कम दिखाई दी है।" (हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर)

कबीर की वाणी का संग्रह 'बीजक' नाम से प्रसिद्ध है जिसके तीन भाग हैं – साखी, सबद और रमैनी। कबीर की 'साखी' दोहों के रूप में आम जनमानस के बीच अत्यंत लोकप्रिय है। यह आम बोलचाल की भाषा में है। 'रमैनी' और 'सबद' कबीर के गेय पदों का संकलन है जो प्रायः ब्रजभाषा में है लेकिन इन पदों में भी आम बोलचाल के शब्द भरे पड़े हैं। कबीर की भाषा आम

बोलचाल की ठेठ भाषा है। उनकी भाषा में शास्त्रीयता का दबाव कम है। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर को 'वाणी का डिक्टेटर' कहा है क्योंकि वे अपने विचारों और भावों के अनुकूल बनाने के लिए भाषा को इच्छानुसार तोड़-फोड़ लेने में कुशल हैं।

बोध प्रश्न

- कबीर की कविता व्यंग्यात्मक क्यों हुई?

7.3.1.2 कबीर की काव्यागत विशेषताएँ

(i) विषयवस्तु की विविधता

कबीर ने अपने काव्य द्वारा विविध विषयों पर अपने विचार और भाव अभिव्यक्त किए हैं। उनके कई रूप उनके दोहों और पदों में दिखाई देते हैं; जैसे – विद्रोही, समाज सुधारक, धर्म सुधारक, प्रगतिशील दार्शनिक, परमप्रेमी भक्त, आदर्श संत और उत्कृष्ट कवि। कहा जा सकता है कि उनका व्यक्तित्व जितना सहज और विराट था, उनका काव्य भी उतना ही सहज और विराट है।

डॉ. त्रिलोकीनाथ दीक्षित ने कबीर के काव्य के प्रतिपाद्य को दो भागों में बाँटा है। इनमें से प्रथम रचनात्मक है तथा द्वितीय आलोचनात्मक। विषयों के अंतर्गत सतगुरु, नाम, विश्वास, धैर्य, दया, विचार, औदार्य (उदारता), क्षमा, संतोष आदि विषयों पर व्यावहारिक शैली में भाव व्यक्त किए गए हैं। यहाँ उनकी आलोचनात्मक प्रतिभा के दर्शन नहीं होते; अर्थात यहाँ मानव की हीनताओं का दिग्दर्शन नहीं कराया गया। प्रतिपाद्य के दूसरे पक्ष में कबीर की आलोचनात्मक प्रतिभा प्रकट हुई है। यहाँ वे आलोचक, सुधारक, पथ-प्रदर्शक और समन्वयकर्ता के रूप में दृष्टिगत होते हैं। इस पक्ष में उल्लेखनीय विषय हैं – चेतावनी, भेष, कुसंग, माया, मन, कपट, कनक, कामिनी आदि। वस्तुतः इन दोनों पक्षों को एक-दूसरे का विरोधी नहीं, बल्कि पूरक माना जाना चाहिए। इन दोनों को जोड़ने पर ही कबीर को पूरी तरह समझा जा सकता है।

(ii) साधना पद्धति : रहस्य भावना

कबीर की साधना पद्धति को समझने के लिए ब्रह्म, जीव, जगत तथा माया आदि के संबंध में उनके विचारों को जानना आवश्यक है। कबीर ने जिस परमतत्व को अपना आराध्य बनाया, उसके लिए उन्होंने 'राम' शब्द का प्रयोग किया है, किंतु उनके राम निर्गुण-निराकार हैं। कबीर की भक्ति में एकनिष्ठता का महत्व है। उसमें कर्मकांड के विधि-विधान और बाह्य-आचार के लिए स्थान नहीं है। कबीर का मानना है कि बाहरी माला फेरते रहने से मन का फेर नहीं बदल जाता या पूजापाठ करने से कुछ नहीं हो सकता। मन की भक्ति तन को स्वयं ही अपने अनुकूल बना लेती है। भक्ति के मार्ग में माया कनक (सोना, दौलत) और कामिनी (स्त्री) के रूप में बाधा उत्पन्न करती है,

इसलिए कबीर इनकी कटु आलोचना करते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर (ईर्ष्या) आदि माया के सहचर (साथी) हैं, जिनका नष्ट होना 'ईश्वर भजन' के लिए आवश्यक है। कबीर का कहना है कि माया का दूसरा नाम अज्ञान है। दर्पण पर जिस प्रकार काई लग जाती है, उसी प्रकार आत्मा पर अज्ञान का आवरण पड़ जाता है जिससे आत्म-ज्ञान दुर्लभ हो जाता है। अतः आत्मा रूपी दर्पण को निर्मल रखना चाहिए।

कबीर की भक्ति एक ऐसा राजमार्ग है जिस पर सभी सुगमता से चल सकते हैं। उसमें ऊँच-नीच, ब्राह्मण-शूद्र का कोई भेदभाव नहीं है। उन्होंने योगमार्ग को अपनाया था। उनके अनुसार सच्चा योगी वह है जो सुरति (मन-बुद्धि-चित्त-अहं को योगक्रिया द्वारा एक कर देने पर सुरति बन जाती है) से निरति (लीन होने का भाव, शून्य की स्थिति) तक पहुँच जाए। ऐसा होने पर परमतत्व का साक्षात्कार हो जाता है। यही मिलन दशा है। इसे ही कबीर का रहस्यवाद कहा जाता है। रहस्यवाद की अभिव्यक्ति सदा प्रियतम और विरहिणी के आश्रय में होती है। यही सहज स्थिति है और कबीर की साधना का यही लक्ष्य है। इस स्थिति के संबंध में कबीर कहते हैं –

लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं चली, मैं भी हो गई लाल॥

(iii) सामाजिक पक्ष

डॉ. श्यामसुंदर दास ने माना है कि "धार्मिक सुधार और समाज सुधार का घनिष्ठ संबंध है। धर्म सुधारक को समाज सुधारक होना पड़ता है। कबीर ने भी समाज सुधार के लिए अपनी वाणी का उपयोग किया है।" (कबीर ग्रंथवाली, पृ. 43)। इसीलिए कबीरदास एक साथ संत, भक्त, कवि, सुधारक और युग-नेता भी हैं। उस समय धर्म ही युग-चेतना का रूप और माध्यम था। उस युग में ईश्वरोपासना के अधिकार की माँग वास्तव में आर्थिक-सामाजिक न्याय की माँग थी, क्योंकि विशाल जन समूह को धर्म, जाति, वर्ष और ऊँच-नीच के नाम पर ईश्वर की उपासना तक से वंचित कर दिया गया था। कबीर-काव्य में उस युग की मूलभूत समस्याओं का यथार्थ चित्रण है। तमाम ऐसी कुरीतियों, अंधविश्वासों, रूढ़ियों, सांप्रदायिक कट्टरताओं, बाह्य विधि-विधानों और कर्मकांडों के आडंबर पर उन्होंने खुलकर आक्रमण किया। भ्रमित करने वाली इन स्थितियों के बीच कबीर ने सर्वसाधारण जनता के लिए 'भक्ति' अर्थात 'ईश्वरीय प्रेम' के सामान्य मार्ग का निर्देश दिया –

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय॥

कबीर ने उच्चता और नीचता का संबंध व्यवसाय के साथ नहीं जोड़ा, क्योंकि कोई व्यवसाय नीचा नहीं है। अपने को जुलाहा कहने में भी उन्होंने संकोच नहीं किया और वे स्वयं आजीवन जुलाहे का व्यवसाय करते रहे। वे उन ज्ञानियों में से नहीं थे जो हाथ पाँव समेट कर पेट भरने के

लिए समाज के ऊपर भार बनकर रहते हैं। धन संपत्ति जोड़ना वे उचित नहीं समझते थे। इसलिए उन्होंने कहा –

काहे कूँ छाऊँ ऊँच उचेरा, साढ़ै तीन हाथ घर मेरा।
कहै कबीर नर गरब न कीजै, जेता तन तेती भुइँ लीजै॥

वर्णाश्रम-व्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं कि 'तुम किस प्रकार ब्राह्मण हो और हम किस प्रकार शूद्र, हम किस प्रकार घृणित रक्त हैं और तुम किस प्रकार पवित्र दूध हो?' उन्होंने मानव मात्र की समानता का सिद्धांत प्रस्तुत किया और ईश्वर की उपासना के लिए सबके समान अधिकार की माँग की – 'साँई के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोय।'

(iv) काव्य-प्रतिभा

प्रायः कहा जाता है कि कबीर समाज सुधारक संत थे, कवि नहीं। लेकिन अगर गहराई से विचारा जाए, तो पता चलता है कि वे विलक्षण प्रतिभा के धनी कवि थे। अपनी इस कविशक्ति का उपयोग उन्होंने समाज कल्याण के लिए किया। वास्तव में उनकी अभिव्यंजना शैली बड़ी शक्तिशाली है। प्रतिपाद्य के एक-एक अंग को लेकर उन्होंने सैकड़ों रचनाएँ की हैं। उनकी सामाजिक दृष्टि जितनी तीव्र थी, काव्य-प्रतिभा उतनी ही प्रखर थी। यही कारण है कि बुद्धि-तत्व की प्रधानता होते हुए भी उनकी कविता शुष्क या नीरस नहीं है। रहस्यवाद के भावात्मक पक्ष में शृंगार रस की निर्मलता देखी जा सकती है। डॉ. त्रिलोकीनाथ दीक्षित के शब्दों में "सबकी आलोचना करने वाला कबीर इतना रससिक्त होगा, यह आश्चर्य की बात प्रतीत होती है।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. नगेंद्र)।

कबीर तथा अन्य संत घुमक्कड़ थे। अतः उनकी भाषा में विभिन्न भाषाओं जैसे ब्रज, खड़ी बोली, पंजाबी, राजस्थानी, अरबी, फारसी आदि व बोलियों के शब्दों का रंग चढ़ गया था। विद्वानों ने इनकी भाषा को 'सधुक्कड़ी' या 'खिचड़ी' भाषा कहा है। लेकिन स्मरण रखना होगा कि उनकी भाषा में अभिव्यक्ति के सारे उपकरण मौजूद हैं। इसीलिए उनकी भाषा के संबंध में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि "भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे।"

बोध प्रश्न

- कबीर की साधना का क्या लक्ष्य है?

7.3.1.3 अन्य संत कवि

(i) रविदास

रविदास को रैदास के नाम से भी जाना जाता है। वे भक्तिकाल की निर्गुण भक्ति की ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवियों में से हैं। रविदास भी कबीर की भाँति धार्मिक आडंबरों एवं

अंधविश्वासों का विरोध करते हैं। वे कर्म पर बल देते हैं। उनका सिद्धांत है – 'जिह्वा भजे हरीनाम नित, हत्थ करहिं नित काम।' उन्होंने स्वयं को 'चमार' जाति का बताया है – 'कह रैदास ख़लास चमारा।' उन्हें स्वयं के तथाकथित छोटी जाति के होने पर किसी तरह का संकोच नहीं है, बल्कि उन्हें अपने कामकाजी होने का स्वाभिमान है। कई विद्वान रैदास को रामानंद का शिष्य मानते हैं। कृष्णभक्त कवयित्री मीराबाई रैदास की शिष्या मानी जाती हैं। रैदास के कुछ पद 'आदि गुरुग्रंथ साहिब' में भी संकलित हैं। उन्होंने अपने पदों में आराध्य के साथ आराधक के संबंध की सुंदर व्यंजना की है। यथा –

प्रभुजी तुम चंदन हम पानी। जाकी अंग अंग बास समानी॥
प्रभुजी तुम घन बन हम मोरा। जैसे चितवन चंद चकोरा॥
प्रभुजी तुम दीपक हम बाती। जाकी जोति बारें दिन राती॥

(ii) गुरु नानकदेव

गुरु नानक (1469 ई.-1538 ई.) सिक्खों के प्रथम गुरु के रूप में विख्यात हैं। उन्होंने धार्मिक सहिष्णुता को महत्व दिया एवं हिंदू और मुसलमान दोनों की धार्मिक कट्टरता का विरोध किया। वे निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे। उन्होंने पंजाबी के साथ-साथ हिन्दी में भी पद रचना की। उनकी रचनाओं में जीवन का अनुभव झलकता है। इनकी रचनाएँ 'आदि गुरुग्रंथ साहिब' में संकलित हैं। 'जपुजी', 'आसा दी वार', 'रहिरास' एवं 'सोहिला' गुरु नानकदेव की प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। उन्होंने धार्मिक रूढ़िवाद, संकीर्ण जातिवाद और अत्याचार का विरोध किया।

(iii) दादू दयाल

दादू दयाल भक्तिकाल की निर्गुण भक्ति की ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रमुख कवियों में से एक हैं। उनके जन्म एवं परिवार के विषय में केवल किंवदंतियाँ ही मिलती हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उन्हें कबीर का अनुयायी माना है। दादू दयाल की रचनाएँ पदों के रूप में मिलती हैं जिनका संग्रह संतदास एवं जगनदास नामक उनके दो शिष्यों ने 'हरदै वाणी' नाम से किया। बाद में रज्जब ने इन रचनाओं का संपादन 'अंगवधू' नाम से किया। संत दादू की समस्त रचनाएँ अब डॉ. बलदेव वंशी द्वारा संपादित 'दादू ग्रंथावली' (प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली) में उपलब्ध हैं। दादू भी कबीर और रैदास जैसे अन्य निर्गुण संत कवियों की भाँति जीवन के अनुभवों को प्रामाणिक मानते हैं। वे निर्गुण एवं निराकार ब्रह्म के उपासक थे। उनकी रचनाओं में सरलता एवं सहजता दिखाई देती है। उनकी भाषा पश्चिमी राजस्थानी से प्रभावित हिन्दी है और वे अरबी-फारसी के शब्दों को प्रयोग करने में भी संकोच नहीं करते।

बोध प्रश्न

- रविदास का क्या सिद्धांत है?

7.3.1.4 निर्गुण भक्ति काव्य : सूफी मत

हिन्दी साहित्य के मध्यकाल के आरंभ से पूर्व ही एक ऐसी काव्य-परंपरा का सूत्रपात हो चुका था, जिसे विद्वानों ने अलग-अलग नामों से पुकारा है, यथा – प्रेममार्गी (सूफी) शाखा, प्रेम-काव्य, प्रेमकथानक-काव्य, प्रेमाख्यानक काव्य, सूफी-काव्य आदि। इन नामों से इस तथ्य का संकेत मिलता है कि इस परंपरा के काव्य ग्रंथों में प्रेम-तत्व की प्रमुखता है तथा ये कथात्मक हैं। दरअसल निर्गुण काव्यधारा के "जिन कवियों ने प्रेम द्वारा ईश्वर की प्राप्ति पर बल दिया, वे प्रेममार्गी अथवा सूफी कवि कहलाए।"

हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण काव्य इस प्रकार हैं –

1. हंसावली (1370) – असाइत
2. चंदायन (1379) – मुल्ला दाऊद
3. मृगावती (1503) – कुतुबन
4. पद्मावत (1540) – मलिक मुहम्मद जायसी
5. मधुमालती (1545) – मंझन
6. प्रेमविलास (1556) – जैनश्रावक जटमल
7. रूपमंजरी (1568) – नंददास
8. माधवानल कामकंदला (1584) – आलम कवि
9. चित्रावली (1613) – उस्मान
10. रसरतन (1618) – पुहकर कवि

इनके कथास्रोत मुख्यतः चार हैं –

1. महाभारत, हरिवंशपुराण, विष्णुपुराण आदि पौराणिक ग्रंथ,
2. संस्कृत और प्राकृत की परंपरागत कथानक रूढ़ियाँ,
3. उदयन, विक्रम, रत्नसेन आदि ऐतिहासिक, अर्ध ऐतिहासिक पात्रों की गाथाएँ,
4. विभिन्न प्रेमी-प्रेमिकाओं की लोक प्रचलित कथाएँ।

इन चारों स्रोतों के साथ रचनाकार की कल्पना शक्ति का सुंदर समन्वय हुआ है। साथ ही, इनमें निम्नलिखित भारतीय कथानक रूढ़ियाँ भी प्रचुरता से इस्तेमाल की गई हैं–

1. नायक या नायिका का जन्म देवी-देवता की आराधना से होना।
2. नायक-नायिका का परस्पर परिचय स्वप्न दर्शन, चित्र दर्शन या तोते आदि द्वारा गुण कथन से अप्रत्यक्ष रूप से होना।
3. शिवमंदिर या फुलवारी में नायक-नायिका की गुप्त भेंट होना।
4. नायक का किसी अन्य सुंदरी को राक्षस से बचाकर विवाह कर लेना आदि।

ये कथानक रूढ़ियाँ फारसी प्रेमाख्यानक में उपलब्ध नहीं होतीं, अतः इनका आधार भारतीय साहित्य को ही मानना चाहिए।

बोध प्रश्न

- प्रेमाख्यानकों के कथा स्रोत क्या है?
- हिन्दी प्रेमाख्यानकों में कौन सी कथानक रूढ़ियाँ मिलती हैं?

7.3.1.4.1 मलिक मुहम्मद जायसी

हिन्दी के सूफी कवियों में मलिक मुहम्मद जायसी को सबसे प्रमुख माना जाता है। वे कहीं बाहर से आकर 'जायस' में बसे थे और इसी धर्म-स्थान को अपना निवास स्थान बना लिया था। इसलिए ये 'जायसी' कहलाए। बचपन में माता-पिता की मृत्यु के कारण ये साधुओं और फकीरों की संगति में रहने लगे। इनके पिता का नाम मलिक शेख ममरेज या मलिक राजे अशरफ था। जायसी का जन्म 1467 ई. तथा निधन 1542 ई. में हुआ। इनकी प्रसिद्ध रचना 'पद्मावत' (1540 ई.) है। कन्हावत, अखरावट और आखिरी कलाम इनकी अन्य प्राप्त रचनाएँ हैं।

जायसी ने अपने प्रसिद्ध प्रेमाख्यानक महाकाव्य 'पद्मावत' में रत्नसेन और पद्मावती की प्रेम-कथा दिखाई है। इस रचना में रत्नसेन की पहली पत्नी नागमती का विरह-वर्णन अत्यंत मार्मिक है। नागमती का वियोग-वर्णन भी 'पद्मावत' की प्रसिद्धि का आधार रहा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस वियोग-वर्णन के बारे में लिखा है – "नागमती का विरह-वर्णन हिन्दी साहित्य में एक अद्वितीय वस्तु है।" (जायसी ग्रंथावली, सं. रामचंद्र शुक्ल)।

'पद्मावत' हिन्दी साहित्य में 'प्रेम के पीर' की सशक्त अभिव्यक्ति करता है। इस रचना में कल्पना एवं इतिहास का अनूठा मिश्रण किया गया है। 'पद्मावत' मनुष्य के प्रेम में ही स्वर्ग की कल्पना करता है – 'मानुष प्रेम भएउँ बैकुंठी' और इसके बिना पृथ्वी ही झूठी (पिरिथमी झूठी) हो जाती है। 'पद्मवात' की कथा में 'सत्ता' के सामने 'प्रेम' की जीत होती है। एक तरफ अलाउद्दीन जैसे सुल्तान की ताकत, दूसरी तरफ रत्नसेन का प्रेम के प्रति समर्पण। इस कथा में ऊपर से ताकत जीतती हुई दिखती है, पर जीत की इससे बड़ी विडंबना क्या होगी कि जीतने के लिए कुछ बचा ही न हो। अंततः सुलतान अलाउद्दीन को अपने कुकृत्य की व्यर्थता का बोध होता है क्योंकि युद्ध में चित्तौड़ के सारे पुरुष मारे जाते हैं, पद्मिनी (पद्मावती) सहित सब स्त्रियाँ जौहर की आग में प्राण त्याग देती हैं। बस, श्मसान बने चित्तौड़ के किले पर ही इस्लाम का ध्वज फहर सका।

'पद्मावत' का नाम नायिका पद्मिनी अथवा पद्मावती के नाम पर रखा गया है। पद्मावती नाम भारतीय साहित्य में बहुत प्रचलित है। संस्कृत के कई काव्यों में नायिका का नाम पद्मावती है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि "जायसी ने गजपति, नरपति और अश्वपति राजाओं का उल्लेख किया है। बारहवीं शताब्दी तक के शिलालेखों में इन शब्दों का पता चलता है। बाद में ये शब्द भुला दिए गए हैं। जायसी की कहानी में इन शब्दों के आने का अर्थ है कि यह कहानी कम-से-कम बारहवीं शताब्दी में अवश्य प्रचलित थी। परंतु कहानी का उत्तरार्ध परवर्ती है।" (हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास, पृ.149)। इसका अर्थ है कि 'पद्मावत' की कथावस्तु पूर्वप्रचलित लोकगाथाओं और इतिहास का मिश्रित रूप है।

बोध प्रश्न

- हिन्दी साहित्य में 'पद्मावत' को क्या कहा जाता है?

7.3.1.4.2 जायसी की काव्यगत विशेषताएँ

(i) प्रेम निरूपण एवं विरह वर्णन

जायसी ने 'पद्मावत' में शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का सुंदर चित्रण किया है। 'पद्मावत' को सूफी प्रेम काव्यों में सबसे प्रौढ़ और सरस माना जाता है। इसमें पद्मिनी के रूप-सौंदर्य का वर्णन पाठक को लोकोत्तर-सौंदर्य भावना का साक्षात्कार कराने में समर्थ है। यह भी ध्यान रहे कि केंद्रीय रस शृंगार होते हुए भी 'पद्मावत' में शृंगार का मानसिक पक्ष प्रधान है और शारीरिक पक्ष गौण। इस विषय में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का यह मत है कि "जायसी एकांतिक प्रेम की गूढ़ता और गंभीरता के बीच में जीवन के और अंगों के साथ भी उस प्रेम के संदर्भ का रूप कुछ दिखाते गए हैं। इससे उनकी प्रेमगाथा पारिवारिक और सामाजिक जीवन से विच्छिन्न होने से बच गई है।"

उल्लेखनीय है कि 'पद्मावत' में वर्णित वियोग शृंगार अपने आप में अनूठा है। जायसी का चित्त जितना संयोग में रमा है, उससे अधिक पूर्वराग में; और पूर्वराग से अधिक वियोग में। नागमती आदर्श विरहिणी के रूप में पाठक के सामने आती है। यही जायसी की सबसे बड़ी विशेषता है कि नागमती को इस प्रकार चित्रित किया है कि वह वियोगावस्था में अपना रानीपन भी भूल जाती है और केवल एक साधारण स्त्री के रूप में दिखाई देती है। उसका विरह प्रवास-जन्य (प्रिय के चले जाने के कारण) है। इसकी अभिव्यक्ति के लिए जायसी ने बारहमासा परंपरा का अनुकरण किया है। नागमती के विरह का यह वर्णन अपनी अद्भुत वर्णन-क्षमता, निष्कपट विरह-निवेदन तथा हिंदू-दांपत्य जीवन के करुण एवं मार्मिक चित्रों के लिए हिन्दी साहित्य में अनुपम है। जायसी ने बारहमासा में साल के बारह महीनों में होने वाले ऋतु-परिवर्तनों के वर्णन के साथ-साथ विरहिणी नागमती के हृदय की अनुभूतियों का सुंदर चित्रण किया है। प्रत्येक माह अपना भिन्न रूप लेकर आता है तथा नागमती के वियोग को और बढ़ा देता है – साबन बरस मेह अति पानी, भरनि परी, हौं बिरह झुरानी। ××× भा बैसाख तपनि अति लागी, चोआ चीर चँदन भा आगी।

(ii) धार्मिक दृष्टिकोण

निश्चित ही जायसी का धार्मिक दृष्टिकोण उदार था। जायसी ने अपने काव्य द्वारा हिंदुओं और मुसलमानों में सहानुभूति तथा समानता का प्रसार करने का प्रयत्न किया है। उनका भावुक हृदय प्रेम की पीर से भरा हुआ है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में "दोनों हृदयों को आमने-सामने रखकर अजनबीपन मिटाने वालों में उन्हीं का नाम लेना पड़ेगा। उन्होंने मुसलमान होकर हिंदुओं की कहानी को हिंदुओं की बोली में सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का सामंजस्य दिखा दिया।" उन्होंने मुसलमान फकीरों के

अतिरिक्त हिंदू साधु-संन्यासियों का भी सत्संग किया था। इस कारण वे राम और रहीम दोनों से परिचित थे। वेद-पुराण, कुरान इत्यादि की जानकारी इनको सत्संग से ही प्राप्त हुई थी। उन्होंने सूफी के अनुरूप गुरु को बहुत महत्व प्रदान किया है, क्योंकि गुरु ही शिष्य के हृदय में उस परम सत्ता के विरह की चिंगारी जगाता है – को गुरु अगवा होइ सखि! मोहि लावै पथ माँह।/ तन-मन-धन बलि-बलि करौ, जो रे मिलावे नाँह॥

(iii) रहस्यवाद

जायसी के काव्य में उपलब्ध रहस्य-भावना अद्वैतवाद की पृष्ठभूमि पर आधारित है। कवि इस अद्वैतवादी रहस्यवाद में पूर्ण सफल रहा है। इसी कारण केवल प्रेममार्गी सूफी कवियों में ही नहीं, वरन हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध रहस्यवादी कवियों में भी जायसी का प्रमुख स्थान है।

जायसी ने भारतीय पद्धति के अनुरूप ही प्रकृति के रूपों एवं व्यापारों को देखा और उनमें बड़े सुंदर और स्वाभाविक ढंग से अज्ञात और रहस्यमयी सत्ता का ज्ञान कराया। वे संसार के कण-कण में अपने प्रेममय प्रभु की सत्ता का अनुभव करते हैं। पक्षियों के गुंजन में, झरनों की झर-झर ध्वनि और सरिताओं की कल-कल ध्वनि में उन्हें प्रभु की मनमोहक मूर्ति का ही गुणगान सुनाई पड़ता है। इसके लिए उन्होंने विभिन्न रूपकों का सहारा लिया है। यह भावात्मक सूफी रहस्यवाद का पूर्ण उत्कर्ष है कि परमात्मा सकल विश्व में इस तरह व्याप्त दिखाई देने लगे कि सर्वत्र केवल उसी का बोध हो –

परगट गुपुत सकल मँह, पूरि रहा सो नाँव।
जहँ देखौं तहँ ओही, दूसर नहिं जहँ जाँव॥

सूफी साधक परमात्मा को परम प्रियतम और परम सौंदर्य से संपन्न मानते हैं जिसे पाने के लिए आत्मा व्याकुल रहती है। अपने काव्य के माध्यम से कवि उस परम प्रियतम के प्रति प्रणय निवेदन करता है।

(iv) प्रतीकात्मकता

जायसी ने 'पद्मावत' के अंत में इस पूरे काव्य को 'अन्योक्ति' कहा है। इस प्रकार उनके सभी पात्र प्रतीक रूप में हैं। चित्तौड़गढ़ शरीर है। रत्नसेन मन और सिंहलद्वीप हृदय है। पद्मिनी ब्रह्म का रूप है। अलाउद्दीन माया है। नागमती इस दुनिया का धंधा है तथा राघव चेतन शैतान है। हीरामन सुआ गुरु है। इस प्रकार पद्मावत काव्य अन्योक्ति है। यथा–

तन चितउर, मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल, बुद्धि पदमिनी चीन्हा॥
गुरु सुआ जेहि पंथ देखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुण पावा॥
नागमती यह दुनिया धंधा। बाँचा सोई न एहि चित बंधा॥

इस आधार पर 'पद्मावत' को 'रूपक काव्य' भी कहा जा सकता है। इसमें चित्तौड़ के राजा रत्नसेन और सिंहल की राजकुमारी पद्मिनी के मध्य तोते के माध्यम से प्रेम होता है। इसमें उनके विवाह एवं विवाह के बाद के जीवन का चित्रण है।

भाषा-शैली और काव्य सौष्ठव

जायसी ने 'पद्मावत' की रचना ठेठ अवधी में की। इसके साथ उसमें पूर्वी अवधी तथा खड़ी बोली का भी मिश्रण मिलता है। उन्होंने मसनवी शैली को अपनाया और उसे इतना लोकप्रिय बना दिया कि दोहा-चौपाई की कड़वक शैली के रूप में आगे चलकर महाकवि तुलसी तक ने 'रामचरितमानस' में इसे ग्रहण किया।

समस्त काव्यगत विशेषताओं के कारण हिन्दी साहित्य में जायसी कृत 'पद्मावत' का स्थान एक महाकाव्य के रूप में 'पृथ्वीराज रासो' और 'रामचरितमानस' को जोड़ने वाली कड़ी जैसा है। 'रासो' और 'मानस' क्रमशः लोकशैली और शिष्ट शैली के मानक महाकाव्य हैं जबकि 'पद्मावत' 'लोक से शिष्ट में संक्रमण' की पूरी प्रक्रिया को समेटने वाला महाकाव्य है।

बोध प्रश्न

- नागमती का विरह वर्णन हिन्दी साहित्य में क्यों अनुपम है?

7.3.1.5 सूफी परंपरा के अन्य प्रमुख कवि

(i) मुल्ला दाऊद

मुल्ला दाऊद भक्तिकाल की निर्गुण भक्ति की प्रेमाश्रयी शाखा के प्रमुख कवियों में से एक हैं। उन्हें सूफी परंपरा का पहला कवि माना जाता है। 1379 ई. में रचित 'चंदायन' उनकी प्रसिद्ध रचना है। यह रचना अवधी भाषा में रचित हैं। 'चंदायन' की कथा पूर्वी भारत में प्रचलित लोरिक, उसकी पत्नी मैना और उसकी विवाहिता प्रेमिका चंदा की कहानी पर आधारित है। इसकी भाषा में सहज प्रवाह दिखाई देता है।

(ii) कुतुबन

कुतुबन भक्तिकाल की निर्गुण भक्ति की प्रेमाश्रयी शाखा के प्रमुख कवियों में से एक हैं। वे भी सूफी परंपरा के कवि थे। 1503 ई. में रचित 'मृगावती' उनकी प्रसिद्ध रचना है। 'मृगावती' की कहानी में नायक मृगी-रूपी नायिका पर मोहित होकर उसकी खोज में निकल जाता है और अंत में शिकार खेलते समय सिंह के द्वारा मारा जाता है। मृत्यु के बाद नायिकाओं के सती का भी वर्णन है। भाषा अवधी और शैली सरल व सरस है।

(iii) मंझन

मंझन भी भक्तिकाल की निर्गुण भक्ति की प्रेमाश्रयी शाखा के प्रमुख कवियों में से एक हैं। इनकी प्रसिद्ध रचना 'मधुमालती' को 1545 ई. में रचित माना जाता है। इस काव्य में मनोहर और मधुमालती की प्रेम-कथा दिखाई गई है। साथ ही इसमें ताराचंद और प्रेमा की प्रेम-कथा भी

समानांतर चलती है। इस्लाम में पुनर्जन्म की मान्यता नहीं है किंतु मंझन की इस प्रसिद्ध रचना में पुनर्जन्म की घटना भी दिखाई गई है। अन्य प्रेमाख्यानकों की तुलना में यह काव्य इस दृष्टि से विशिष्ट है कि इसमें नायक बहुपत्नीवादी नहीं है। इसमें भी अन्य प्रेमाख्यानकों की तरह ही प्रेम का उच्च और महान स्वरूप दिखाई देता है। भाषा अवधी और शैली सहज, सरस है।

बोध प्रश्न

- 'मधुमालती' किस दृष्टि से विशेष कृति है?

7.4 पाठ-सार

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल को 'स्वर्ण युग' कहा जाता है। उसे यह सम्मान दिलाने में निर्गुण और सगुण दोनों ही धाराओं के कवियों का अपना-अपना महत्वपूर्ण योगदान है। उनमें निर्गुण काव्यधारा को दो शाखाओं में बाँटा गया है – 1. संत मत, 2. सूफी मत। संत मत के प्रमुख रचनाकार कबीर हैं, तो सूफी मत में जायसी को प्रधानता मिली है। निर्गुण भक्तिधारा के अन्य संत कवियों में नानक, दादू, मलूकदास और सुंदरदास के नाम उल्लेखनीय हैं, तो सूफी कवियों में जायसी के अतिरिक्त दाऊद, कुतुबन और मंझन का स्थान भी अति महत्वपूर्ण है।

7.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं –

1. निर्गुण भक्ति काव्य की ज्ञानमार्गी शाखा को संत मत भी कहा जाता है। इसके प्रमुख कवि हैं – संत कबीरदास। अन्य संत कवियों में रविदास, गुरु नानक और दादु दयाल उल्लेखनीय हैं।
2. निर्गुण भक्ति काव्य की प्रेममार्गी धारा को सूफी मत भी कहा जाता है। इसके प्रमुख कवि हैं – मलिक मोहम्म्द जायसी। सूफी परंपरा के अन्य कवियों में मुल्ला दाऊद, कुतुबन और मंझन के नाम उल्लेखनीय हैं।
3. संतों और सूफियों दोनों की साधना में रहस्य भावना का महत्वपूर्ण स्थान है।
4. संतों ने परमात्मा को प्रियतम के रूप में चित्रित किया है जिसे पाने के लिए आत्मज्ञान की साधना आवश्यक है।
5. सूफी काव्यों में परमात्मा को प्रेयसी के रूप में वर्णित किया जाता है जिसे पाने के लिए काव्य नायक अनेक सांसारिक बाधाओं को पार करता हुआ साधनारत रहता है।
6. संत काव्य मुक्तक काव्य है जो दोहों और पदों में रचित है। सूफी काव्य प्रेमाख्यानक प्रबंध काव्य के रूप में रचे गए हैं जिनमें किसी लोक प्रसिद्ध प्रेम कथा के माध्यम से प्रतीकात्मक ढंग से भक्ति मार्ग का प्रतिपादन किया गया है।

7.6 शब्द संपदा

1. किंवदंति/ जनश्रुति = वह बात जिसे लोग परंपरा से सुनते चले आ रहे हैं
2. प्रतिनिधि = किसी समूह या वर्ग द्वारा चुना गया

3. विद्रोही = क्रांतिकारी, विद्रोह करने वाला

4. वियोग = अलग होना

7.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग <u>500</u> शब्दों में दीजिए।

1. संत कबीर की काव्यगत विशेषताओं का परिचय दीजिए।
2. जायसी के महाकाव्य 'पद्मावत' की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
3. कबीर के रहस्यवाद को स्पष्ट कीजिए।
4. 'कबीर एक समाज-सुधारक थे।' इस कथन को समझाइए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग <u>200</u> शब्दों में दीजिए।

1. कबीर के कवि कर्म पर प्रकाश डालिए।
2. हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'प्रेम के पीर' किसे कहा जाता है और क्यों?
3. 'कबीर वाणी के डिक्टेटर थे'। इस कथन को सिद्ध कीजिए।
4. सूफी काव्य परंपरा के अन्य प्रमुख कवियों पर प्रकाश डालिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए

1. 'कबीर भाषा के डिक्टेटर थे' – किसका कथन है? ( )
   (अ) रामचंद्र शुक्ल (आ) मुल्ला दाऊद (इ) हजारी प्रसाद द्विवेदी (ई) कुतुबन
2. कबीर की भाषा को विद्वानों ने किस नाम से पुकारा है? ( )
   (अ) घुमक्कड़ी (आ) सधुक्कड़ी (इ) ककड़ी (ई) लकड़ी
3. जायसी ने किस भाषा में अपनी काव्य-रचना की है? ( )
   (अ) पंजाबी (आ) भोजपुरी (इ) बघेली (ई) अवधी

II रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

1. कबीर की वाणी का संग्रह .... नाम से प्रसिद्ध है।
2. 'मृगावती' के रचनाकार .... हैं।
3. 'रसरतन' के रचनाकार .... हैं।

III सुमेल कीजिए

(i) मधुमालती	(अ) आलम कवि
(ii) चंदायन	(आ) नंददास
(iii) रूप मंजरी	(इ) मंझन
(iv) माधवानल कामकंदला	(ई) मुल्ला दाऊद

7.7 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. नगेंद्र और हरदयाल
3. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, गणपतिचंद्र गुप्त
4. कबीर ग्रंथावली
5. पद्मावत, जायसी

इकाई 8 : प्रमुख सगुण कवि

रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 मूल पाठ : प्रमुख सगुण कवि

8.3.1 कृष्ण भक्ति काव्य परंपरा

8.3.1.1 अष्टछाप

8.3.1.2 कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख कवि : सूरदास

8.3.2 राम भक्ति काव्य परंपरा

8.3.2.1 राम भक्ति शाखा के प्रमुख कवि : गोस्वामी तुलसीदास

8.4 पाठ-सार

8.5 पाठ की उपलब्धियाँ

8.6 शब्द संपदा

8.7 परीक्षार्थ प्रश्न

8.8 पठनीय पुस्तकें

8.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की दो प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं - निर्गुण भक्ति धारा तथा सगुण भक्ति धारा। इनमें सगुण भक्ति धारा का संबंध भक्ति आंदोलन के दौरान 'वैष्णव भक्ति' के उदय से जोड़ा जाता है। परंपरा की दृष्टि से इसके बीज वैदिक साहित्य में मिलते हैं। इस धारा के भक्तों की मान्यता है कि ब्रह्म निर्गुण और निराकार होते हुए भी, सभी गुणों से संपन्न तथा साकार रूप में भी रहता है। साधना की दृष्टि से निर्गुण और निराकार ब्रह्म की उपासना कठिन होने के कारण इन भक्तों ने सगुण-साकार के गुणों और लीलाओं के साथ तन्मयता प्राप्त करने के मार्ग को अपनाया। उदाहरण के लिए, सूरदास ने एक पद में कहा है कि "रूप, रेखा, गुण, जाति और युक्ति से परे होने के कारण निर्गुण ब्रह्म की साधना करता हुआ मन कोई आधार न मिलने के कारण चक्कर काटने लगता है। इसीलिए उसे सब प्रकार से अगम जानकर मैं सगुण-लीला के पद गाता हूँ।" सगुण भक्ति काव्य की सामान्य विशेषताओं के रूप में ईश्वर के सगुण रूप की आराधना, अवतारवाद की स्वीकृति, आराध्य की लीलाओं का बखान, साकार रूप अर्थात मूर्ति की उपासना के साथ-साथ लोक जीवन से जुड़ाव का उल्लेख किया जाता है। आगे हम इसकी दो शाखाओं (कृष्ण भक्ति और राम भक्ति) के प्रमुख कवियों के योगदान पर चर्चा करेंगे।

8.2 उद्देश्य

छात्रो! इस इकाई का अध्ययन करके आप –

- भक्तिकाल की सगुण भक्ति धारा के स्वरूप के बारे में जान सकेंगे।
- सगुण भक्ति धारा की दो धाराओं – कृष्ण भक्ति और रामभक्ति – के उन्नायक कवियों के बारे में जान सकेंगे।
- कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख कवि सूरदास के जीवन और काव्य की विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- राम भक्ति शाखा के प्रमुख कवि तुलसीदास के योगदान और महत्व को समझ सकेंगे।

8.3 मूल पाठ : प्रमुख सगुण कवि

8.3.1 कृष्ण भक्ति काव्य परंपरा

सगुणमार्गीय भक्तिकाव्य में कृष्ण को आराध्य मानने वाले कवियों ने कृष्ण काव्य परंपरा का विकास किया। भारतीय संस्कृति में कृष्ण का व्यक्तित्व अत्यंत विलक्षण माना जाता है। कृष्ण की कथा ऋग्वेद, उपनिषद, महाभारत तथा हरिवंश पुराण, विष्णु पुराण, भागवत और ब्रह्मवैवर्त पुराण आदि में तो उपलब्ध है ही। साथ-साथ यह भी विश्वास किया जाता है कि वह मौखिक रूप में लोक में भी प्रचलित रही है, जिसमें समय-समय पर अनेक काल्पनिक प्रसंग और रूपक जुड़ते चले गए। एक ओर कृष्ण योगी और परमपुरुष हैं, तो दूसरी ओर ललित और मधुर गोपाल हैं तथा तीसरी ओर वे एक वीर राजनयिक हैं। उनके ये तीनों रूप उसी 'परमद्वैत' रूप के अधीन विकसित हुए हैं जो प्राचीन समय से 'वासुदेव' के रूप में लोकप्रिय था। इसकी चरम परिणति अंततः साक्षात परब्रहम में हुई। लोक साहित्य में कृष्ण के विषय में असंख्य आख्यान उपलब्ध होते हैं जिनसे प्रेरित होकर बारहवीं शताब्दी में जयदेव ने संस्कृत में 'गीत गोविंद' की रचना की जिसे राधा-कृष्ण संबंधी प्रथम काव्य रचना माना जाता है। इसे भक्ति और शृंगार का अनुपम माधुर्य मंडित गीतिकाव्य कहा गया है।

इस परंपरा में हिन्दी में सबसे पहली साहित्यिक अभिव्यक्ति चौदहवीं-पंद्रहवीं शताब्दी में विद्यापति की 'पदावली' के रूप में हुई। इसे हिन्दी कृष्ण काव्य की पहली रचना होने का गौरव प्राप्त है। इसमें राधाकृष्ण के प्रेम का वर्णन और लौकिक शृंगार का भी निरूपण किया गया है। साथ ही भक्ति के माधुर्य भाव से संपन्न 'उज्ज्वल शृंगार' का भी निरूपण किया गया है। यही कारण है कि विद्यापति की 'पदावली' रसिकों और भक्तों दोनों ही में समान लोकप्रिय रही है। यहाँ तक कि चैतन्य महाप्रभु तक को उसने अपने अपरूप सौंदर्य वर्णन और प्रेम प्रवणता से रसमग्न किया है। वास्तव में भक्ति और शृंगार की विभाजक रेखा कितनी सूक्ष्म हो सकती है इसे विद्यापति के काव्य में ही देखा जा सकता है।

बोध प्रश्न

- जयदेव कृत 'गीत गोविंद' को क्या कहा जाता है?
- विद्यापति की 'पदावली' की क्या विशेषता है?

8.3.1.1 अष्टच्छाप

महाप्रभु वल्लभाचार्य द्वारा प्रवर्तित पुष्टिमार्ग में सूरदास सहित आठ कृष्ण भक्त कवियों का महत्वपूर्ण स्थान है जिन्हें 'अष्टछाप' के नाम से जाना जाता है। ये हैं – सूरदास, कुंभनदास, परमानंद दास, कृष्णदास, नंददास, गोविंद स्वामी, छीतस्वामी और चतुर्भुजदास। इन समस्त कृष्ण भक्त कवियों में सूरदास का स्थान निःसंदेह सर्वोपरि है। उन्होंने श्रीमद् भागवत को आधार बनाकर पुष्टिमार्ग की मान्यताओं के अनुरूप कृष्ण के गोकुल, वृंदावन और मथुरा के जीवन से संबंधित संपूर्ण कथा को 'सूरसागर' नामक गीति-प्रबंध के रूप में प्रस्तुत किया। सूरदास ने ब्रजभाषा को चित्रात्मकता, आलंकारिकता, भावात्मकता, सजीवता, प्रतीकात्मकता और बिंबात्माकता से युक्त करके जनभाषा से आगे अपने युग की काव्यभाषा के सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया।

बोध प्रश्न

- सूरदास ने ब्रजभाषा को काव्यभाषा के रूप में कैसे प्रतिष्ठित किया?
- अष्टछाप किसे कहते हैं?

8.3.1.2 कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख कवि : सूरदास

सूरदास के जन्म काल तथा जीवन के बारे में प्रामाणिक जानकारी के अभाव में अलग-अलग इतिहासकारों ने उनके कुछ पदों एवं किंवदंतियों के आधार पर अलग-अलग मत निर्धारित किए हैं। तो भी अधिक मान्य धारणा यह है कि सूरदास का जन्म सं. 1535 वि. (1478 ई.) की बैसाख शुक्ल पंचमी को बल्लभगढ़ (गुड़गाँव) के निकट सीही नामक गाँव में हुआ है। इनका देहावसान 1583 ई. में हुआ। 'सूरदास' नाम के आधार पर यह माना जाता है कि वे अंधे थे। लेकिन इस बात पर विवाद है कि वे जन्म से अंधे थे या बाद में अंधे हुए। उनकी भेंट 1509-1510 ई. में महाप्रभु वल्लभाचार्य से हुई। वल्लभाचार्य के शिष्य बनने के बाद उनके आदेश से सूरदास ने सख्य, वात्सल्य और माधुर्य भाव से पूर्ण कृष्ण भक्ति के पदों की रचना आरंभ की। माना जाता है कि इससे पहले वे दास्य भाव और विनय के पद रच कर गाया करते थे। वल्लभाचार्य के संप्रदाय में दीक्षित होने से पहले उन पर रामानंदी दास्य-भक्ति का प्रभाव था। अतः उनके आरंभिक पद दास्य भावना से पूर्ण थे। परंतु बाद में वल्लभाचार्य के आग्रह पर पुष्टिमार्ग संप्रदाय में सम्मिलित हो गए और उन्होंने सख्य भावनापूर्ण भक्ति-पदों की रचना आरंभ की। यहीं श्रीनाथ मंदिर में रहकर अपने दीर्घ जीवनकाल में सूरदास ने श्रीमद् भागवत के आधार पर कृष्ण संबंधी लगभग सवा लाख पदों की रचना की। उल्लेखनीय है कि पूर्व-संस्कार, जन्मजात प्रतिभा, गुणियों के सत्संग और निजी

अभ्यास के कारण छोटी आयु में ही सूरदास विभिन्न विद्याओं के ज्ञाता हो गए थे। इनकी ख्याति गायक और महात्मा के नाते खूब फैली। स्वयं महाप्रभु वल्लभाचार्य ने इन्हें 'पुष्टिमार्ग का जहाज' कहा था।

सूरदास ने जिन सवा लाख पदों की रचना की थी उनमें से अभी तक केवल पाँच हजार पद ही प्राप्त हुए हैं जिनका संकलन 'सूरसागर' नामक ग्रंथ में है। इसकी मूल प्रतियों का रचना काल भी अज्ञात है। 'सूरसागर' में बारह स्कंध हैं और कथा-प्रवाह भी उसी के समान है, परंतु यह भागवत का अनुवाद न होकर एक मौलिक रचना है। मौलिकता की दृष्टि से सूरदास के 'सूरसागर' में चार प्रसंग बहुत उत्कृष्ट हैं –

(i) बाल-कृष्ण का मनोवैज्ञानिक चित्र।

(ii) शृंगार-रस के अंतर्गत ऋतु-वर्णन और नख-शिख वर्णन।

(iii) कृष्ण और राधा का प्रेम।

(iv) वियोग शृंगार के अंतर्गत भ्रमर-गीत।

'नागरी प्रचारिणी सभा' की अनुसंधान विवरण-पत्रिका में सूरदास कृत 24 ग्रंथों का उल्लेख है। उनमें 'सूरसागर' के अतिरिक्त 'सूरसारावली' और 'साहित्य लहरी' का विशेष स्थान है। लेकिन डॉ.ब्रजेश्वर वर्मा और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी इन दोनों ग्रंथों को अप्रामाणिक मानते हैं। अतः 'सूरसागर' को ही सूरदास का प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है।

बोध प्रश्न

- मौलिकता की दृष्टि से सूरदास के 'सूरसागर' में कौन से उत्कृष्ट प्रसंग अंकित है?
- वल्लभाचार्य के संप्रदाय में दीक्षित होने से पहले सूर पर किसका प्रभाव था?
- सूर को 'पुष्टिमार्ग का जहाज' किसने कहा?

सूर की भक्ति का स्वरूप

सूरदास वल्लभाचार्य के शिष्य थे। वल्लभाचार्य ने भक्ति की जिस पद्धति का प्रवर्तन किया उसे 'पुष्टिमार्ग' कहा जाता है। पुष्टिमार्ग की विशिष्टता यह है कि भक्त के समर्पण या शरणागति का महत्व सबसे अधिक होता है। ऐसा भक्त सब कुछ विसर्जित करके भगवान की शरण में अपने को छोड़ देता है। वह अपने आराध्य के 'अनुग्रह' पर भरोसा करके शांत बैठ जाता है। इसीलिए भगवतकृपा की प्राप्ति के लिए सूर की भक्ति-पद्धति में 'अनुग्रह' की प्रधानता है – ज्ञान, योग, कर्म, यहाँ तक कि उपासना भी निरर्थक समझी जाती है।

सूरदास का काव्य हमें एक ऐसे संसार में ले जाता है, जहाँ केवल वे (सूरदास) और कृष्ण हैं। अर्थात केवल भक्त और भगवान हैं। इस संसार में गोप-गोपियाँ, माखन-दूध, गौएँ-बछड़े, राधा,

रास, रंग, लीला, विहार, मुरली, यमुना, यशोदा और नंद हैं। उल्लास और आनंद हैं। सूर इस संसार में इतने तन्मय हो गए कि बाहर के जीवन की सुध ही नहीं रही। यद्यपि सूर का वही है जो तुलसी का है, तथापि सूर का साहित्य तत्कालीन राजनैतिक घात-प्रतिघातों तथा सामाजिक उथल-पुथल से एकदम अछूता है। लेकिन जिस सीमित क्षेत्र को उनकी कविता ने अपनाया, उसके कोने-कोने का मर्मस्पर्शी चित्रण उनकी बड़ी उपलब्धि है।

सूरदास ने भगवान कृष्ण की लीला का गान किया है। लीला-वर्णन में, विशेष रूप से बाललीला में कवि का ध्यान भाव-चित्रण पर रहा है। बालक कृष्ण की स्वाभाविक चेष्टाओं का ऐसा मनोहर चित्रण और कहीं नहीं मिलता –

सोभित कर नवनीत लिए।
घुटुरुनि चलन रेनु-तन-मंडित, मुख दधि लेप किए॥

×××

खीझत जात माखन खात।
अरुन लोचन, भौंह टेढ़ी, बार-बार जँभात।
कबहुँ रुनझुन चलत घुटुरुनि, धूरि धूसर गात॥

सूर के काव्य में बालसुलभ भावों व चेष्टाओं की सरसता को देखते हुए डॉ.हजारी प्रसाद द्विवेदी कहते हैं कि “बालकृष्ण की एक-एक चेष्टाओं के चित्रण में कवि कमाल की होशियारी और सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय देता है। न उसे शब्दों की कमी होती है, न अलंकार की, न भावों की, न भाषा की। अपने आपको मिटाकर अपना सर्वस्व निछावर करके जो तन्मयता प्राप्त होती है, वही श्रीकृष्ण की इस बाललीला को संसार का अद्वितीय काव्य बनाए हुए हैं।” (हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास, पृ.105)

इसी तरह से मातृ-हृदय की सूक्ष्म आशा-आकांक्षाओं, कामनाओं एवं वेदना का मार्मिक चित्रण सूर के काव्य में बिखरा पड़ा है। यशोदा अपने लाड़ले कन्हैया के वियोग में व्याकुल है। माता के हृदय की विकलता इस प्रकार व्यक्त हुई है -

संदेसो देवकी सों कहियौ।
हौं तो धाय तिहारे सुत की, कृपा करति नित रहियौ॥

वस्तुतः वात्सल्य रस के सभी अंगों का विस्तार सूर के काव्य में उपलब्ध होता है। आचार्य शुक्ल के अनुसार “शृंगार और वात्सल्य के क्षेत्र में जहाँ तक इनकी दृष्टि पहुँची वहाँ तक और किसी कवि की नहीं।” (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.92)। कवि ने ‘भ्रमरगीत’ में शृंगार के वियोग पक्ष का चरम उत्कर्ष प्रस्तुत किया है। इसमें विरह की समस्त दशाओं का सजीव वर्णन किया गया है। कृष्ण की उपस्थिति में जो वस्तुएँ गोपियों को प्रिय एवं सुखदायक लगती थीं, उनके मथुरा चले

जाने पर वे सबकी-सब दुखदायी एवं अप्रिय लगाने लगती हैं – वे उन्हें काटखाने को दौड़ती हुई दिखाई देती हैं –

चंदन चंद हुते तब सीतल, कोकिल सब्द रसाल।
अब समीर पावक सम लागत, सब व्रज उलटी चाल॥

भ्रमरगीत में गोपियों की उक्तियाँ उनके हृदय की पवित्रता, निश्छलता, अनन्यता और उदारता का परिचय देती हैं –

अँखियाँ हरि दरसन की भूखीं।
कैसैं रहतिं रूप-रस राँची, ये बतियाँ सुनि रूखी॥

×××

अँखियाँ हरि दरसन की प्यासी।
देख्यौ चाहतिं कमलनैन कौं, निसि-दिन रहतिं उदासी॥

ध्यान रखने की बात यह है कि, 'भ्रमरगीत' के प्रसंगों में कवि सूरदास ने दार्शनिकता और आध्यात्मिकता को भावात्मकता के साथ जोड़कर निर्गुण की तुलना में सगुण भक्ति की विजय दिखाई है। उनकी गोपियों के इस प्रश्न के समक्ष उद्धव निरुत्तर हो जाते हैं कि– 'निर्गुण कौन देस कौ बासी?'

सूरदास ने कृष्ण की लीलाओं के प्रसंग में प्रकृति सौंदर्य, जीवन के विविध पक्षों, बाल क्रीड़ाओं, गोचारण, रासलीला, उपालंभ, दानलीला, चीरहरणलीला आदि का भी वर्णन खुलकर किया है क्योंकि परब्रह्म श्रीकृष्ण की इन लीलाओं का निरंतर वर्णन और कीर्तन ही उनके अनुग्रह को प्राप्त करने का मार्ग है। परंतु यह सब वर्णन करते हुए वे उपदेशक या सुधारक की मुद्रा धारण नहीं करते, बल्कि सरल हृदय को भावपूर्वक खोल कर रख देते हैं। उनकी भक्ति में दास्य, सख्य और माधुर्य भाव की त्रिवेणी का प्रवाह है। इसका आधार श्रीकृष्ण में जो साक्षात परब्रह्म अद्वैत और परमेश्वर है। उनकी लीलाएँ भक्त के भी लौकिक जीवन का अभिन्न अंग हैं। हर समय इन लीलाओं के कीर्तन और श्रवण में लीन भक्त एक उदात्त भावभूमि पर पहुँच जाता है तथा सांसारिक राग-द्वेष के धरातल से ऊँचा उठ जाता है। इसलिए डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा ने कहा है कि "भक्त कवियों के हाथ में कृष्ण काव्य उन मानवीय भावों के सहज परिष्करण और उदात्तीकरण का व्यावहारिक और प्रत्यक्ष दृष्टांत बनकर प्रयुक्त हुआ था, जो मनुष्य को संसार के विषयों में लिप्त किए रहते हैं तथा पतन की ओर ले जाते हैं। परिवार के जो नाते मनुष्य के आध्यात्मिक विकास में उसके सबसे बड़े वैरी है, श्रीकृष्ण उन्हीं के रूप में भक्तों को प्राप्त होकर उनके तत्संबंधी रागद्वेष को अपने में समर्पित करा लेते हैं। गीता में श्रीकृष्ण ने जिस निःसंगता का उपदेश दिया था, उसी को भक्त

कवियों ने चित्रित किया है, तथा उन्होंने आत्म समर्पण युक्त भक्ति योग का जो रूप अर्जुन को समझाया था, वही काव्य में उदाहृत किया गया है।"

बोध प्रश्न

- पुष्टिमार्ग की क्या विशेषता है?

भाषा

सूरदास के काव्य की भाषा का आधार लोक प्रचलित ब्रज भाषा है। गीति-काव्य होने के कारण यहाँ ब्रजभाषा और भी माधुर्यपूर्ण हो गई है। उसमें सब जगह संगीतात्मकता विद्यमान है जो श्रोता को बाँध लेती है। सूर की काव्यभाषा में चित्रात्मकता, आलंकारिकता, भावात्मकता, सजीवता, प्रतीकात्मकता तथा बिंबात्मकता पूर्ण रूप से विद्यमान है। संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों का यथास्थान सुंदर प्रयोग किया गया है। कहीं-कहीं अरबी-फारसी के तद्भव शब्दों का भी प्रयोग दिखाई देता है। दरअसल, तत्कालीन राजकीय भाषा फारसी थी इसलिए इन शब्दों का प्रचलन आम बोलचाल की भाषा में हो गया था। साथ ही, सूरदास की भाषा में मुहावरों और लोकोक्तियों का पुट भी उसे सजीवता प्रदान करता है।

बोध प्रश्न

- सूर की काव्यभाषा की क्या विशेषताएँ हैं?

8.3.2 राम भक्ति काव्य परंपरा

भक्तिकाल में सगुणमार्गीय कवियों का एक वर्ग रामभक्ति काव्यधारा के रूप में माना जाता है। इसमें सगुण भक्ति के आलंबन के रूप में विष्णु के अवतार राम की प्रतिष्ठा है। यहाँ 'राम' का अर्थ परब्रह्म या ऐसी शक्ति है जिसमें सभी देवता रमण करें। बाद में यह 'दशरथपुत्र' राम का वाचक बन गया। राम उत्तरवैदिक काल के दिव्य महापुरुष माने जाते हैं। राम कथा विषयक गाथाएँ कब से रची जाती रही हैं, यह कहना कठिन है। फिर भी पश्चिमी विद्वानों का अनुमान है कि वाल्मीकि ने आदिकाव्य 'रामायण' की रचना ग्यारहवीं शती ईसा पूर्व तीसरी शती ईसा पूर्व के बीच कभी की होगी, जिसमें मौखिक रूप में प्रचलन के कारण बहुत सा परिवर्तन हुआ।

वाल्मीकि ने रामकथा को ऐसा मार्मिक रूप प्रदान किया कि वह जनता और कवियों दोनों में समान रूप से आकर्षक और लोकप्रिय बन गई। विविध देशी-विदेशी भाषाओं में रामकाव्य की लंबी परंपरा है। ईस्वी सन के प्रारंभ में राम को विष्णु के अवतार के रूप में स्वीकृति मिलनी शुरू हुई, परंतु भक्ति के क्षेत्र में राम की प्रतिष्ठा विशेष रूप से ग्यारहवीं शताब्दी ईस्वी के आसपास मानी जाती है। तमिल आलवारों की भक्ति रचनाओं में राम का निरंतर उल्लेख प्राप्त होता है। नौवीं शताब्दी के कुलशेखर आलवार के पदों में प्रौढ़ रामभक्ति अंकित है। ग्यारहवीं शताब्दी से लेकर रामभक्ति संबंधी काव्य रचनाओं की संख्या बढ़ने लगी। पंद्रहवीं शताब्दी से लेकर राष्ट्रीय,

सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों में राम का लोकरक्षक रूप इतना अधिक प्रासंगिक सिद्ध हुआ कि तब से समस्त राम काव्य भक्तिभाव से ओतप्रोत होने लगा। यहाँ तक कि रामकथा की लोकप्रियता के कारण निर्गुण संत कवियों को भी 'राम-नाम' का सहारा लेना पड़ा।

फादर कामिल बुल्के का मत है कि "हिन्दी साहित्य के आदिकाल में रामानंद ने उत्तर भारत में जनसाधारण की भाषा में राम-भक्ति का प्रचार किया था। इसके फलस्वरूप हिन्दी राम साहित्य, आधुनिक काल को छोड़कर, प्रायः भक्ति भावना से ओतप्रोत है।" हिन्दी में राम साहित्य की चार प्रमुख विशेषताएँ मानी गई हैं –

1. तुलसीदास का एकाधिपत्य
2. लोकसंग्रही दास्य भक्ति का प्राधान्य
3. कृष्ण काव्य का प्रभाव और
4. विविध रचना शैलियों, छंदों और साहित्यिक भाषाओं का प्रयोग।

तुलसीदास से पहले रामकाव्य के अंतर्गत रामानंद के कुछ पदों के अतिरिक्त 'पृथ्वीराज रासो' के रामकथा विषयक 48 छंदों, 'सूरसागर' के रामकथा संबंधी 150 पदों और ईश्वरदास रचित 'रामजन्म', 'अंगद पैज' तथा 'भरत मिलाप' का उल्लेख करना आवश्यक है।

तुलसी के समकालीन कवियों में अग्रदास (पदावली, ध्यान मंजरी) और नाभादास (रामचरित के पद) का महत्वपूर्ण स्थान है। इसी प्रकार मुनिलाल (रामप्रकाश), केशवदास (रामचंद्रिका), सोठी महरबान (आदि रामायण), प्राणचंद, हृदयराम (हनुमन्नाटक), रामानंद (लक्ष्मणायन) और माधवदास (रामरासो) भी तुलसी के समकालीन अन्य राम साहित्य के उन्नायक हैं। तुलसी के बाद प्राणचंद चौहान (रामायण महानाटक), लालदास (अवध विलास), सेनापति (कवित्त रत्नाकर) और नरहरिदास (अवतार चरित) का इस परंपरा में उल्लेख किया जा सकता है।

बोध प्रश्न

- हिन्दी राम काव्य की तीन विशेषताएँ बताइए।

8.3.2.1 राम भक्ति शाखा के प्रमुख कवि : गोस्वामी तुलसीदास (1532 ई.-1623 ई.)

तुलसीदास के जन्म समय को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद रहा है। अधिकतर विद्वानों ने उनका जन्म 1532 ई. तथा निधन 1623 ई. में माना है। उनके जन्मस्थान को लेकर भी काफी अटकलें लगीं हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उनका जन्मस्थान राजापुर माना है। (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.72)। लेकिन नवीन शोधों से अब यह सिद्ध हो गया है कि उनका जन्म-स्थान सोरों था। इस संबंध में डॉ. रामकुमार वर्मा कहते हैं कि "जितनी सामग्री इस संबंध में उपलब्ध हुई है उसकी परीक्षा करने से तुलसीदास की जन्मभूमि का निर्धारण सोरों के पक्ष में अधिक युक्तिसंगत ज्ञात होता है।" (हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. 346)।

जनश्रुति के अनुसार इनके पिता का नाम आत्माराम दूबे तथा माता का नाम हुलसी था। कहा जाता है कि जन्म लेते ही रोने के स्थान पर 'राम' शब्द बोलने के कारण उनका नाम 'रामबोला' रखा गया। परंतु माता-पिता ने अशुभकारी समझकर उन्हें त्याग दिया था। इस बात की पुष्टि स्वयं तुलसी ने की है - "मातु पिता जग जाय तज्यों विधिहू न लिखी कुछ भाल भलाई।" इस परित्यक्त बालक का लालन-पालन दासी मुनिया ने किया। पाँच वर्ष बाद मुनिया की मृत्यु हो जाने पर बाबा नरहरिदास ने उन्हें अपने पास रखा और शिक्षा-दीक्षा दी। उन्होंने ही इन्हें 'तुलसीदास' नाम दिया। बाल्यकाल में उन्हीं से सर्वप्रथम तुलसी ने रामकथा सुनी और इन्हीं के साथ ये काशी गए।

जनश्रुति के आधार पर तुलसी की पत्नी का नाम रत्नावली माना जाता है। ये अपनी पत्नी से बहुत प्रेम करते थे। कहा जाता है कि एक बार रत्नावली तुलसी को बिना बताए उनकी अनुपस्थिति में अपने मायके चली गई। तुलसी को पता चला तो वे उनके विरह में न रह सके और रात को ही नदी पार कर ससुराल जा पहुँचे। उन्हें उस अवस्था में आया देखकर पत्नी को लज्जा आई और उन्होंने तुलसी से कहा –

लाज न लागत आपको दौरे आयहु साथ।
धिक्-धिक् ऐसे प्रेम को कहा कहौं मैं नाथ॥

कहा जाता है कि पत्नी की इन बातों को सुनकर उनका मोह भंग हो गया और उनका नारी-प्रेम नारायण-प्रेम में परिवर्तित हो गया। वैराग्य ग्रहण करने के बाद कुछ दिन काशी में रहकर अयोध्या चले गए। अयोध्या में ही इन्होंने 'रामचरितमानस' की रचना आरंभ की और इसे दो वर्ष सात माह में समाप्त किया। तुलसीदास का व्यक्तित्व उनके ग्रंथों में बहुत स्पष्ट होकर प्रकट हुआ है। अत्यंत विनम्र भाव और सच्ची अनुभूति के साथ अपने आराध्य पर अटूट विश्वास उनके व्यक्तित्व के प्रधान तत्व हैं।

बोध प्रश्न

- तुलसी का नारी-प्रेम नारायण-प्रेम में कैसे परिवर्तित हो गया?

कृतित्व

सन 1923 ई. में नागरी प्रचारिणी सभा (काशी) ने 'तुलसी ग्रंथावली' का प्रकाशन खंड 1 और 2 के रूप में किया। इसमें तुलसीदास की ये 12 रचनाएँ शामिल हैं – 1. रामचरितमानस, 2. रामलला नहछू, 3. वैराग्य संदीपिनी, 4. बरवै रामायण, 5. पार्वती मंगल, 6. जानकी मंगल, 7. रामाज्ञा प्रश्न, 8. दोहावली, 9. कवितावली, 10. गीतावली, 11. श्रीकृष्ण गीतावली और 12. विनयपत्रिका।

तुलसी के काव्य की विशेषताएँ

गोस्वामी तुलसीदास सही अर्थों में मध्यकाल में भारतवर्ष के 'लोकनायक' हैं। इनके द्वारा रचित अनेक ग्रंथ उपलब्ध हैं, जिनमें रामचरितमानस, कवितावली, विनयपत्रिका, दोहावली

आदि सम्मिलित हैं। इनका 'रामचरितमानस' साहित्य, भक्ति और लोकसंग्रह की अनुपम कृति है। इसकी रचना को उत्तर भारत के सांस्कृतिक और धार्मिक इतिहास में मध्यकाल की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना माना गया है। इसके माध्यम से तुलसी ने 'स्वांतः सुखाय' काव्य रचना करते हुए 'सब कहँ हित' को भी साधा। राजनैतिक-सामाजिक दृष्टि से विदेशी आक्रमण और सांस्कृतिक संकट के दौर में उन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम राम के रूप में एक आदर्श महानायक की छवि प्रस्तुत की और उसे लोकरक्षण से जोड़ा। साथ ही एक साधक के रूप में अपने 'अहं' के विस्फोट से बचने के लिए राम के 'भरोसे' का मार्ग प्रशस्त किया। उनका काव्य 'विरुद्धों का सामंजस्य' का सर्वोत्तम उदाहरण है। समन्वय भावना के कारण ही उन्हें 'लोकनायकत्व' प्राप्त हैं। वे भारतीय लोक के कवि हैं तथा लोकनायक भी हैं लोक के कवि के रूप में 'गृहस्थ-जीवन' और 'आत्म-निवेदन' जैसे दो अनुभव क्षेत्रों के सिरमौर है। इसलिए वे भारतीय मानस के सर्वाधिक निकट है। सामाजिकता और वैयक्तिकता का अद्भुत संतुलन उनके काव्य के लोकपक्ष और साधनापक्ष को पुष्ट करता है।

बोध प्रश्न

- तुलसी के काव्य की क्या विशेषताएँ हैं?

तुलसीदास की राजनैतिक दृष्टि

तुलसी ने राजनीति के सिद्धांतों का निरूपण अधिकतर मानस में किया है। पहले तो उन्होंने समकालीन परिस्थितियों का चित्रण कर कलियुग के प्रभाव से राजनीति की दुरवस्था का रूप खड़ा किया है, बाद में राम राज्य वर्णन में राजनीति के आदर्श की ओर संकेत किया है। आदर्श राजा के गुणों को बताते हुए कहते हैं कि राजा ईश्वर का अंश है और उसका धर्म प्रजा का सुख है। पूरी प्रजा उसके लिए समान है –

मुखिआ मुखु सो चाहिऐ खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषि सकल अँग तुलसी सहित बिबेक॥

(रामचरितमानस, अयोध्या कांड, पृ. 556)

इनके अलावा राजा को सत्यनिष्ठ, निर्भीक, स्वावलंबी, स्वदेश-प्रेमी आदि गुणों से समृद्ध होना चाहिए। राजा को साम-दाम-दंड-भेद ये चारों नीतियों को अपनाने को कहते हैं।

बोध प्रश्न

- तुलसी की राजनैतिक दृष्टि कैसी थी?

तुलसीदास की भक्ति

तुलसीदास पहले भक्त हैं बाद में कवि। अपनी भक्ति-भावना को ही प्रकट होने तथा समाज में संप्रेषित करने के लिए उन्होंने रामचरितमानस के आरंभ में ही लिखा है – भगति हेतु बिधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवति धाई॥ (रामचरितमानस, बालकांड, पृ.15)। अर्थात कवि के स्मरण करते ही उसकी भक्ति के कारण सरस्वती ब्रह्मलोक को छोड़कर दौड़ी आती हैं। तुलसीदास

का सारा काव्य इस भक्ति भावना से अनुप्राणित है। उनके श्रोता और वक्ता रामभक्त हैं। रामचरितमानस के बालकांड और उत्तरकांड में भक्ति की अबाध धारा प्रवाहित है। अपने आराध्य के प्रति चरम विश्वास और प्रेम ही तुलसी की भक्ति भावना के आधारभूत तत्व हैं। वे अपने राम पर पूरा भरोसा रखते हैं और यह मानते हैं कि राम को परम प्रेम से ही पाया जा सकता है। यथा : 'रामहिं केवल प्रेम पियारा।'

तुलसीदास की भक्ति भावना आचार्य रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद से प्रभावित है। रामानुज संप्रदाय वैष्णव संप्रदाय कहलाता है। रामानुजाचार्य के शिष्य रामानंद ने सीता-राम को अपना इष्टदेव स्वीकार किया। तुलसी उन्हीं के अनुयायी हैं। तुलसी के इष्टदेव राम हैं जो परात्पर (जिससे बढ़कर कोई दूसरा न हो) ब्रह्म हैं परंतु, लोक के कल्याण के लिए वे सगुण साकार रूप में प्रकट होते हैं। यथा : 'मंगल भवन, अमंगल हारी/ द्रवहु सो दशरथ अजिर विहारी।'

डॉ. विजेंद्र स्नातक के अनुसार– "गोस्वामी जी की भक्तिभावना मूलतः लोकसंग्रह की भावना से अभिप्रेरित है। जिस समय समसामयिक निर्गुण भक्त संसार की असारता का आराधना कर रहे थे और कृष्ण भक्त कवि अपने आराध्य के मधुर रूप का आलंबन ग्रहण कर जीवन और जगत में व्याप्त नैराश्य को दूर करने का प्रयत्न कर रहे थे, उस समय गोस्वामी जी ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम के शील, शक्ति और सौंदर्य से संकलित अद्भुत रूप का गुणगान करते हुए लोकमंगल की साधनावस्था के पथ को प्रशस्त किया।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. नगेंद्र)।

बोध प्रश्न

- तुलसी की भक्ति कैसी थी?

तुलसी का सामाजिक दृष्टिकोण

तत्कालीन समाज में धर्म पर आस्था शिथिल होकर दंभ मात्र रह गई थी। धर्मोपदेशक साधु-संत अपना वैराग्य-पथ छोड़कर मठ और आश्रम स्थापित करते एवं संपत्ति संजोते थे। वे लोग धन और वैभव से संपन्न थे पर गृहस्थ लोग निर्धन थे। तुलसीदास महान स्रष्टा और जीवन द्रष्टा कवि हैं। दोषों को दूर कर सद्गुणों की स्थापना का प्रयास उनके काव्य में दृष्टिगोचर होता है। तत्कालीन ह्रासोन्मुख समाज में प्रबुद्धचेता व लोकनायक के रूप में तुलसी ने ज्ञान, कर्म और भक्ति में समन्वय स्थापित कर मनोवैज्ञानिक सूझ-बूझ का परिचय दिया। आचार्य शुक्ल के शब्दों में "सामंजस्य का भाव लेकर गोस्वामी तुलसीदास की आत्मा ने उस समय भारतीय जनसमाज के बीच अपनी ज्योति जगाई, जिस समय नए-नए संप्रदायों की खींचतान के कारण आर्यधर्म का व्यापक स्वरूप आँखों से ओझल हो रहा था, एकांगदर्शिता बढ़ रही थी।" (तुलसीदास, पृ.22)।

अपने समय में चल रहे शैव व वैष्णवों के बीच वैमनस्य को दूर करने के लिए तुलसी ने मानस में शिव को राम का व राम को शिव का उपासक बताया। इस तरह से तुलसी ने लोककल्याण की भावना से प्रेरित होकर परिवार से समाज तक व्यावहारिक आदर्श प्रस्तुत कर अपनी समन्वय दृष्टि का परिचय दिया। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में – "उसमें केवल लोक और शास्त्र

का ही समन्वय नहीं है, वैराग्य और गार्हस्थ का, भक्ति और ज्ञान का, भाषा और संस्कृति का, निर्गुण और सगुण का, पुराण और काव्य का, भावावेग और अनासक्त चिंतन का, ब्राह्मण और चांडाल का, पंडित और अपंडित का समन्वय रामचरितमानस के आदि से अंत दो छोरों पर जानेवाली परा-कोटियों का मिलाने का प्रयत्न है।" (हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास, पृ. 131-132)। निःसंदेह तुलसी में धर्म व लोक का समन्वय दिखाई देता है। तुलसी ने लोक-धर्म की मंगल-आशा के लिए ज्ञान, कर्म और भक्ति के साथ मर्यादा व शील-सौंदर्य का भी चित्रण किया।

पारिवारिक जीवन में पिता, पुत्र, माता, पति, भाई, सखा, सेवक, पुरजन आदि का क्या पारस्परिक व्यवहार होना चाहिए, 'मानस' में कुशलता के साथ बताया गया है। तुलसी वर्णाश्रम व्यवस्था के समर्थक हैं। उनके अनुसार जब समाज में वर्णाश्रम धर्म का पालन किया जाएगा तभी सुख-समृद्धि होगी एवं वह 'राम-राज्य' के समान हो जाएगा –

बरनाश्रम निज निज धरम, निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि, नहिं भय सोक न रोग॥

(श्रीरामचरितमानस, उत्तरकांड, पृ.853)

डॉ. बच्चन सिंह ने तुलसी के राम-राज्य को 'यूटोपिया' (काल्पनिक आदर्श राज्य) कहते हुए इस राज्य का चित्र खींचा है। "इस यूटोपियाई लोक में वर्णाश्रम धर्म है, लोग वेद-धर्म पर चलते हैं। भय, शोक, रोग के लिए कोई स्थान नहीं है। सभी लोगों में प्रेम है। अल्पायु में किसी की मृत्यु नहीं होती। दरिद्र ढूँढने पर भी नहीं मिलता। सभी गुणी हैं, पंडित हैं, ज्ञानी हैं, विप्रों के सेवक हैं। हाथी और सिंह एक साथ रहते हैं, तरुओं में सदैव फूल-फल लगे रहते हैं," आदि। (हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृ.143)।

बोध प्रश्न

- तुलसी ने अपनी समन्वय दृष्टि का परिचय कैसे दिया?

भाषा और शैली

तुलसीदास ने संस्कृत के प्रकांड पंडित होते हुए भी लोक-भाषा को अपने काव्य के लिए चुना। अवधी और ब्रज दोनों भाषाओं पर उनका समान और पूर्ण अधिकार था। 'रामचरितमानस' उन्होंने अवधी में लिखा है जिसमें पूर्वी और पश्चिमी अवधी दोनों का मेल है। कवितावली, विनयपत्रिका और गीतावली तीनों की भाषा ब्रज है। कवितावली ब्रज की लोक प्रचलित शैली का सुंदर नमूना है। पार्वतीमंगल, जानकीमंगल और रामलला नहछू ये तीनों पूर्वी अवधी में हैं। तुलसी की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें संस्कृत की कोमलकांत पदावली तथा विदेशी भाषा के शब्दों का हिन्दी की प्रकृति के अनुसार प्रयोग किया है। "उनकी भाषा में भी एक समन्वय

की चेष्टा है। तुलसीदास की भाषा जितनी ही लौकिक है उतनी ही शास्त्रीय। तुलसीदास के पहले किसी ने इतनी परिमार्जित भाषा का उपयोग नहीं किया था। काव्योपयोगी भाषा लिखने में तुलसीदास कमाल करते हैं। उनकी 'विनय पत्रिका' में भाषा का जैसा जोरदार प्रवाह है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। जहाँ भाषा साधारण और लौकिक होती है वहाँ तुलसीदास की उक्तियाँ तीर की तरह चुभ जाती हैं और जहाँ शास्त्रीय और गंभीर होती वहाँ पाठक का मन चील की तरह मंडरा कर प्रतिपाद्य सिद्धांत को ग्रहण कर उड़ जाता है।" (डॉ.हजारी प्रसाद द्विवेदी)

वस्तुतः 'मानस' में महाकाव्यत्व के सारे गुण विद्यमान हैं। तुलसीदास ने महाकाव्य, खंडकाव्य और मुक्तक तीनों प्रणालियों को अपानाया और तीनों क्षेत्रों में श्रेष्ठ रचनाएँ लिखकर हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया। कहने का अर्थ है कि राम सदृश लोकनायक का चरित्र चुन लेने मात्र से तुलसी इतने लोकप्रिय नहीं हुए। राम का चरित्र भले ही स्वयं काव्य हो, किंतु प्रत्येक राम-कथाकार तुलसी नहीं बन सकता। तुलसी बनने के लिए व्यापक प्रतिभा और काव्य दृष्टि चाहिए। आचार्यों ने शक्ति, निपुणता और अभ्यास को काव्यहेतु माना है। तुलसी में तीनों का सुंदर समन्वय है। काव्य हृदय की वस्तु है, बौद्धिक व्यायाम से कोई श्रेष्ठ कवि नहीं बन सकता है। इस संबंध में यह उक्ति प्रसिद्ध है –

"कविता करके तुलसी न लसे, कविता लसी पा तुलसी की कला।"

बोध प्रश्न

- तुलसी की भाषा की क्या विशेषता है?

8.4 पाठ-सार

सूरदास और तुलसीदास सगुण काव्यधारा के शिखरस्थ महाकवि हैं। दोनों का उद्देश्य भक्ति की धारा में बहना था। तुलसी ने भक्ति के साथ तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक स्थिति को समझते हुए अपने काव्यकर्म में एक आदर्श समाज की स्थापना हेतु भी राम नाम का तीर चलाया। उनका काव्य भक्ति के साथ लोकमंगल की भावना से ओतप्रोत था। दूसरी ओर सूरदास कृष्ण के बालचरित्र, क्रीड़ाओं, गोचारण और रास में स्वयं को भूल गए। इस कारण उनके काव्य में भक्ति, गीति और कवित्व की त्रिवेणी है। सूर काव्य की रचना स्वांतःसुखाय हुई, तो तुलसीदास ने काव्य को सर्वजन-सुखाय की दिशा में प्रवर्तित किया। सूर के कृष्ण लोकरंजक हैं, तो तुलसी के राम लोकरक्षक। सूर में माधुर्य और प्रेम की तन्मयता है, तो तुलसी के राम में शील, शक्ति और सौंदर्य का समन्वय है। जहाँ सूर की भक्ति सख्य, माधुर्य और दैन्य भाव की है, वहीं तुलसी दास्य-भाव के भक्त हैं। संयुक्त रूप से सगुण-भक्तिधारा के ये दोनों प्रमुख कवि भाव-पक्ष एवं कला-पक्ष के उद्घाटन में निपुण थे। अलंकार, छंद, रस, भाषा शैली के जादूगर थे, जिससे किसी

को भी मोह लेते थे। निःसंदेह भक्ति काल का साहित्य 'स्वांतः सुखाय' रचा गया था, किंतु अपनी व्यापक समाज दृष्टि के कारण अंततः यह 'सर्वांतः सुखाय' सिद्ध हुआ।

8.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं –

1. सगुण भक्ति साहित्य की दो प्रमुख शाखाएँ हैं – कृष्ण भक्ति शाखा और राम भक्ति शाखा।
2. निर्गुण भक्ति में निराकार ब्रह्म की साधना की जाती है। जबकि सगुण भक्ति में ब्रह्म के साकार रूप अर्थात अवतारों की आराधना की जाती है।
3. हिन्दी के सगुण भक्ति साहित्य में विष्णु के दस अवतारों में से प्रमुख दो अवतारों – कृष्ण और राम की आराधना का विधान है।
4. सगुण भक्ति में आराध्य देव की लीलाओं का वर्णन प्रमुख स्थान रखता है।
5. कृष्ण भक्ति शाखा के प्रमुख कवि सूरदास हैं। उन्होंने वात्सल्य, सख्य और माधुर्य भाव से युक्त कृष्णकाव्य की रचना की है।
6. राम भक्ति शाखा के प्रमुख कवि हैं – तुलसीदास। उन्होंने अपने आराध्य राम के चरित्र और लीलाओं का दास्य भाव के साथ विनयपूर्वक वर्णन किया है।
7. सूरदास द्वारा रचित 'सूरसागर' और तुलसीदास द्वारा रचित 'रामचरितमानस' सगुण भक्ति काव्य के सिरमौर ग्रंथ हैं।
8. सूरदास ने कृष्ण के लोकरंजक रूप का वर्णन किया है तो तुलसीदास ने राम के मर्यादा पुरुषोत्तम और लोकरक्षक रूप का वर्णन किया है।
9. तुलसी ने मध्यकाल में बिखरते हुए जीवन मूल्यों के संकट काल में राम के रूप में भारतीयों को एक आदर्श चरित्र प्रदान किया। इसलिए तुलसी को लोकनायक कहा जाता है।

8.6 शब्द संपदा

1. उदात्तीकरण = किसी चीज को उसके श्रेष्ठ रूप में प्रस्तुत करना
2. दास्य भाव = सेवा भाव
3. राजनयिक = कूटनीतिज्ञ
4. वात्सल्य = प्रेम, स्नेह
5. स्वावलंबी = आत्मनिर्भर

8.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग <u>500</u> शब्दों में दीजिए।

1. सूरदास की भक्ति भावना पर प्रकाश डालिए।

2. तुलसीदास का लोकनायक के रूप में विवेचन कीजिए।

3. तुलसीदास के काव्य की विशेषताओं के बारे में बताइए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. तुलसीदास के सामाजिक दृष्टिकोण पर प्रकाश डालिए।
2. सूरदास की भाषा पर चर्चा कीजिए।
3. तुलसी की भाषा शैली पर प्रकाश डालिए।
4. तुलसी की भक्ति भावना को स्पष्ट कीजिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए

1. नागरी प्रचारिणी सभा ने तुलसीदास के कितने ग्रंथों को प्रामाणिक माना है? ( )

(अ) 12 (आ) 15 (इ) 6 (ई) 10

2. सूरदास का जन्म कहाँ हुआ? ( )

(अ) पारसौली (आ) सीही (इ) गऊघाट (ई) अयोध्या

3. सूरदास की प्रामाणिक रचना कौन-सी है? ( )

(अ) सूरसागर (आ) सूरसारावली (इ) साहित्यलहरी (ई) श्रीमद् भागवत

II रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

1. हिन्दी कृष्ण काव्य की पहली रचना होने का गौरव .... को प्राप्त है।
2. 'रामचरितमानस' की रचना .... पद्धति में हुई।
3. .... ने सूरदास को 'पुष्टिमार्ग का जहाज' कहा था।

III सुमेल कीजिए

i) रामराय	(अ) राधावल्लभ संप्रदाय
ii) स्वामी हरिदास	(आ) चैतन्य संप्रदाय
iii) चतुर्भुज दास	(इ) सखी संप्रदाय

8.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल

2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. नगेंद्र और हरदयाल

3. हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास, हजारी प्रसाद द्विवेदी

4. तुलसीदास, रामचंद्र शुक्ल

5. सूरदास, रामचंद्र शुक्ल

इकाई 9 : रीतिकाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 मूल पाठ : रीतिकाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

 9.3.1 रीतिकाल : समयसीमा और नामकरण

 9.3.2 रीतिकाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

  9.3.2.1 राजनीतिक परिस्थिति

  9.3.2.2 सामाजिक परिस्थिति

  9.3.2.3 धार्मिक परिस्थिति

  9.3.2.4 सांस्कृतिक परिस्थिति

  9.3.2.5 साहित्यिक परिस्थिति

9.4 पाठ-सार

9.5 पाठ की उपलब्धियाँ

9.6 शब्द संपदा

9.7 परीक्षार्थ प्रश्न

9.8 पठनीय पुस्तकें

9.1 प्रस्तावना

किसी भी युग के साहित्य को समुचित ढंग से समझने के लिए उस युग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को जानना आवश्यक होता है। वस्तुतः साहित्यकार जिस देश-काल में रहते हुए अपना रचनाकर्म करता है, वह देश काल उसके रचना-मानस के निर्माण में बड़ी भूमिका निभाता है। रीतिकालीन कविता में शृंगारिकता, दरबारीपन, आलंकारिकता आदि प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं। वे उस समय की पृष्ठभूमि में निहित राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक परिस्थितियों का परिणाम हैं। इसलिए रीतिकाल का अध्ययन करते हुए सबसे पहले उस काल की परिस्थितियों पर विचार करना आवश्यक है।

9.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रो! इस इकाई का अध्ययन करके आप –

- रीतिकाल को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों को समझ सकेंगे।

- रीतिकाल के राजनैतिक और सामाजिक वातावरण से परिचित हो सकेंगे।
- रीतिकाल की धार्मिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों से अवगत होंगे।
- रीतिकाल की साहित्यिक पृष्ठभूमि के स्वरूप को समझ सकेंगे।

9.3 मूल पाठ : रीतिकाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

9.3.1 रीतिकाल : समयसीमा और नामकरण

छात्रो! आप जानते हैं कि हिन्दी साहित्य के इतिहास में आदिकाल और भक्तिकाल नामक दो सोपानों के बाद तीसरे सोपान को रीतिकाल कहा जाता है। इसे ही उत्तर मध्यकाल के नाम से भी जाना जाता है। इसकी समयसीमा 17 वीं शताब्दी के मध्य से 19 वीं शताब्दी के मध्य तक मानी जाती है। लगभग 1650 ई. से 1850 ई. की अवधि के इस कालखंड को 'रीतिकाल' के नाम से जाना जाता है।

'रीतिकाल' का अर्थ है - हिन्दी साहित्य का वह काल जिसमें 'रीति-निरूपण' की प्रवृत्ति प्रधान रही। इस काल को यह नाम आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने दिया। 'रीति' का अर्थ है - परिपाटी, प्रणाली, पद्धति, मार्ग, शैली, विशिष्ट पद रचना। इसके अंतर्गत साहित्य रचना के नियमों या लक्षणों का निर्धारण किया जाता है। उनके उदाहरण दिए जाते हैं। ऐसे ग्रंथों को लक्षण ग्रंथ कहा जाता है। इन्हें ही रीति ग्रंथ भी कहते हैं। रीतिकाल के अनेक कवियों ने संस्कृत काव्यशास्त्र की परंपरा का निर्वाह करते हुए हिन्दी में रीतिग्रंथों अथवा लक्षण ग्रंथों की रचना की। ऐसे कवियों को आचार्य कवि भी कहा जाता है। ये पूरी तरह रीति ग्रंथों की रचना-प्रणाली से बंधे होने के कारण 'रीतिबद्ध' कवि माने जाते हैं। रीतिकाल के कवियों का दूसरा वर्ग ऐसे रचनाकारों का है जिन्होंने 'रीति ग्रंथ' तो नहीं रचे; लेकिन अपने काव्यों में रीति अथवा शास्त्रीय परंपरा का अत्यंत सफलतापूर्वक निर्वाह किया। इन्हें 'रीतिसिद्ध' कवि कहा जाता है।

रीतिकाल में इन दोनों वर्गों से अलग हटकर स्वच्छंद काव्य रचना करने वाले कवियों को 'रीतिमुक्त' कवि कहा गया है। इस प्रकार रीति अर्थात शास्त्रीय परिपाटी के पालन पर ज़ोर देने के कारण ही इस काल को 'रीतिकाल' का नाम मिला है।

बोध प्रश्न

- रीतिकाल से क्या अभिप्राय है?
- लक्षण ग्रंथ किसे कहते हैं?
- रीतिबद्ध कवि कौन हैं?
- रीतिसिद्ध कवि कौन हैं?

संगीत, साहित्य और कला का अद्भुत मिलन

यह समय संगीत आदि ललित कलाओं के दरबारी प्रश्रय में फलने-फूलने का भी समय था। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी मानते हैं कि ब्रजभाषा को एक ओर तो हिंदुस्तानी संगीत के कलावंतों ने नई तराश से नवाजा तथा दूसरी ओर रीतिकालीन कवियों ने उसे अलग तरह की संगीतात्मकता प्रदान की। संगीत के अलावा चित्र कला की दृष्टि से भी यह समय बहुत उपजाऊ समय था। चित्र कला में रागमालाओं का अंकन इसका जीता-जागता प्रमाण है। "देव, घनआनंद, पद्माकर के कवित्त-सवैये लय और यति के श्रेष्ठतम उदाहरण हैं। संगीत में भाषा का उपयोग और भाषा में संगीत का, यह ब्रजभाषा के विकास की श्रेष्ठतम उपलब्धि है। यह ज़रूर है कि संगीत एक सीमा के बाद भाषा को परे रख देता है जैसे कि अलाप और तराना में, यानि आरंभ और समापन में, जहाँ संगीत का शुद्धतम और श्रेष्ठतम रूप देखा जा सकता है।" (हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ. 61)। इस प्रकार यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि रीतिकाल में हिंदुस्तानी संगीत, रीतिकालीन काव्य और रागमालाओं का अंकन करने वाली चित्रकला का एक साथ उत्कर्ष हुआ। कहना न होगा कि मनुष्य की सांस्कृतिक चेतना को व्यक्त करने वाली ये तीनों विधाएँ आपस में गहराई तक जुड़ी हुई हैं। यह भी कम आश्चर्यजनक नहीं है कि "16 वीं से लेकर 19 वीं तक की चार शताब्दियों के दौरान, और दक्षिण से लेकर पंजाब तथा मारवाड़ से लेकर बंगाल तक सहस्रों मील के विस्तार में, प्रतिष्ठित चित्रकारों ने कोई 40 रागों में से किसी भी एक राग के अत्यंत समरूप चित्र बार-बार बनाए थे (क्लॉस एबेलिंग)।" (हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ. 61)।

उल्लेखनीय यह है कि रागमाला के इन चित्रों और हिंदुस्तानी संगीत की मध्यकाल में विकसित बंदिशों का आधार रीतिकाल के अनेक कवियों की शृंगारिक रचनाओं को बनाया गया है। इस प्रकार यह स्वर, सुर और रंग तीनों के विलक्षण संयोग का युग था। इसीलिए रीतिकालीन कविता में लयात्मकता और चित्रात्मकता के गुणों की प्रधानता दिखाई देती है। संगीत के इस प्रभाव को वहाँ भी देखा जा सकता है जहाँ रीतिकालीन कवि अपने कवित्तों और सवैयों को लयबद्ध करने के लिए छंद के हर चरण में यति, गति और तुक-ताल का सुंदर संयोजन करते हैं। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने ध्यान दिलाया है कि बिहारी ने छोटे से छंद दोहे में और सेनापति, मतिराम, पद्माकर तथा ठाकुर ने कवित्त-सवैयों में बराबर इस लय को अपने विधान के केंद्र में रखा है, जिससे रीतिकालीन कविता में तन्मयता के विशेष गुण का आगमन हुआ है। वे मानते हैं कि रीतिकालीन कवित्त-सवैये की बनावट में यह सांगीतिक लय शास्त्रीय संगीत के समतुल्य आरंभ से अंत की ओर जाते हुए क्रमशः सघन होती जाती है। कहना न होगा कि रीतिकालीन काव्य में संगीत के इस गुण के कारण उसमें तन्मयता और अनुभूति की गहराई बढ़ गई है। यह प्रभाव कुछ उसी प्रकार का है जैसा हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत में होता है जहाँ विचार महत्व नहीं रखता

बल्कि अनुभूति की गहराई अधिक महत्वपूर्ण होती है। दरअसल, रीतिकाल की साहित्यिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों का अवलोकन करने से यह पता चलता है कि उस काल की सामंती चित्तवृत्ति के निर्माण में संस्कृत के काव्यशास्त्र, कामसूत्र, प्राकृत और अपभ्रंश की शृंगारिक कविता, मध्यकालीन हिन्दी कृष्ण भक्ति काव्य और उत्तर भारत के मंदिरों से लेकर दरबारों तक में विकसित शास्त्रीय संगीत के रचनात्मक संपर्क का बड़ा योगदान था। इसी सामंती अभिरुचि के अनुरूप रीतिकालीन कवियों ने कविता को संगीत और चित्रकला के ढाँचे ढालने का भी सुंदर प्रयत्न किया।

बोध प्रश्न

5. ब्रज भाषा के विकास में रीतिकालीन काव्य कला ने क्या योगदान दिया?

6. रीतिकालीन कविता को संगीत और चित्रकला ने किस प्रकार प्रभावित किया?

9.3.2 रीतिकाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

किसी भी काल के साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि उस काल की परिवर्तनशील परिस्थितियों से निर्मित होती है। इसे यों भी कहा जा सकता है कि किसी साहित्यिक युग का परिवेश उस समय की राजनीति, समाज, धर्म, संस्कृति के मूल्यों से निर्मित होता है। रीतिकाल भी इसका अपवाद नहीं है। रीतिकाल के दो सौ वर्षों की लंबी अवधि में देश में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक स्थितियों में अनेक उतार-चढ़ाव आए। इन्होंने रीतिकाव्य को विशिष्ट दिशा एवं आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। रीतिकालीन साहित्य दरबारी संस्कृति के विशेष परिवेश में विकसित हुआ। इस काल के अधिकांश कवि अपने आश्रयदाताओं के मनोरंजन व कवि-कर्म का सामान्य ज्ञान देने के लिए काव्य रचना करते थे।

9.3.2.1 राजनीतिक परिस्थिति

राजनीतिक दृष्टि से रीतिकाल को भारत में मुगल साम्राज्य के उत्थान और पतन का काल कहा जा सकता है। इसके पूर्व अकबर (1556-1605 ई.) तथा जहाँगीर (1605-1627 ई.) के शासन काल में भक्तिकालीन साहित्य का पूर्ण विकास हो चुका था। सन 1627 ई. से 1658 ई. तक मुगल साम्राज्य के सिंहासन पर शाहजहाँ आसीन रहा। अपने शासन काल में जहाँगीर ने मुगल शासन का जो विस्तार किया था उसे शाहजहाँ ने चरम उत्कर्ष तक पहुँचाया। शाहजहाँ कला, साहित्य और संस्कृति का पोषक सम्राट था। लेकिन उसमें राजनीतिक दूरदृष्टि और परिपक्वता की कमी थी। तब भी इसके शासन के आरंभिक कुछ वर्ष शांति और सुव्यवस्था के लिए जाने जाते हैं। अपनी राजनीतिक कमजोरी को उसने शान-शौकत और आडंबरपूर्ण प्रदर्शनों से पूरा करने की कोशिश की। सन 1658 ई. में शाहजहाँ के बीमार पड़ने पर उसकी मृत्यु की अफवाह फैलाने के कारण उसके जीवन काल में उसके पुत्रों के बीच सत्ता के लिए संघर्ष शुरू हो गया। सत्ता के लिए यह संघर्ष ही रीतिकाल के आरंभ की सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक घटना है। शाहजहाँ के बेटे औरंगजेब ने अपने बड़े भाई दाराशिकोह की हत्या कर जबरन सत्ता हथिया ली। लेकिन औरंगजेब की धर्मांधता, पक्षपातपूर्ण नीति, साम्राज्य विस्तार की भूख ने देश की शांति को भंग कर कई तरह

के विद्रोहों और निरंतर चलने वाले युद्धों को जन्म दिया। सिक्खों, मराठों, जाटों आदि ने उसके प्रति विद्रोह शुरू कर दिया।

औरंगजेब के शासन काल (1658-1707 ई.) में मुगल साम्राज्य के पतन की भूमिका तैयार हुई। "औरंगजेब अपनी अनुदार नीति, अत्याचार एवं परधर्म के प्रति असहिष्णुता के लिए इतिहास में कुप्रसिद्ध हैं।" (केंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया)। वह असाधारण बहादुर सम्राट था। लेकिन अपनी धार्मिक कट्टरता के कारण उसे अनेक शक्तिशाली विरोधियों का सामना करना पड़ा। इसी काल में मराठों, राजपूतों, जाटों और सिक्खों ने मुगल सल्तनत के खिलाफ विद्रोह का डंका बजाया। विशेष रूप से छत्रपति शिवाजी की चर्चा यहाँ आवश्यक है। उन्होंने 1674 ई. में पश्चिम भारत में मराठा साम्राज्य की नींव रखी तथा छापामार युद्ध की नई शैली विकसित की।

औरंगजेब के पश्चात 1707 ई. में देश की केंद्रीय सत्ता मुगल साम्राज्य का प्रभाव धीरे-धीरे कम होने लगा। चारों ओर छोटे-छोटे जागीरदार अपने को स्वतंत्र करने लगे। जगह-जगह सामंत अपनी शक्ति को बढ़ाने लगे, साथ ही वे मुगल दरबार की वैभवपूर्ण जीवन-पद्धति का भी अनुकरण करने लगे। इस प्रकार सत्ता के विकेंद्रीकरण के साथ उन जीवन दृष्टियों का भी विकेंद्रीकरण हुआ, जिस जीवन दृष्टि को सामंतवाद ने अपना लिया था। केंद्रीय शासन व्यवस्था के शिथिल होने और आंतरिक प्रदेशों के कलह की परिस्थितियों में 1734 ई. में नादिरशाह तथा 1761 ई. में अहमदशाह अब्दाली जैसे विदेशियों के आक्रमण हुए। इनसे मुगल साम्राज्य की नींव हिल गई। अंग्रेजों ने इस स्थिति का पूरा-पूरा लाभ उठाया और धीरे-धीरे समूचे उत्तर भारत पर ईस्ट इंडिया कंपनी के माध्यम से कब्जा ही जमा लिया। बाद में वास्तविक सत्ता अंग्रेजों के हाथ में चली गई। इस तमाम राजनीतिक अस्थिरता ने देश में विकृत सामंतवाद को जन्म दिया। अंततः मुगल साम्राज्य के समान ही हिंदू रजवाड़ों और नवाबों को भी अंग्रेजों के प्रभाव के सामने घुटने टेकने पड़े।

बोध प्रश्न

- विकृत सामंतवाद के जन्म के पीछे क्या परिस्थितियाँ थीं?

9.3.2.2 सामाजिक परिस्थिति

रीतिकाल में राजनीति और प्रशासन का तो पतन हुआ है। उस समय समाज में भी हर तरफ पतनशीलता दिखाई देती है। इस काल में समाज में सामंतवाद का काफी प्रभाव था जिसका दबाव जनसामान्य के जीवन पर भी किसी-न-किसी रूप में पड़ रहा था।

भक्तिकाल में जाति-पाँति के विरोध के बावजूद 17 वीं शताब्दी तक आते-आते भारतीय समाज में जाति-व्यवस्था और भी मज़बूत हो गई। अब वह पुरानी वर्ण-व्यवस्था को न अपनाकर पेशेवर-जातियों के रूप में विकसित होने लगी। ये पेशे वंशानुक्रम से चलते थे। इस समय आर्थिक दृष्टि से समाज दो वर्गों में स्पष्ट रूप से बँटा था - उत्पादक वर्ग और उपभोक्ता वर्ग। उत्पादक वर्ग के अंतर्गत श्रमजीवी, कृषक, व्यापारी, सेठ, साहूकार थे तथा उपभोक्ता वर्ग के अंतर्गत राजा से लेकर राजदरबार के भीतर सभी सदस्य शामिल थे। समाज में उत्पादक और उपभोक्ता वर्ग के

बीच खाई काफी ज्यादा थी। शासन-तंत्र की निरंकुशता ने इनके बीच की खाई बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

हजारी प्रसाद द्विवेदी अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास' में रीतिकालीन सामाजिक व्यवस्था पर चर्चा करते हुए लिखते हैं - "इस समय आर्थिक दृष्टि से समाज में स्पष्ट रूप से दो श्रेणियाँ हो गईं - एक उत्पादक वर्ग, जिसमें प्रधान रूप से किसान और किसान से संबंध रखने वाली जातियाँ बढ़ई, लोहार, कहार, जुलाहा इत्यादि थीं, और दूसरा दल भोक्ता (राजा, रईस, नवाब आदि) या भोक्तृत्व का मददगार था। मुगल शासन के अंतिम दिनों में भारतीय समाज के ये दो वर्ग आर्थिक वर्ग थे - राजा, सामंत, मनसबदार आदि भोक्ता वर्ग, और कृषकों और श्रमिकों का उत्पादक वर्ग। दोनों का परस्पर संबंध क्रमशः क्षीण होता गया, और मुगल के अंतिम दिनों में इन दोनों की दुनिया लगभग अलग हो गई।" (पृ.161)

रीतिकालीन समाज में उत्पादक और उपभोक्ता वर्ग के मध्य एक और वर्ग था कवियों और कलाकारों का वर्ग जो प्रायः उत्पादक वर्ग से जन्म लेता था किंतु भोक्ता वर्ग का मनोरंजन कर अपनी आजीविका चलाता था। कवि-कलाकारों का यह वर्ग अपने आश्रयदाताओं की जीवन-शैली के अनुकूल मनोरंजन करने के लिए तत्कालीन समाज में प्रचलित काव्यशास्त्रीय ग्रंथों विशेषकर नायिका-भेद व अलंकारशास्त्र जैसे ग्रंथों का सहारा लिया करता था। मुगल साम्राज्य के पतन से कवि-कलाकारों के जीवन पर भी प्रभाव पड़ा। ये कवि-कलाकार स्थानीय नवाबों और सामंतों के यहाँ आश्रय लेने को बाध्य हुए और उनकी मनोवृतियों पर ध्यान देना कवि-कलाकारों का एकमात्र लक्ष्य बन गया।

मुगल दरबार अपने वैभव के लिए प्रसिद्ध था। इसकी केंद्रीय सत्ता कमजोर होते ही स्थानीय राजाओं, नवाबों, सामंतों ने इस दरबार के वैभव का अनुकरण करना चाहा। तब वैभव का स्थान वैभव-प्रदर्शन ने ले लिया और इस वैभव-प्रदर्शन ने दरबारी संस्कृति में विलासिता को खासतौर से विकसित किया। दरबारी शिक्षा आशिक़ाना गज़लों, फारस की कामुकतापूर्ण प्रेम कथाओं, ललित क्रीड़ाओं और चौसर के खेल तक ही सीमित रह गई। दरबारी जीवन शैली का असर आम जन पर भी काफी पड़ा। रीतिकालीन कवि पद्माकर की निम्नलिखित रचना में रीतिकालीन समाज के विलासितापूर्ण जीवन का सटीक चित्र उकेरा गया है -

गुलगुली गिल में गलीचा है, गुनीजन हैं,
चाँदनी है, चिक है, चिरागन की माला हैं।
कहैं पद्माकर त्यों गजक गिजा है सजी,
सेज है, सुराही है, सुरा है और प्याला हैं।
शिशिर के पाला को न व्यापत व्याप्त कसाला तिन्हैं,
जिनके अधीन एते उदित मसाला हैं।

तान तुक ताला है, विनोद के रसाला हैं,

सुबाला है, दुशाला है, विशाल चित्रशाला हैं।"

दरबारी भोक्ता वर्ग के ठीक विपरीत स्थिति कृषक-श्रमजीवियों जैसे निम्नवर्ग की थी। यह वर्ग सभी ओर से शोषित था, अतः दयनीय जीवन गुजारने को बाध्य था। दरबार का वैभव, सेना, युद्ध, प्रकृति प्रकोप, सेठ-साहूकारों के कर्ज आदि अनेक प्रकार के आर्थिक बोझ से वह दबा रहता था।

कुल मिलाकर, रीतिकालीन राजनीतिक अस्थिरता ने उस युग के सामाजिक जीवन को भी अपने चंगुल में ले रखा था। इस परिस्थिति में न तो किसान की किसानी सुरक्षित थी, न की श्रमिक-व्यापारी का कार्य-व्यापार। श्रमिक वर्ग आए दिन बेगार करने को बाध्य होते थे। इन परिस्थितियों ने जनता को हताश बना दिया और वह अंधविश्वासी बन गई। संभवतः इसी कारण इस युग के कुछ कवियों ने ज्योतिष और शकुन-अपशकुन से संबंधित कविताओं की भी रचना की थी। लेकिन रीतिकालीन सामाजिक स्थिति के संबंध में यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि इस युग के काव्य में सामान्य जनता का सामाजिक जीवन प्रायः प्रतिबिंबित नहीं हुआ है। इसका कारण दरबारी संस्कृति के अनुरूप कवियों की काव्य रचना थी। इस अर्थ में रीतिकालीन काव्य लोक-जीवन से कटा हुआ नजर आता है। अपवादस्वरूप गृहस्थ जीवन की कुछ छवियाँ अवश्य इस काल की कविता में इधर-उधर मिल जाती हैं।

बोध प्रश्न

- उत्पादक वर्ग किसे कहते हैं?
- उपभोक्ता वर्ग किसे कहते हैं?
- रीतिकालीन काव्य में जनता का सामाजिक जीवन क्यों प्रतिबिंबित नहीं हुआ?

9.3.2.3 धार्मिक परिस्थिति

धार्मिक परिस्थिति की दृष्टि से भी इस युग को 'पतन का काल' ही माना जा सकता है। भक्तिकाल में उदात्त धार्मिक मूल्यों का उत्कर्ष हुआ था। लेकिन कालांतर में भक्ति तत्व-बोध से दूर हट कर स्थूल काम-लीलाओं की अभिव्यक्ति का साधन बन गई। हिन्दी प्रदेशों में वैष्णव संप्रदाय तत्व चिंतन से हटकर विलासिता के साथ जुड़ गए। लोग अपने आराध्य राम-कृष्ण की शृंगारिक लीलाओं में ही अपने विलासपूर्ण जीवन की संगति ढूँढ़ने में लग गए। श्रीसंप्रदाय की परंपरा में आने वाले रीतिकालीन सतनामी, लालदासी, नारायणी आदि संप्रदायों के शिष्य विलासमय आराधना में लीन हो गए। रागानुगा शक्ति में तो विलासमई लीलाओं का पूरा अवकाश था ही; परंतु वैधी भक्ति के मर्यादा पुरुषोत्तम राम तक भी उनसे नहीं बच सके। कृष्णभक्ति शाखा का तेजी से प्रसार हुआ क्योंकि यह रीतिकालीन प्रवृत्ति के अनुकूल थी। वल्लभ संप्रदाय में विट्ठलनाथ की मृत्यु के बाद अनेक गद्दियाँ देश भर में स्थापित हुईं। इन गद्दियों के गोस्वामियों ने लोभवश राजाओं

और सामंतों से संपर्क कायम कर उन्हें दीक्षा देना शुरू कर दिया। सेवा-अर्चना की भक्ति पद्धति के नाम पर वहाँ ऐश्वर्य और विलास की तमाम तरह की लीलाएँ होने लगीं। श्री निंबार्काचार्य ने कृष्ण भक्ति की जिस मधुर धारा की शुरूआत की थी, उसे अधिकांश रीतिकाल के भक्त-कवियों ने बाह्य विलास की लीलाओं से भर दिया। इसी तरह हितहरिवंश के राधावल्लभ संप्रदाय और चैतन्यमतानुयायी गोस्वामियों की प्रेममूला मधुरा भक्ति काममूला रति के रूप में बदल गई। रीतिकाल के कवि बौद्धिक ह्रास के कारण कृष्णभक्त कवियों की परंपरा का अनुकरण नहीं कर रहे थे, वरन उनकी शृंगार भावना को विलासमयी लीला के रूप में प्रस्तुत कर रहे थे। इसी का परिणाम था कि इस काल में 'सूरसागर' की जगह 'ब्रज विलास' लिखा गया और लक्ष्मणाचार्य की 'चंडी कुच पंचाशिका' जैसी घोर विकृत शृंगार के उदाहरणों से युक्त कविता रची गई। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भक्तों की ऐसी साधना में आंतरिक प्रेम-निवेदन की भावना के साथ ही बाह्य उपकरणों में भी सभी भाव, वेश-भूषा और हाव-भाव के अनुकरण को साधना-पक्ष के ह्रास का द्योतक माना है।

भक्तिकाल में मध्वाचार्य, निंबार्काचार्य, चैतन्य तथा वल्लभ जैसे आचार्यों द्वारा चलाए गए संप्रदायों में राधा भाव से भक्ति की प्रधानता थी। लेकिन रीतिकाल में राधा भक्ति की आड़ में परकीया भाव की नायिका के रूप में सिमट कर रह गई। दरअसल रीतिकालीन कवि शृंगार-साधना के मानसिक विलास में ही डूबे रहते थे। उनके लिए राधा एवं कृष्ण महज भक्ति व वैराग्य के बहाना भर थे-

"आगे के सुकवि रीझिहैं तौ कविताई
न तो राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है।" (भिखारीदास)

दूसरी ओर इस्लाम धर्म पर रीतिकालीन वैभव-विलास का सीधा प्रभाव तो नहीं था किंतु रूढ़ि पालन के कारण यह भी तत्कालीन जीवन को प्रभावित करने में समर्थ न था। इस प्रकार हिंदू और मुस्लिम धर्म अपने-अपने मूल तत्व-चिंतन से दूर होकर बाह्याचरण तक ही सिमट कर रह गए थे। ऐसी स्थिति में धर्म के साथ मूल्यहीनता की स्थिति आ जाने से जन सामान्य धर्म के बाहरी विधान में ही जकड़ गया और उसके जीवन में अंधविश्वासों ने घर कर लिया। अंध परंपराओं का पालन अब सामान्य धर्म के रूप में स्वीकृत हो चुका था। हर धर्म के बिचौलिए पुजारी या मुल्ला जनता के अंधविश्वास का आए दिन लाभ उठाते थे। इस रूप में रीतिकाल में धर्म-स्थल व्यभिचार के केंद्र बन गए। इसमें शक नहीं कि इस युग में भक्तिकालीन परंपरा के संत और सूफी मौजूद थे, किंतु उनमें पूर्ववर्ती संतों-सूफियों जैसी प्रतिभा नहीं थी जो किसी के जीवन को प्रभावित कर सके। इसलिए रीतिकाल में धर्म मनोविनोद के एक साधन के रूप में बदल गया। इस अर्थ में इस काल की धार्मिक पृष्ठभूमि में जनता के मानसिक परिष्कार की संभावना लगभग खत्म हो गई थी।

बोध प्रश्न

- रीतिकाल में धर्म मनोविनोद के साधन के रूप में कैसे बदला?

9.3.2.4 सांस्कृतिक परिस्थिति

रीतिकाल की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के गठन में तत्कालीन दरबारी संस्कृति का गहरा असर देखा जा सकता है। दरबार कलाकारों के आश्रय स्थल थे। यह बात मुगल बादशाह, नवाबों और अन्य राजा-महाराजाओं के दरबारों पर सामान्य रूप से लागू थी। इस युग की कलाओं पर विलासिता का प्रभाव स्पष्ट है - चाहे वह स्थापत्य कला हो, चित्रकला या संगीतकला। शाहजहाँ के शासन में स्थापत्य और चित्रकला में दरबारी परिवेश के अनुरूप अलंकरण की प्रवृत्ति अपेक्षाकृत ज्यादा नजर आती है जबकि औरंगजेब को कलाओं के प्रति उतना लगाव नहीं था अतः उसके काल में कलाओं का ह्रास हुआ। मुगल दरबार में कलाएँ ईरानी शैली से प्रभावित थी जबकि हिंदू दरबारों में पोषित कलाओं में भारतीय सांस्कृतिक परंपरा के प्रभाव के साथ तत्कालीन ईरानी शैली का भी असर देखा जा सकता है।

चित्रकला का उत्थान-पतन

जहाँगीर का समय चित्रकला की दृष्टि से स्वर्णकाल माना जाता है। उसके बाद भी इस कला की समृद्धि में कमी नहीं आई। शाहजहाँ के काल में चित्रकला में अलंकरण की प्रवृत्ति अपेक्षाकृत ज्यादा नजर आती है। औरंगजेब के बाद परवर्ती शासकों के पराश्रय में चित्रकला महज अनुकरण मात्र होने के कारण उसमें समय के साथ जड़ता आने लगी। आरंभ में चित्रकला पर मुगल दरबार की ईरानी शैली का दबदबा रहा लेकिन बाद में इस पर भारतीय परंपराओं का भी असर देखा जा सकता है। हिंदू रजवाड़ों विशेषतः राजस्थान और पर्वतीय क्षेत्रों में चित्रकला की एक भिन्न शैली विकसित हुई जिस पर लोक जीवन का प्रभाव था। राजस्थान और पर्वतीय क्षेत्रों में यह क्रमशः राजस्थानी और काँगड़ा चित्र शैली नाम से प्रसिद्ध है। रागमाला राजस्थानी चित्र शैली का मुख्य विषय था जो ऋतुओं से संबंधित था। इसके अलावा इस शैली के चित्रों का विषय कृष्णलीला, नायिका भेद और बारहमासा भी रहा है। जबकि काँगड़ा शैली के चित्रों का विषय धर्म, पुराण, इतिहास, लोकगाथा एवं दैनिक जीवन रहा है। इन चित्रों में प्रभावमयता के साथ रहस्यात्मकता का भी पुट है। इस माने में रीतिकाल में दरबारी वैभव एवं लोकजीवन दोनों के चित्र मिलते हैं।

बोध प्रश्न

- राजस्थानी शैली का मुख्य विषय क्या है?
- काँगड़ा शैली का मुख्य विषय क्या है?

संगीत में विलासिता

रीतिकाल में संगीत कला का भी काफी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। अकबर से लेकर जहाँगीर के शासन तक संगीत कला ने ऊँचाई हासिल की। लेकिन शाहजहाँ के समय संगीत का प्रभाव कुछ कम हो गया। इसका कारण यह था कि शाहजहाँ की रुचि संगीत की अपेक्षा स्थापत्य कला में ज्यादा थी। आगे चलकर औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता और विशेषकर संगीत से अरुचि संगीत कला के विकास में बाधक बनी। लेकिन 18 वीं सदी में मुहम्मदशाह रँगीले के शासन में दिल्ली

दरबार में फिर से संगीतकारों को सम्मान मिलने लगा। दरअसल उस समय भारतीय संगीत फारसी प्रभाव से विलासवृत्ति प्रधान हो गया था। इस युग में चतुरंग शैली में ख्याल, तराना, सरगम और चिवट (मृदंग के बोल) के मिश्रण से संगीत की नई और विचित्र शैली विकसित हुई।

डॉ. श्यामसुंदर दास ने रीतिकाल के संगीत की प्रवृत्ति को रेखांकित करते हुए लिखा है- "वाजिद अली शाह (अवध के नवाब) के समय की संगीत की प्रकृति को अपने-अपने आश्रयदाताओं की मनोवृत्ति की ही परिचायक नहीं, लोक की प्रौढ़ रुचि में जिस क्रम से पतन हुआ उसका इतिहास भी है।" तो भी, संगीत के क्षेत्र में इस काल में अवध, राजस्थान और ग्वालियर का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ग्वालियर में शुद्ध शास्त्रीय संगीत का विकास हुआ। साथ ही, राजस्थान ने शास्त्रीय संगीत के भीतर स्थानीय लोक प्रभावों में विशिष्टता उत्पन्न की। ग्वालियर के दरबार में संगीत की 'ध्रुपद' जैसी गंभीर शास्त्रीय शैली का विकास हुआ। इसके बावजूद कलाओं की भाँति रीतिकाल के संगीत में भी विलासिता वृत्ति का प्रभाव दिखाई देता है। संगीत में मौलिकता का अभाव होने के कारण यह रसिकता का पर्याय बन गया। इसके बावजूद इस युग में संगीतशास्त्र के कुछ प्रामाणिक ग्रंथों का निर्माण हुआ, इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

बोध प्रश्न

- संगीत रसिकता का पर्याय क्यों बना?

9.3.2.5 साहित्यिक परिस्थिति

किसी भी काल के साहित्य पर तत्कालीन समाज और संस्कृति का प्राभाव जरूर पड़ता है। रीतिकालीन कविता भी अन्य कलाओं के समान दरबारी संस्कृति से प्रभावित है। इस काल की साहित्यिक दृष्टि के विकास में भारतीय साहित्य (संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी) की सांसारिक शृंगारपरक मुक्तकों की परंपरा का काफी योगदान रहा है। प्राकृत भाषा में रचित घोर शृंगारिक रचना हाल की 'गाथा सप्तशती' रीतिकालीन कविता पर सबसे ज्यादा प्रभाव दिखाई देता है। भक्तिकाल की समाप्ति पर रीति कवियों ने भक्ति के आवरण में राधा-कृष्ण के बहाने से अपने आश्रयदाताओं की विलासपरक रुग्ण मानसिकता के संतोष के लिए घोर शृंगारिक काव्य रचे।

रीतिकाल की इस साहित्यिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं - "हिन्दी में शृंगार की काव्यधारा भक्ति से ही फूटी, अतः स्वकीया-प्रेम के लिए उसमें अवकाश न रहा। प्रेम के विस्तार और वैविध्य के लिए परकीया-प्रेम ही अधिक उपयुक्त था। दरबारों में फारसी प्रेम-पद्धति के निरूपण में भी परकीया-प्रेम में आवेग और तीव्रता का प्रदर्शन किया जाता था जिससे हिन्दी के कवि भी अछूते न रह सके। भारतीय मर्यादा को ध्यान में रखकर प्रेम के आलंबन कृष्ण और राधा ही रखे गए। घोर वासनापूर्ण रचना करने वालों ने भी भक्ति को शृंगारिकता का आवरण बनाए रखा। इन कृष्ण भक्त कवियों ने अपने भगवत् प्रेम की पुष्टि के लिए जिस शृंगारमयी लोकोत्तर छटा और आत्मोत्सर्ग की अभिव्यंजना से जनता को रसोन्मत्त किया,

उसका लौकिक स्थूल दृष्टि रखने वाले विषय-वासना पूर्ण जीवों पर कैसा प्रभाव पड़ेगा, इसकी ओर उन्होंने ध्यान न दिया। फलतः रीतिकालीन कविता में राधा-कृष्ण के नाम के साथ उनकी वे सारी लीलाएँ भी आ गईं जो तद्युगीन विलासिता की अभिव्यक्ति में सहायक हुईं।"

इस प्रकार अपने आश्रयदाताओं के संरक्षण में पलने वाले रीतिकालीन कवियों की कविता विलासपूर्ण, अतिशय अलंकरण-प्रधान, चमत्कार और बाह्य प्रदर्शन की दरबारी-भावना से प्रभावित थी। लेकिन रीतिकाल में राज्याश्रय से दूर लोकाश्रित में रहकर भी कुछ कवि रचनाशील थे। ऐसे कवियों की कविता अलंकरण से सर्वथा अछूती और मार्मिक है।

बोध प्रश्न

- रीतिकालीन कविता किससे प्रभावित थी?

9.4 पाठ-सार

रीतिकाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के निर्माण में दरबारी परिवेश की भूमिका अहम रही। दरबारी संस्कृति से ही उस काल की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक परिस्थितियों ने अपना स्वरूप ग्रहण किया। केंद्रीय शासन के विघटन का असर तत्कालीन सभी परिस्थितियों पर पड़ा। लोक जीवन की व्यापकता का अभाव, सामंती परिवेश और दरबारी मानसिकता ने रीतिकालीन परिवेश को मूल्यहीनता, रूढ़िवादिता, मौलिकता के ह्रास आदि से ढँक दिया। इन परिस्थितियों ने ही समाज, संस्कृति और कलाओं में विलासिता, प्रदर्शनप्रियता, अलंकरण आदि को जन्म दिया। तत्कालीन दरबारी परिवेश ने ही रीतिकाव्य के विकास में उल्लेखनीय भूमिका अदा की।

9.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं –

1. सत्रहवीं शताब्दी के मध्य से उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक के हिन्दी साहित्य की मुख्य प्रवृत्ति रीति निरूपण की है, इसलिए इसे रीतिकाल कहा जाता है।
2. यह समय भारतीय इतिहास में मुगल साम्राज्य के उत्थान (शाहजहाँ) और पतन (बहादुरशाह ज़फ़र) का समय था।
3. इस काल में नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली जैसे विदेशियों के आक्रमण से मुगल साम्राज्य की नींव हिल गई।
4. इसी काल में भारत में ईस्ट इंडिया के माध्यम से अंग्रेजों का कब्जा कायम हुआ।
5. रीतिकाल के समाज में हर तरफ पतनशीलता व्याप्त थी।
6. इस काल में कवि और कलाकार मुगल दरबार और राजे-रजवाड़ों पर आश्रित थे।
7. इस काल में उच्च धार्मिक मूल्य छोड़कर भक्ति भी कामलीलाओं की अभिव्यक्ति बन गई थी।
8. सांस्कृतिक दृष्टि से यह काल हिंदु और मुगल संस्कृति के मिश्रण का काल था।

9. रीतिकालीन कवियों ने प्रायः अपने आश्रयदाताओं के मनोरंजन के लिए विलासपूर्ण साहित्य की रचना की।

9.6 शब्द संपदा

1. धर्मांधता	=	धर्म का अंधे की तरह अनुकरण करने का भाव
2. निरंकुशता	=	मनमाना आचरण, तानाशाही
3. रीति	=	कोई कार्य करने का प्रकार, ढंग, नियम
4. विकेंद्रीकरण	=	किसी सत्ता या अधिकार को केंद्र से हटाकर दूर करना

9.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. 'रीतिकाल की राजनीतिक परिस्थिति दरबारी परिवेश के बीच विकसित हुई है।' इस कथन को स्पष्ट कीजिए।
2. रीतिकाल में समाज के विभिन्न वर्गों की स्थितियों का मूल्यांकन कीजिए।
3. रीतिकाल की धार्मिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों का विश्लेषणात्मक विवेचन कीजिए।
4. रीतिकाल के साहित्यिक परिवेश पर संक्षिप्त निबंध लिखिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. रीतिकाल की समयसीमा और नामकरण पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।
2. रीतिकाल को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों को समझाइए।
3. 'रीतिकाल को धार्मिक परिस्थिति की दृष्टि से पतन का काल माना जाता है।' इस कथन को स्पष्ट करें।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए

1. मिश्र बंधुओं ने रीतिकाल को क्या कहा? ( )
   (अ) शृंगार काल (आ) अलंकृत काल (इ) रीति काल (ई) उत्तर मध्यकाल
2. इनमें से रीतिकालीन कवि कौन नहीं हैं? ( )
   (अ) पद्माकर (आ) भिखारी दास (इ) विद्यापति (ई) बिहारी

3. स्वच्छंद काव्य रचना करने वाले कवियों को क्या कहा जाता है? ( )

(अ) रीतिबद्ध (आ) रीतिसिद्ध (इ) रीतिमुक्त (ई) आचार्य कवि

II रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

1. .... शैली के चित्रों का विषय धर्म, पुराण, लोकगाथा आदि पर आधारित है।

2. 'गाथा सप्तशती' के रचनाकार .... हैं।

3. रीतिकाल की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में .... परिवेश की भूमिका अहम रही।

III सुमेल कीजिए

i)	काँगड़ा शैली	(अ)	मृदंग के बोल
ii)	चतुरंग शैली	(आ)	चित्रकला
iii)	चिवट	(इ)	संगीत

9.8 पठनीय पुस्तकें

1. रीतिकाल की भूमिका, नगेंद्र
2. हिन्दी रीति साहित्य, भगीरथ मिश्र
3. रीतिकालीन साहित्य का पुनर्मूल्यांकन, रामकुमार वर्मा
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं.नगेंद्र और हरदयाल
6. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह
7. हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास, हजारी प्रसाद द्विवेदी
8. हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास, विश्वनाथ त्रिपाठी
9. हिन्दी साहित्य : संक्षिप्त इतिवृत्त, शिवकुमार मिश्र
10. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी

इकाई 10 : रीतिबद्ध काव्य

रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 मूल पाठ : रीतिबद्ध काव्य

10.3.1 रीतिकाल की प्रमुख काव्यधाराएँ

10.3.2 रीतिबद्ध काव्यधारा का विकास

10.3.3 प्रमुख रीतिबद्ध कवि : केशवदास

10.3.3.1 कवि परिचय

10.3.3.2 काव्यागत विशेषताएँ

10.3.4 अन्य रीतिबद्ध कवि

10.3.4.1 चिंतामणि

10.3.4.2 पद्माकर

10.3.4.3 मतिराम

10.3.4.4 देव

10.3.4.5 भिखारीदास

10.4 पाठ-सार

10.5 पाठ की उपलब्धियाँ

10.6 शब्द संपदा

10.7 परीक्षार्थ प्रश्न

10.8 पठनीय पुस्तकें

10.1 प्रस्तावना

छात्रो! आप जानते ही हैं कि हिन्दी साहित्य के इतिहास के उत्तर मध्यकाल को 'रीतिकाल' कहा जाता है। यह नामकरण इस मान्यता से प्रेरित है कि इस काल में काव्यरीति अथवा काव्य-परिपाटी में रचना करना साहित्यकारों के प्रधान प्रवृत्ति हो गई थी। काव्यरीति अथवा काव्य-परिपाटी से रचना करने का अर्थ है, संस्कृत काव्यशास्त्र के आचार्यों द्वारा स्थापित सिद्धांतों का अनुकरण करते हुए रचनाएँ करना। यह अनुसरण भी रीतिकाल में कई तरीकों से हुआ। कुछ कवियों ने संस्कृत काव्यशास्त्र के विभिन्न आचार्यों के काव्यांग-विवेचन का सरल ब्रज भाषा में

बताकर उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए अपनी रचनाएँ रचीं तो कुछ कवियों ने काव्यशास्त्र के नियमों का पालन करते हुए अपनी रचनाएँ रचीं। कुछ कवियों ने इस तरह की परिपाटी से स्वयं को मुक्त रखते हुए भी रचनाएँ कीं। आप इस तथ्य से भी परिचित हैं कि इन तीनों प्रकार के रचनाकारों को क्रमशः रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त कवि माना जाता है। इस इकाई में इनमें से पहली प्रवृत्ति अर्थात रीतिबद्ध काव्यधारा पर चर्चा की जा रही है।

10.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रो! इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप –

- रीतिबद्ध काव्य की विभिन्न काव्य प्रवृत्तियों के बारे में जान सकेंगे।
- रीतिबद्ध काव्य का अभिप्राय समझ सकेंगे।
- रीतिबद्ध काव्य की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- प्रमुख रीतिबद्ध कवियों और उनकी रचनाओं के बारे में जान सकेंगे।
- रीतिबद्ध कवि के रूप में केशवदास की देन को समझ सकेंगे।

10.3 मूल पाठ : रीतिबद्ध काव्य

10.3.1 रीतिकाल की प्रमुख काव्यधाराएँ

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने ग्रंथ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में रीतिकाल की काव्यधाराओं का कोई बहुत स्पष्ट विभाजन नहीं किया है। उन्होंने चर्चा के लिए रीति ग्रंथकार कवियों के अतिरिक्त एक श्रेणी इस काल के अन्य कवियों की बनाई है। अन्य कवियों की श्रेणी की भूमिका में कुल 6 प्रधान वर्गों का उल्लेख किया गया है, लेकिन उन्होंने कवियों को इन वर्गों में विभाजित करके उन पर चर्चा करना आवश्यक नहीं समझा। 'रीतिकाल के अन्य कवियों' के प्रधान वर्गों के उल्लेख का उनका उद्देश्य उन कवियों की रचनात्मक विविधता को उजागर करना मात्र था।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्यकाल की रचनाओं को मुख्यतः तीन धाराओं में विभाजित किया है। आचार्य मिश्र ने अपने ग्रंथ 'हिन्दी साहित्य का अतीत' में उत्तर मध्यकाल को 'रीतिकाल' कहने के बजाय 'शृंगार काल' कहना उचित समझा है। इसके बावजूद काव्यधाराओं का उनका विभाजन 'रीति' केंद्रित ही है। इसका अर्थ यह हुआ कि उत्तर मध्यकाल में काव्यशास्त्र की परिपाटी अथवा रीति के अनुसरण की प्रवृत्ति को ही मुख्य मानकर उन्होंने इस काल की मुख्य काव्यधाराओं का नामकरण किया है। कुछ अपवादों के अतिरिक्त उनके बाद के साहित्य-इतिहासकारों ने भी थोड़े-बहुत मतभेद के साथ इसी विभाजन को स्वीकार किया है। ये तीन मुख्य काव्यधाराएँ निम्नलिखित हैं -

1. रीतिबद्ध काव्यधारा
2. रीतिसिद्ध काव्यधारा

3. रीतिमुक्त काव्यधारा

बोध प्रश्न

- रीतिकाल की मुख्य काव्यधाराओं का नामकरण किस आधार पर किया गया है?

10.3.2 रीतिबद्ध काव्यधारा का विकास

रीतिबद्ध काव्यधारा के अंतर्गत रीतिकाल के कवि और उनके काव्यग्रंथ सम्मिलित हैं जो काव्यशास्त्र में वर्णित रीति अथवा काव्य-परिपाटी से बँधे हुए हैं। इन कवियों ने प्रकट रूप से काव्यंग निरूपण के लिए रचनाएँ कीं। 'काव्यंग-निरूपण' का सरल अर्थ है - काव्यशास्त्र के आचार्यों द्वारा प्रतिपादित कविता के विविध अंगों को उदाहरण सहित प्रस्तुत करना। विभिन्न रसों, अलंकारों, छंदों आदि के लक्षण बताकर उनके उदाहरण देते हुए जो रचनाएँ रची गईं वे रीतिबद्ध काव्यधारा के अंतर्गत आती हैं। इसीलिए इन कवियों को 'लक्षण-ग्रंथकार' भी कहा जाता है। इन कवियों ने काव्यांग निरूपण के लिए आम तौर पर संस्कृत के कुछ ग्रंथों का अनुसरण किया, जिनमें प्रमुख हैं - जयदेव का 'चंद्रालोक', अप्पय दीक्षित का 'कुवलयानंद', मम्मट का 'काव्यप्रकाश' और विश्वनाथ का 'साहित्य दर्पण।'

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इन कवियों को 'रीतिग्रंथकार कवि' की संज्ञा दी हैं। इसी प्रकार, डॉ. नगेंद्र इन कवियों को रीतिबद्ध कवि कहने के पक्ष में नहीं हैं, बल्कि वे इन्हें 'रीतिकार' या 'आचार्य कवि' कहना उचित मानते हैं। इसके बावजूद आम तौर पर विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा किया गया नामकरण अर्थात 'रीतिबद्ध' कवि ही सर्वाधिक प्रचलित और स्वीकृत है।

'रीतिबद्ध काव्यधारा' के रचनाकारों के बारे में एक सामान्य बात यह रही है कि लगभग ये सभी कवि राज्याश्रित रहे हैं। इसलिए यह माना जाता है कि इन कवियों की रचनाओं का उद्देश्य अपने आश्रयदाता राजाओं के समक्ष अपने काव्यशास्त्रीय ज्ञान से युक्त कवित्त-शक्ति का प्रदर्शन करना था। इसके अलावा उनकी रचनाओं का उद्देश्य आश्रयदाता की रुचियों को ध्यान में रखकर उन्हें मनोरंजन उपलब्ध करवाना भी होता था। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कई बार इन कवियों को अपने कौशल का उपयोग काव्य प्रशिक्षण देने के लिए भी करना पड़ता था। उदाहरण के लिए केशवदास के ग्रंथ 'कविप्रिया' का उल्लेख किया जा सकता है। केशवदास ओरछा नरेश इंद्रजीत के दरबार में रहते थे। ऐसा माना जाता है कि उन्होंने अपने इस ग्रंथ की रचना दरबार की प्रधान नर्तकी प्रवीण राय को कविता की शिक्षा देने के उद्देश्य से की थी। यह कहा जा सकता है कि काव्यांग निरूपण का एक उद्देश्य सरल लोक भाषा में संस्कृत काव्यशास्त्र की परिपाटी अथवा कविता रचने की रीति की शिक्षा देना भी था। इसीलिए इन ग्रंथों में विभिन्न रसों, छंदों, अलंकारों आदि के विषय में संस्कृत के काव्यशास्त्रीय विद्वानों के मतों को पहले कवित्त में बताया जाता था और फिर उसके उदाहरण दिए जाते थे। उदाहरण के लिए इस तरह का एक पद केशवदास की

कृति 'छंदमाला' से उद्धृत किया जा सकता है, जिसमें सुप्रिय छंद का लक्षण उन्होंने इस तरह बताया है - "चौदह लघु गुरु एक अरु सुप्रिय छंदप्रकास।/ अक्षर प्रतिपद पंचदस आनहु केसावदास॥"

लक्षण निरूपण की प्रक्रिया को समझने के लिए महाराज जसवंत सिंह की कृति 'भाषाभूषण' का यह एक दोहा देखें - "अलंकार अत्युक्ति यह, बरनत अतिसाय रूप।/ जाचक तेरे दान ते, भए कल्पतरु भूप।" इस दोहे में अत्युक्ति अलंकार को उदाहरण सहित समझाया गया है। पहली पंक्ति में लक्षण और दूसरी पंक्ति में उदाहरण आया है। पहली पंक्ति में यह बताया गया है कि अत्युक्ति अलंकार वहाँ होता है जहाँ किसी बात को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर कहा जाए। दूसरी पंक्ति में इसका उदाहरण इस तरह दिया गया है कि दानी राजा के दान को पाकर याचक स्वयं कल्पवृक्ष के समान दानी बन गए हैं। कल्पवृक्ष का आशय एक ऐसे वृक्ष से है जिससे जो भी कामना की जाए वह तत्काल पूरी हो जाती है। याचक का कल्पतरु होना दर्शाता है कि दाता राजा तो कल्पवृक्ष से भी महान रहा होगा। इस बढ़ा-चढ़ाकर की गई प्रशंसा के कारण इस दोहे में अत्युक्ति अलंकार है। एक ही पंक्ति में लक्षण उदाहरण का यह अनोखा संयोजन कुछ ही कवियों की रचनाओं में मिलता है। प्रायः लक्षण ग्रंथकार कवियों ने पहले स्वतंत्र रूप से लक्षण कहे हैं, और फिर उदाहरण के अलग से पद रचना की है।

इस प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि रीति ग्रंथकार कवियों ने कविता लिखने की एक प्रणाली ही बना ली कि पहले दोहे में अलंकार या रस का लक्षण लिखना फिर उसके उदाहरण के रूप में कवित्त या सवैया लिखना। शुक्ल जी ने इसे 'अनूठा दृश्य' कहा है। उन्होंने लिखा है कि संस्कृत साहित्य में कवि और आचार्य दो भिन्न-भिन्न श्रेणियों के लोग रहे जबकि हिन्दी काव्य क्षेत्र में यह भेद लुप्त सा हो गया। इसीलिए इन कवियों को 'आचार्य कवि' भी कहने की परंपरा है। साथ ही यह भी ध्यान में रखने वाली बात है कि काव्यांग निरूपण के उदाहरण के लिए मौलिक रचनाएँ रचने के कारण ये रचनाकार मूलतः कवि ही थे, जिन्होंने काव्यांग निरूपण को अपनी काव्य रचना के माध्यम के रूप में उपयोग किया। इस पद्धति से रीतिकाल में भारी मात्रा में रचनाएँ हुईं। यह कहा जा सकता है कि इस धारा के कवियों में जो आचार्यत्व था, वह एक तरह से उनकी मौलिक काव्यप्रतिभा की अभिव्यक्ति में सहायक ही सिद्ध हुआ। इन कवियों ने अपने आचार्यत्व के बल पर कोई नवीन स्थापना की हो अथवा पूर्व के उपलब्ध ज्ञान में कोई विस्तार किया हो, इसके प्रमाण नहीं मिलते। लेकिन रस, अलंकार, छंद आदि के लक्षण निरूपण के क्रम में इन कवियों ने अनेक ऐसी रचनाएँ कीं जिन्हें पर्याप्त लोकप्रियता और सराहना मिली।

इस धारा के कुछ प्रमुख कवि और उनकी कुछ कृतियों के नाम निम्नलिखित हैं -

केशव : रसिकप्रिया, रामचंद्रिका, कविप्रिया, जहाँगीरजसचंद्रिका आदि।

चिंतामणि : काव्य विवेक, कविकुल कल्पतरु, काव्य प्रकाश आदि।

पद्माकर : हिम्मतबहादुर विरुदावली, जगद्विनोद, पद्माभरण, गंगा लहरी आदि।

देव : भावविलास, अष्टयाम, भवानी विलास, काव्य रसायन आदि।

मतिराम : ललित ललाम, छंदसार, साहित्यसार, लक्षण शृंगार आदि।

जसवंत सिंह : भाषाभूषण, अनुभवप्रकाश, आनंदविलास, प्रबोधचंद्रोदय नाटक आदि।

भिखारी दास : रस सारांश, काव्यनिर्णय, नामप्रकाश कोश, छंद प्रकाश आदि।

दूलह : कविकुल कंठाभरण।

भूषण : शिवराज भूषण, शिवा बावनी, छत्रसाल दशक।

ग्वाल कवि : यमुना लहरी, भक्तभावना, रसिकानंद, रसरंग, दूषण दर्पण आदि।

प्रतापसाहि : व्यंग्यार्थ कौमुदी, काव्य विलास, काव्य विनोद, शृंगार शिरोमणि आदि।

इस प्रकार रीतिकाल के जिन कवियों ने शिक्षा के उद्देश्य से काव्य के विभिन्न अंगों, अलंकार, रस, नायक-नायिका भेद, छंद आदि लक्षणों का निरूपण (विवेचन) के साथ उनके उदाहरण प्रस्तुत करते हुए रीतिग्रंथों की रचना की, उन्हें 'रीति-काव्य' कहा गया। इस काव्य धारा की शुरूआत भक्तिकाल में हो चुकी थी। आचार्य शुक्ल के अनुसार "रीतिबद्ध ग्रंथ जो लिखने बैठते थे उन्हें प्रत्येक अलंकार या नायिका को उदाहृत करने के लिए पद्य लिखना आवश्यक था जिनमें सब प्रसंग उनकी स्वाभाविक रुचि या प्रवृत्ति के अनुकूल नहीं हो सकते थे।"

रीतिबद्ध कवियों के तीन वर्ग हैं - (1) अलंकार निरूपक आचार्य, (2) रस और नायक-नायिका भेद के निरूपक आचार्य तथा (3) सर्वांग निरूपक आचार्य। कुछ समीक्षकों ने पिंगल निरूपक आचार्यों की भी एक चौथी कोटि निर्धारित की है।

(1) अलंकार निरूपक आचार्यों ने अपने लक्षण ग्रंथों के निर्माण के लिए संस्कृत ग्रंथों 'चंद्रालोक' तथा 'कुवलयानंद' को अलंकार विश्लेषण का आधार बनाया। इन आचार्यों में केशवदास, जसवंत सिंह, मतिराम, भूषण, गोप, रसिक गोविंद, दूलह, गोकुलनाथ तथा पद्माकर के नाम लिए जा सकते हैं।

(2) रस और नायक-नायिका भेद के निरूपक आचार्यों की दो कोटियाँ हैं - कुछ ने मूल रूप से नायिका भेद और स्थूल रूप से शृंगार रस का निरूपण किया है। कुछ आचार्य ऐसे भी रहें जिन्होंने सभी रसों पर विचार किया। किंतु सभी की दृष्टि शृंगार रस की ओर अधिक केंद्रित रही। इस वर्ग के आचार्यों में तोषकवि, मतिराम, देव, कृष्णभट्ट, श्रीपति, उदयनाथ, सोमनाथ, बेनी और पद्माकर आदि सम्मिलित हैं।

(3) सर्वांग निरूपक आचार्यों ने काव्य के सभी अंगों का विवेचन किया। उन्होंने काव्य के लक्षण, रस, छंद, अलंकार, ध्वनि, शब्द-शक्ति, रीति, गुण-दोष, काव्य प्रयोजन, नायक-नायिका भेद

आदि प्रसंगों का चित्रण करने का यथोचित प्रयास किया। आचार्य चिंतामणि, कुलपति मिश्र, देव, सुरति मिश्र, कुमारमणि शास्त्री, सोमनाथ, श्रीपति, भिखारीदास, प्रतापसिंह आदि आचार्य इस क्षेत्र के प्रमुख कवि हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिन्दी में रीतिग्रंथ रचना की परंपरा का प्रारंभकर्ता आचार्य चिंतामणि को माना है। लेकिन नए शोधों व अध्ययनों के बाद अधिकतर विद्वानों ने केशवदास को रीतिग्रंथ रचना का प्रवर्तक माना है। उनके द्वारा रचित 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' दोनों ही उत्तम कोटि के ग्रंथ माने जाते हैं जिनसे केशवदास के बाद के कवियों ने अपनी रचना के लिए आधार ग्रहण किया।

हिन्दी में रीतिग्रंथ रचने की परंपरा संस्कृत से आई। रीतिकाल का अलंकारशास्त्र हिन्दी में प्रतिष्ठित हो रहा था तथा संस्कृत अलंकारशास्त्र का अंत। यह एक सुंदर संयोग है। केशव, श्रीपति, देव, भिखारीदास जैसे कुछ आचार्यों ने अपनी मौलिकता दिखाई किंतु अधिकांश ने संस्कृत का ही अनुकरण किया।

प्रिय छात्रो! भारत में काव्यशास्त्र की लंबी परंपरा रही है। इसके तहत छह विचारधाराएँ आती हैं - रस, अलंकार, ध्वनि, रीति, वक्रोक्ति और औचित्य। इन्हें 'संप्रदाय' कहा जाता है। हिन्दी में रीतिकाल के लक्षण-ग्रंथों पर इनमें से तीन प्रमुख संप्रदायों का प्रभाव पड़ा है। वे हैं - अलंकार, रस और ध्वनि। केशव जैसे कुछ कवि शास्त्र रचना कर आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हुए तो, अन्य कवियों में भी आचार्यत्व की होड़-सी लग गई। यहाँ तक कि भूषण जैसे वीर रस के कवि ने भी आचार्यत्व पाने के लिए 'शिवराज भूषण' की रचना की।

देव द्वारा किया गया रस-विवेचन अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत और मौलिक है। मतिराम का कवि रूप आचार्य की तुलना में कहीं अधिक प्रबल है। उनके तथा पद्माकर के लक्षण-उदाहरण न केवल सटीक हैं, अपितु सरस भी हैं। शृंगारी आचार्यों में भिखारीदास सर्वोच्च स्थान रखते हैं। ध्वनि, रस, अलंकार, गुण-दोष आदि सभी विषयों पर भिखारीदास ने लक्षण-उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। जसवंत सिंह ने 'भाषा-भूषण' की रचना कर अपने आचार्यत्व का परिचय दिया। इस प्रकार उन आचार्य कवियों ने रीतिकाल की रसिकता और सरसता के वास्तविक स्वरूप को प्रस्तुत किया।

बोध प्रश्न

- काव्यांग-निरूपण से क्या आशय है?
- रीतिबद्ध कवियों को लक्षण ग्रंथकार क्यों कहा जाता है?
- सुप्रिय छंद के क्या लक्षण हैं?
- अतियुक्ति अलंकार कहाँ होता है?
- अलंकार निरूपक आचार्य किसे कहते हैं?
- रस और नायक-नायिका भेद के निरूपक आचार्य कौन हैं?
- सर्वांग निरूपक आचार्य किसे कहते हैं?
- रीतिग्रंथ रचना के प्रवर्तक कौन हैं?

10.3.3 प्रमुख रीतिबद्ध कवि : केशवदास

10.3.3.1 कवि परिचय

भक्तिकाल के अवसान के साथ ही हिन्दी साहित्य में रीतिकाव्य की परंपरा की नींव पड़ी। इस काव्यधारा के प्रवर्तक का श्रेय निश्चित रूप से आचार्य केशवदास (1546 ई.-1618 ई.) को है। यद्यपि इस दिशा में केशव से पूर्व छुटपुट प्रयत्न हुए किंतु उनमें किसी परंपरा के निर्माण हेतु प्रेरणा देने का सामर्थ्य नहीं था।

केशवदास का जन्म 1546 ई. में हुआ था। इनके पिता का नाम काशीराम या काशीनाथ था। ओरछा नरेश महाराज इंद्रजीत सिंह इनके मुख्य आश्रयदाता थे। वे केशव को अपना गुरु मानते थे। केशव संस्कृत काव्यधारा का सम्यक परिचय कराने वाले हिन्दी के प्राचीन आचार्य और कवि हैं। ऐसा माना जाता है कि उनके कुल में भी संस्कृत का ही प्रचार था। अनुमानतः इनकी मृत्यु 1618 ई. में हुई।

केशवदास भक्तिकाल और रीतिकाल के संधिकाल के रचनाकार हैं। इस समय तक कृष्ण-भक्ति साहित्य का स्वरूप रसिक-भक्ति साहित्य के रूप में बदल गया था। इस भक्ति साधना का मूल उद्देश्य लौकिक उन्मुक्तता को शृंगार का आध्यात्मिक रूप देना था। यह प्रवृत्ति केशवदास की रचनाओं में भी देखी जा सकती है। केशव अलंकारवादी आचार्य कवि थे। इसीलिए स्वाभाविक है कि उन्होंने भामह, उद्भट और दंडी जैसे अलंकार संप्रदाय के आचार्यों का अनुसरण किया। उन्होंने अलंकारों के दो भेद माने हैं - साधारण और विशिष्ट। अलंकारों के प्रति विशेष रुचि होने के कारण उनका काव्यपक्ष कुछ दब गया है और सामान्यतः ये सहृदय कवि नहीं माने गए।

केशवदास रचित प्रामाणिक ग्रंथ नौ हैं - रसिकप्रिया, कविप्रिया, नखशिख, छंदमाला, रामचंद्रिका, वीरसिंह-देव-चरित, रतनबावनी, विज्ञानगीता और जहाँगीर जस-चंद्रिका। इनमें प्रथम चार ग्रंथ काव्यशास्त्र से संबंधित हैं। उल्लेखनीय है कि रसिकप्रिया और कविप्रिया में इन्होंने संस्कृत के लक्षण ग्रंथों का अनुवाद किया और उदाहरण के रूप में अपनी कविताएँ दी हैं।

रसिकप्रिया में रस, वृत्ति (मन के व्यापार) और काव्यदोषों के लक्षण उदाहरण दिए गए हैं। यह मुख्यतः रस-विवेचन से संबंधित ग्रंथ है, जिसमें प्रमुखतः शृंगार रस का वर्णन है। अन्य रसों का इन्होंने गौण रूप से वर्णन किया है। शृंगार रस निरूपण में नायक-नायिका भेद का ही निरूपण किया गया है।

कविप्रिया काव्यशिक्षा संबंधी ग्रंथ है। इसकी रचना उन्होंने अपनी शिष्य प्रवीणराय को शिक्षा देने के लिए रचा था। अतः इसमें कवि-शिक्षा, अलंकार-निरूपण और काव्य के दोषों का वर्णन है। यह कविकल्पलता-वृत्ति और काव्यादर्श पर आधारित है।

रामचंद्रिका केशवदास का सर्वाधिक प्रसिद्ध महाकाव्य है। इसकी रचना प्रसन्नराघव, हनुमन्नाटक, कादंबरी आदि कई ग्रंथों से सामग्री ग्रहण करके की गई है। इसमें रामचरित का गान वाल्मीकि की रामायण के आधार पर किया गया है। लेकिन उनमें भक्ति-भावना की अपेक्षा काव्य-चमत्कार के प्रदर्शन की भावना अधिक है। अतः यह कहा जाता है कि रामचंद्रिका का विषय राम-भक्ति है; किंतु केशव कवि पहले थे, भक्त बाद में।

छंदमाला छंद-संबंधी ग्रंथ है। यह एक छोटी-सी पुस्तिका है जिसमें साधारण रूप से छंद-संबंधी शिक्षा दी गई है। इस ग्रंथ का ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व है।

केशव ने भक्तिकाल के कवियों की तरह धर्माश्रय या लोकाश्रय में रचना नहीं की। उन्हें राज्याश्रय प्राप्त था। अर्थात केशव दरबारी कवि थे। अन्य दरबारी कवियों की भाँति उन्होंने भी अपने आश्रयदाता राजाओं का यशोगान किया है। रतनबावनी, वीरसिंह-देव-चरित तथा जहाँगीर जस-चंद्रिका उनकी ऐसी ही रचनाएँ हैं।

विज्ञानगीता आध्यात्मिक ग्रंथ है जो संस्कृत नाटक प्रबोधचंद्रोदय के आधार पर रचित काव्य है। इसमें केशव ने वैराग्य से संबंधित भावनाओं को व्यक्त किया है।

केशव की विभिन्न रचनाओं में वर्णित कवियों के इस संक्षिप्त परिचय के आधार पर कहा जा सकता है कि केशवदास में काव्य-सृजन की विविध शैलियों की क्षमता थी।

बोध प्रश्न

- केशवदास द्वारा रचित प्रामाणिक ग्रंथों का नाम बताइए।

10.3.3.2 काव्यागत विशेषताएँ

आचार्यत्व या कवित्व

केशव ने काव्यशास्त्र की परंपरा का निर्वाह करते हुए रीतिबद्ध काव्य की रचना की। उनकी इस प्रवृत्ति के आधार पर यह कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य में केशव का आचार्य के रूप में जितना महत्व है, उतना कवि के रूप में नहीं। प्रबंधकाव्य रामचंद्रिका में परंपरा पालन तथा अधिकाधिक अलंकारों को समाविष्ट करने के कारण वर्णनों की भरमार है। चहल-पहल, नगरशोभा, साजसज्जा आदि के वर्णन में इनका मन अधिक रमा है। प्रबंधों की अपेक्षा मुक्तकों में

इनकी सरलता अधिक स्थलों पर व्यक्त हुई है। अन्यथा इनके काव्य में चमत्कार पैदा करने की प्रवृत्ति ने उसे दुरूह बना दिया है। इसीलिए उन्हें प्रायः 'कठिन काव्य के प्रेत' कहा जाता है।

प्रकृति वर्णन

राजदरबारों की साज-सज्जा के बीच रहने के कारण केशव की प्रवृत्ति प्रकृति में नहीं रमती थी। उनका प्रकृति-चित्रण दोष-पूर्ण है। उसमें परंपरा का निर्वाह अधिक है, मौलिकता और नवीनता कम। वर्णन करने में कहीं-कहीं केशव ने काल और स्थान का भी ध्यान नहीं रखा है। अलंकारों के बोझ से दबी प्रकृति अपना सौंदर्य खो बैठी है। प्रकृति के संबंध में केशव की कल्पनाएँ कहीं-कहीं पर बड़ी असंगत और अरुचिकर हो गई हैं।

संवाद योजना

केशव राजदरबारों के लिए उपयुक्त वाक्पटुता के गुण से संपन्न थे। इसलिए उनके काव्य में संवाद योजना अत्यंत आकर्षक, नाटकीय और प्रवाहपूर्ण बन पड़ी है। उनमें राजदरबारों जैसी हाजिर-जवाबी और शिष्टता है। उनके द्वारा चरित्रों का उद्घाटन सुंदर ढंग से हुआ है। जनक-विश्वामित्र संवाद, लव-कुश संवाद, सीता-हनुमान संवाद इसी प्रकार के संवाद हैं।

पांडित्य-प्रदर्शन

रीतिकाल की एक प्रमुख प्रवृत्ति पांडित्य प्रदर्शन भी है। केशव भी इसके अपवाद नहीं है। इस प्रवृत्ति का कारण दरबारी वातावरण में निहित है। डॉ. विजयपाल सिंह ने इस प्रवृत्ति के तीन संदर्भ बताए हैं - "पहला, दरबार के परिवेश में काव्य पाठ्य कम, श्रव्य अधिक था। केवल काव्य सुनना नहीं, प्रतियोगिताओं में विजयी होना और सम्मानित होना भी आवश्यक था। दूसरा, वैभव के प्रदर्शनार्थ और अभिजातीय तत्व की गूँज के लिए अलंकरण का वाक् चातुर्य जरूरी था। अलंकरण की यह अधिकता मुगल शैली की चित्रकला में भी देखी जा सकती है। तीसरा, फारसी काव्य की प्रतिद्वंद्विता थी। फारसी काव्य इश्कमिजाजी की जिस चमत्कारिक 'वाह-वाह' शैली से संपन्न था हिन्दी कवियों के लिए आसान नहीं था। अतः रीतिकाल के कवि आचार्यों द्वारा निर्मित हिन्दी काव्यशास्त्र का स्वरूप भी इन्हीं वर्गगत युगीन आवश्यकताओं के अनुरूप ढला।" (हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पृ. 178)।

इन कारणों के चलते केशवदास का ध्यान जितना पांडित्य-प्रदर्शन की ओर था, उतना भाव-प्रदर्शन की ओर नहीं। आप जानते हैं कि पांडित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति के कारण ही केशव को हृदय हीन कवि या कठिन काव्य का प्रेत कहा जाता है। किंतु यह आरोप पूर्णतः सत्य नहीं, क्योंकि पांडित्य प्रदर्शन के साथ-साथ केशव के काव्य में ऐसे भी अनेक स्थल हैं, जहाँ उनकी भावुकता और सहृदयता पूर्ण साकार हो उठी है। उनके काव्य में कल्पना और मस्तिष्क का योग अधिक है। जैसे, अशोक वाटिका में हनुमान जब सीता को राम की मुद्रिका देते हैं, तो मुद्रिका के प्रति सीता का यह कथन अत्यंत भावपूर्ण है -

श्री पुर में बन मध्य मैं, तू मग करे अनीति।
कहि मुँदरी अब तियन की, को करि हैं परतीति॥

भाषा

केशव ने अपने काव्य के लिए ब्रजभाषा को अपनाया, परंतु ब्रजभाषा का जो ढला हुआ रूप सूर आदि अष्टछाप के कवियों में मिलता है वह केशव की कविता में उपलब्ध नहीं होता। वे संस्कृत के प्रकांड पंडित थे, अतः उनकी भाषा संस्कृत से अत्यधिक प्रभावित है। कहा जाता है कि इनके परिवार के नौकर भी संस्कृत बोलते थे और इनके पिता स्वयं संस्कृत के बड़े विद्वान थे। इसी कारण, केशव ने संस्कृत के तत्सम शब्दों को ही नहीं, संस्कृत की विभक्तियों को भी अपनाया है, कहीं-कहीं तो उनके छंदों की भाषा संस्कृत ही जान पड़ती है। केशव की भाषा में बुंदेलखंडी और अवधी भाषा के शब्दों का भी प्रयोग मिलता है।

काव्य-सौंदर्य

केशव ने छंदों और अलंकारों के समावेश द्वारा अपने काव्य को सौंदर्य संपन्न बनाया है। संस्कृत साहित्य से लिए गए छंदों के साथ-साथ उन्होंने कवित्त, सवैया, दोहा आदि छंदों का भी सफलतापूर्वक उपयोग किया है। छंदमाला ग्रंथ इसका उदाहरण है। केशव की शैली प्रौढ़ और गंभीर है। उनकी शैली पर व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। केशव को अलंकारों से विशेष मोह था। उनके अनुसार -

जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सारस सुवृत्त
भूपन बिनु न बिराजई, कविता वनिता मित्त॥

अतः उनकी कविता में विभिन्न अलंकारों का प्रयोग सर्वत्र दिखाई देता है। अलंकारों के बोझ से कविता के भाव दब से गए हैं और पाठक को केवल चमत्कार हाथ लगता है।

केशवदास हिन्दी साहित्य के प्रथम ऐसे आचार्य हैं जिन्होंने भक्तिकाल में होते हुए भी भक्तिकाल से अलग परंपरा चलाई। श्यामसुंदर दास के विचार में - "यद्यपि समय-विभाग के अनुसार केशवदास भक्तिकाल में पड़ते हैं और यद्यपि गोस्वामी तुलसीदास आदि के समकालीन होने तथा रामचंद्रिका आदि ग्रंथ लिखने के कारण ये कोरे रीतिवादी नहीं कहे जा सकते, परंतु उन पर पिछले काल के संस्कृत-साहित्य का इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि वे अपने काल की काव्याधरा से पृथक होकर चमत्कारवादी कवि हो गए और हिन्दी में रीति-ग्रंथों की परंपरा के आदि आचार्य कहलाए।" (हिन्दी साहित्य : युग और प्रवृत्तियाँ, पृ. 351)

हिन्दी में सर्वप्रथम केशव ने ही काव्य के विभिन्न अंगों का शास्त्रीय पद्धति से विवेचन किया। यह ठीक है कि उनके काव्य में भाव पक्ष की अपेक्षा कला पक्ष की प्रधानता है और पांडित्य प्रदर्शन के कारण उन्हें 'कठिन काव्य का प्रेत' कह कर पुकारा जाता है। किंतु इससे उनका महत्व समाप्त नहीं हो जाता। जहाँ केशव का हृदय रमा है वहाँ उनका कवि-रूप उभरा है। आचार्य रामचंद्र

शुक्ल के शब्दों में "केशव की रचना में सूर, तुलसी आदि की सी सरलता और तन्मयता चाहे न हो, पर काव्यंगों का विस्तृत परिचय करा कर उन्होंने आगे के लिए मार्ग खोला।" केशवदास वस्तुतः एक श्रेष्ठ कवि थे। सूर और तुलसी के पश्चात हिन्दी काव्य-जगत में उन्हीं की ही गणना की जाती है - 'सूर सूर तुलसी ससी उडुगन केशवदास।'

बोध प्रश्न

- केशवदास को 'कठिन काव्य का प्रेत' क्यों कहा जाता है?
- केशवदास के काव्य की चार प्रमुख विशेषताएँ बताइए।
- केशवदास का प्रकृति-चित्रण दोषपूर्ण क्यों है?

10.3.4 अन्य रीतिबद्ध कवि

10.3.4.1 चिंतामणि (1600 ई.-1680/85 ई.)

केशव के अतिरिकत चिंतामणि को भी रीतिकाल के प्रवर्तन का श्रेय दिया जाता है क्योंकि उन्हीं के बाद हिन्दी में आचार्य कवियों की परंपरा चली। केशव से चिंतामणि के बीच ऐसी परंपरा नहीं मिलती। इसलिए रामचंद्र शुक्ल ने केशव को नहीं, बल्कि चिंतामणि को रीतिकाल का प्रवर्तक माना है। चिंतामणि का जन्म लगभग सन 1600 ई. के तथा मृत्युकाल 1680-85 के आसपास ठहरता है। ये शाहजी भोंसले, शाहजहाँ तथा दाराशिकोह के दरबार में रहे। इनके ग्रंथों की संख्या 9 हैं। इनमें से केवल ये पाँच ही उपलब्ध हैं - रसविलास, छंदविचार, शृंगारमंजरी, कविकुलकल्पतरु, कृष्णचरित। चिंतामणि का रीतिनिरूपण स्पष्ट एवं बोधगम्य है। उन्होंने संस्कृत काव्यशास्त्र का अनुकरण किया तथा साफसुथरी भाषा में काव्य लक्षणों का निरूपण किया। जैसे

सगुण अलंकार सहित, दोष रहित जो होई।
शब्द अर्थ बारौ कवित, विबुध क़हत सब कोई॥

अर्थात कविता को गुण एवं अलंकार से युक्त, दोषरहित तथा शब्द और अर्थ के सामंजस्य से युक्त होना चाहिए।

10.3.4.2 पद्माकर (1753 ई.-1833 ई.)

पद्माकर का नाम उन गिने चुने रीतिसिद्ध कवियों में शामिल है जिन्होंने कवित्व तथा आचार्यत्व दोनों का सफलतापूर्वक निर्वाह किया है। इनका जन्म सन 1753 ई. में मध्यप्रदेश के सागर में तथा निधन 1833 में कानपुर में हुआ। ये राजा तथा रईसों के आश्रय में रहे। इनके प्रमुख आश्रयदाता जयपुर के राजा जगत सिंह हैं। इनके द्वारा रचित 7 मौलिक ग्रंथ मिलते हैं। उनमें से पद्माभरण, जगद्विनोद, गंगा लहरी, प्रतापसिंह बिरुदावली, हितोपदेश भाषा प्रमुख हैं। इनके रीतिग्रंथों की विशेषता यह है कि उनमें विवेचित लक्षण सुबोध और स्पष्ट है। उदाहरण भी सरस हैं। विषय को स्पष्ट करने के लिए कहीं-कहीं ब्रजभाषा गद्य का भी सहारा लिया गया है। इन पर

पहले के आचार्यों की छाप बहुत ज्यादा दिखाई देती है। पद्माकर की कविताओं में भक्ति, शृंगार तथा राज प्रशस्ति तीनों का सफलतापूर्वक निर्वाह मिलता है। इनकी बिंब-योजना रमणीय और भावानुकूल है। कविता में अनुप्रास युक्त शब्दों के प्रयोग द्वारा आकर्षण पैदा करने में पद्माकर अद्वितीय हैं। जैसे -

गोकुल के, कुल के, गली के, गोप गाँवन के,
जौ लगि कछू को कछू भाखत भनै नहीं।
कहै पद्माकर परोस पिछवारन के,
द्वारन के दौरे गुन औगुन गनै नहीं।

10.3.4.3 मतिराम (1617 ई.- 1736 ई.)

रीतिबद्ध कवि मतिराम का जन्म सन 1617 ई. में जिला फतेहपुर (उत्तर प्रदेश) के बनपुर नामक स्थान पर हुआ। ये सम्राट जहाँगीर, बूंदी नरेश और बुंदेलखंड के श्रीनगर नरेश के आश्रय में रहे। जहाँगीर के आश्रय में रहते समय इन्होंने फूलमंजरी की रचना की थी। इन्हें गंभीर छंद विवेचन के लिए विशेष ख्याति प्राप्त है। वैसे ये मुख्यतः शृंगार निरूपक आचार्य माने जाते हैं। मिश्र बंधुओं ने इनको हिन्दी नवरत्न में स्थान दिया है। मतिराम की कविताओं में आचार्यत्व, भाव सौंदर्य एवं सरल भाषा का सुंदर समन्वय देखते ही बनता है। इनके प्रसिद्ध ग्रंथों में रसराज, ललितललाम, फूलमंजरी और वृत्तकौमुदी शामिल हैं। कवित्त और सवैया इनके प्रिय छंद हैं। उदाहरण देखें -

दोऊ आनंद सो आँगन माँझ बिराजै असाढ़ की साँझ सुही।
प्यारी के बूझत और तिया को अचानक नाम लियो रसिकी॥
आई उनै मुँह में हँसी, कोहि तिया पुनि चाप-सी भौंह चढ़ाई।
आँखिन तें गिरे आसुँन के बूंद, सुहास गये उड़ि हंस की नाई॥

10.3.4.4 देव (1673 ई.-1768 ई.)

रीतिकाल के अत्यंत यशस्वी रीतिबद्ध कवि देव का जन्म उत्तर प्रदेश के इटावा में सन 1673 ई. में हुआ। ये अपने जीवनकाल में औरंगजेब के तृतीय पुत्र आजमशाह, भवानी वैद्य, कुशल सिंह, उद्योत सिंह आदि के आश्रय में रहे। काव्य ग्रंथों की संख्या की दृष्टि से देव का नाम रीतिकालीन आचार्य कवियों में सर्वोपरि है। इन्होंने 72 ग्रंथों की रचना की जिनमें आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 25 रचनाएँ प्रामाणिक मानी हैं। भाव-विलास, प्रेम चंद्रिका, भवानी विलास, प्रेम तरंग, जाति विलास, रस विलास, सुजान विनोद, राग रत्नाकर, प्रेम पचीसी, सुख सागर तरंग आदि इनकी कृतियाँ हैं।

देव सर्वांगीण आचार्य हैं। इन्होंने भावविलास में काव्य के विविध अंगों पर प्रकाश डाला है। इसमें छह प्रकार के भावों और चौंतीस प्रकार के संचारी भावों का उल्लेख है। जाति-विलास

में भारत की विभिन्न जातियों की स्त्रियों का शृंगारिक वर्णन है। शृंगार-रस निरूपण में इन्हें विशेष सफलता मिली। उदाहरण देखें -

माखन सो तन, दूध सों जोबन, है दधि ते अधि कै उर ईठी।
जा छबि आगे छपाकर छाछ, समेत सुधा वसुधा सब सीठी॥
नैनन नेह चुबै कहि देव बुझावत बैन वियोग अंगीठी।
ऐसी रसीली अहीरी अहै, अहो क्यों न लगै मनमोहन मीठी।

10.3.4.5 भिखारीदास (1725 ई.-1760 ई.)

देव की भाँति ही भिखारीदास भी संयोग निरूपक आचार्य कवि हैं। उत्तर प्रदेश के जिला प्रतापगढ़ के ब्योंगा नामक गाँव में इनका जन्म हुआ। इनका कविता काल सन 1725 से 1760 ई. तक माना जाता है। इनके रचे 7 ग्रंथ - रस सारांश, काव्य निर्णय, शृंगार निर्णय, छंदोर्णव पिंगल, शब्दनाम कोश, विष्णुपुराण भाषा और शतरंजशतिका - मिलते हैं। अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के रीतिनिरूपक ग्रंथों को आधार बनाते हुए भी इन्होंने छंद, रस, अलंकार, रीति, गुण, दोष, शब्द शक्ति आदि विषयों का अधिक विस्तार से और मौलिक प्रतिपादन किया है। अपने ग्रंथों में विभिन्न प्रकार के काव्य दोषों की चर्चा करते समय हिन्दी कवियों की रचनाओं का उदाहरण देना तथा 71 अलंकारों का 12 मूल अलंकारों के आधार पर वर्गीकरण करना, इनकी मौलिक देन है। साहित्यिक और परिमार्जित भाषा, सीधी-सरल बिंब योजना, संस्कृत के तत्सम-तद्भव शब्दों के अतिरिक्त फारसी-अरबी शब्दों का निःसंकोच प्रयोग और भावों की सहजता ने इनके कवित्व को उच्च कोटि तक पहुँचाया है। रीतिकाल के राधा-कृष्ण के बारे में भिखारीदास की यह उक्ति सर्वविदित है -

आगे के सुकवि रीझि हैं तौ कविताई।
न तो राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है।

10.4 पाठ-सार

रीतिकाल के साहित्य की मुख्य प्रवृत्ति रीति निरूपण है। 'रीति' का अर्थ हैं वे सिद्धांत अथवा उपकरण जिनके सहारे कविता की रचना की जा सकती है। इन कवियों की तीन शैलियाँ हैं - रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त। रीतिबद्ध कवि वे हैं जिन्होंने ऐसे ग्रंथ रचे जिनमें सिद्धांत बताते हुए उसके अनुसार उदाहरण दिए गए हैं। इन ग्रंथों को 'लक्षण ग्रंथ' कहा जाता है और इन कवियों को 'आचार्य' कहकर पुकारा जाता है। इस धारा के प्रमुख कवियों में केशव, चिंतामणि, पद्माकर, देव, मतिराम, जसवंत सिंह, भिखारी दास, दूलह, भूषण, ग्वाल और प्रतापसाही आदि कवि शामिल हैं। खासतौर पर रीति काव्य के प्रवर्तन का श्रेय आचार्य केशवदास को है। इनकी रचनाओं में रसिकप्रिया, कविप्रिया और रामचंद्रिका प्रमुख हैं। रामचंद्रिका का विषय राम भक्ति है। किंतु केशव कवि पहले थे और भक्त बाद में।

अन्य रीतिबद्ध कवियों में देव का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। इन्होंने 72 ग्रंथों की रचना की, जिनमें भावविलास, प्रेमचंद्रिका, जातिविलास और रसविलास प्रमुख हैं। भावविलास में काव्य के विविध अंगों का वर्णन है और जातिविलास में विभिन्न जाति की स्त्रियों के शृंगारिक वर्णन है।

10.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं -

1. रीति निरूपण रीतिकाल की केंद्रीय प्रवृत्ति है।
2. रीतिबद्ध कवियों ने काव्यशास्त्र में वर्णित परिपाटी का उदाहरण सहित वर्णन किया है।
3. केशव रीतिबद्ध काव्यधारा के प्रवर्तक आचार्य कवि हैं।
4. देव काव्य ग्रंथों की संख्या के लिहाज से आचार्य कवियों में सर्वोपरि है।
5. इस धारा के कवियों ने राधा और कृष्ण के प्रेम का वर्णन भक्ति की अपेक्षा दैहिक शृंगार के आलंबन के रूप में किया है।

10.6 शब्दार्थ

1. अभिजात	=	कुलीन, उच्च वर्गीय
2. पिंगल	=	एक भाषा शैली
3. मुक्तक	=	स्वतंत्र छंद युक्त रचना
4. संप्रदाय	=	पंथ, धारा

10.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. रीतिबद्ध काव्यधारा के विकास पर प्रकाश डालिए।
2. रीतिबद्ध कवि के रूप में केशवदास की देन को स्पष्ट कीजिए।
3. केशवदास की काव्यागत विशेषताओं के बारे में चर्चा कीजिए।
4. प्रमुख रीतिबद्ध कवियों का परिचय दीजिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. रीतिबद्ध कवियों को कितने वर्गों में विभाजित किया जाता है? संक्षेप में प्रकाश डालें।
2. रीतिबद्ध कवि भिखारीदास पर टिप्पणी लिखिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए

1. भाषा भूषण के रचनाकार कौन हैं? ( )

(अ) केशवदास (आ) जयदेव (इ) जसवंत सिंह (ई) विश्वनाथ

2. इनमें से प्रमुख अलंकार निरूपक आचार्य कौन हैं? ( )

(अ) मतिराम (आ) केशवदास (इ) भिखारी दास (ई) देव

3. रीतिग्रंथ रचना की परंपरा के प्रवर्तक कौन हैं? ( )

(अ) चिंतामणि (आ) केशवदास (इ) भिखारी दास (ई) देव

II रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

1. रीतिग्रंथकार कवियों को .... कहने की परंपरा भी है।
2. केशवदास का सर्वाधिक प्रसिद्ध महाकाव्य .... है।
3. भावविलास के रचनाकार .... हैं।
4. रीति-ग्रंथों की परंपरा के आदि आचार्य .... हैं।

III सुमेल कीजिए

i) जयदेव	(अ) काव्यप्रकाश
ii) विश्वनाथ	(आ) चंद्रालोक
iii) मम्मट	(इ) साहित्य दर्पण

10.8 पठनीय पुस्तकें

1. रीतिकाल की भूमिका, नगेंद्र
2. हिन्दी रीति साहित्य, भगीरथ मिश्र
3. रीतिकालीन साहित्य का पुनर्मूल्यांकन, रामकुमार वर्मा
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. नगेंद्र और हरदयाल
6. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह
7. हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास, हजारी प्रसाद द्विवेदी
8. हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास, विश्वनाथ त्रिपाठी
9. हिन्दी साहित्य : संक्षिप्त इतिवृत्त, शिवकुमार मिश्र
10. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी

इकाई 11 : रीतिसिद्ध काव्य

रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 मूल पाठ : रीतिसिद्ध काव्य

11.3.1 रीतिसिद्ध काव्य का अर्थ

11.3.2 रीतिसिद्ध काव्यधारा का वैशिष्ट्य

11.3.3 प्रमुख रीतिसिद्ध कवि : बिहारी

11.4 पाठ-सार

11.5 पाठ की उपलब्धियाँ

11.6 शब्द संपदा

11.7 परीक्षार्थ प्रश्न

10.8 पठनीय पुस्तकें

11.1 प्रस्तावना

प्रिय छात्रो! आप जानते हैं कि हिन्दी साहित्य के इतिहास के रीतिकाल का समय 1650 ई. से 1850 ई. तक माना जाता है। इस काल की तीन मुख्य प्रवृत्तियाँ हैं - रीतिबद्ध काव्य, रीतिसिद्ध काव्य और रीतिमुक्त काव्य। अभी तक आपने रीतिबद्ध काव्य और उसके रचयिता, मुख्य कवियों के बारे में जानकारी प्राप्त की। इस इकाई में आप दूसरी प्रवृत्ति अर्थात रीतिसिद्ध काव्य तथा उसके प्रमुख रचनाकारों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप –

- रीतिसिद्ध काव्य का अभिप्राय जान सकेंगे।
- रीतिसिद्ध काव्य की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- हिन्दी के रीतिसिद्ध कवियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- प्रमुख रीतिसिद्ध कवि बिहारी के जीवन और व्यक्तित्व के बारे में जान सकेंगे।
- प्रमुख रीतिसिद्ध कवि बिहारी के काव्य की विशेषताओं को समझ सकेंगे तथा रीतिसिद्ध काव्य के महत्व को समझ सकेंगे।

11.3 मूल पाठ : रीतिसिद्ध काव्य

11.3.1 रीतिसिद्ध काव्य का अर्थ

रीति का शाब्दिक अर्थ है - परंपरा या नियम। उत्तर मध्यकाल में हिन्दी कविता में एक नया मोड़ आया। इसे विशेषतः तात्कालिक दरबारी संस्कृति और संस्कृत साहित्य से प्रेरणा मिली। संस्कृत साहित्यशास्त्र के कुछ अंशों ने इस कविता को शास्त्रीय अनुशासन की दिशा से प्रेरित किया। इस परिपाटी को अपनाने वाले काव्य को रीति काव्य कहा गया। ऐसी कविताओं की प्रचुरता को देखते हुए इस युग को रीतिकाल नाम दिया गया। रीति अथवा परिपाटी का पालन करने वाले काव्य की दो धाराएँ हैं। जिन कवियों ने लक्षण ग्रंथों की रचना की उन्हें रीतिबद्ध काव्यधारा तथा जिन्होंने लक्षण ग्रंथ को रचते हुए भी काव्य रचना की परिपाटी का पूरी तरह निर्वाह करते हुए काव्य सृजन किया उन्हें रीतिसिद्ध काव्यधारा के अंतर्गत रखा गया है।

बोध प्रश्न

- रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध से क्या अभिप्राय है?

11.3.2 रीतिसिद्ध काव्यधारा का वैशिष्ट्य

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार रीतिसिद्ध काव्यधारा के अंतर्गत वे कवि आते हैं जिन्होंने संस्कृत काव्यशास्त्र की परिपाटी का अनुसरण करते हुए ही रचनाएँ कीं लेकिन किसी लक्षण-ग्रंथ की रचना नहीं की। अर्थात इन कवियों ने रीति का पालन करते हुए भी काव्यांग निरूपण के उदाहरण के उद्देश्य से अपनी रचनाएँ नहीं रचीं, बल्कि इनकी रचनाएँ स्वतंत्र थीं।

आचार्य मिश्र ने इस काव्यधारा को रीतिसिद्ध कहने का आशय इस तरह स्पष्ट किया है कि इस धारा के कवियों ने रीति परंपरा सिद्ध कर ली थी। इसका अर्थ यह हुआ कि वे रीति के मर्मज्ञ थे; उसके अनुसरण को भी अपना दायित्व समझते थे, लेकिन अपनी कविताओं के अतिरिक्त अलग से इनका प्रदर्शन करना उनका ध्येय नहीं था। आचार्य मिश्र ने इस धारा के एकमात्र कवि के रूप में बिहारी (बिहारी सतसई) का उल्लेख किया है। कुछ साहित्य इतिहासकार इस धारा में सेनापति (कवित्त रत्नाकर, काव्य कल्पद्रुम) और द्विजदेव (शृंगार बत्तीसी, शृंगार लतिका) सहित कुछ अन्य कवियों को भी सम्मिलित करते हैं। इन कवियों को इस धारा में रखने के विषय में साहित्य इतिहासकारों में पर्याप्त मतभेद है, लेकिन बिहारी इस धारा के निर्विवाद कवि माने जाते हैं।

रीतिसिद्ध कवियों की यह विशेषता मानी जाती है कि इनकी रचनाओं में भावपक्ष और कलापक्ष में एक ऐसा संतुलन दिखाई देता है, जो रीतिबद्ध कवियों के यहाँ नहीं मिलता। रीतिसिद्ध कवियों का मुख्य उद्देश्य आचार्य कवियों की भाँति काव्य के तत्वों का निरूपण करना नहीं था, बल्कि उनकी प्रथम लक्ष्य भावों की सफल अभिव्यक्ति करना था। इसके अतिरिक्त इन कवियों ने शास्त्रीय परंपरा का भी पर्याप्त ध्यान रखा है। इसलिए स्वाभाविक रूप से इनकी कविताओं में भाव और पारंपरिक काव्यशास्त्रीय शिल्प का सुंदर संतुलन दिखाई देता है। उदाहरण के लिए बिहारी की रचनाओं में से एक दोहा देखा जा सकता है - “कनक-कनक ते सौ गुनी मादकता

अधिकाय।/ वा खाए बौराय जग या पाए बौराय॥" इस दोहे में यमक अलंकार का बहुत ही प्रभावी प्रयोग किया गया है। इसमें 'कनक' शब्द दो बार प्रयुक्त हुआ है। यहाँ पहले कनक का अर्थ है धतूरा और दूसरे कनक का अर्थ है सोना। इस दोहे का आशय यह है कि सोने की मादकता धतूरे से सौ गुना अधिक है। धतूरे को तो खाने के बाद लोग बौराते हैं, लेकिन सोना तो केवल प्राप्त कर लेने भर से दुनिया बौरा जाती है।

वस्तुतः रीतिसिद्ध कवियों ने लक्षण ग्रंथों की रचना न करके अपने स्वतंत्र ग्रंथों द्वारा अपनी कवि-प्रतिभा का परिचय दिया तथा स्वानुभूति के आधार पर मौलिक काव्य की रचना की। रीतिकवियों की तुलना में इन कवियों की वैयक्तिकता अपेक्षाकृत अधिक उभरी है। इन्होंने भावपक्ष और कलापक्ष दोनों को समान महत्व दिया। भावाभिव्यक्ति के लिए इन्होंने भी आलंकारिक शैली का सहारा लिया। इन कवियों ने नीति, भक्ति जैसे विषयों पर भी रचनाएँ की। इनमें बिहारी का नाम सर्वोपरि है। उनकी 'बिहारी सतसई' रीतिसिद्ध काव्य की प्रमुख रचना है। इनके अलावा रीतिसिद्ध काव्यधारा के अन्य प्रमुख कवि और उनकी रचनाएँ हैं -

भूपति : भूपति सतसई
हठीजी : श्री राधासुधा शतक
बेनी : नव रस तरंग, शृंगार भूषण
कृष्ण कवि : बिहारी सतसई की टीका
रसनिधि : रतन हजारा
सेनापति : काव्य कल्पद्रुम, कवित्त रत्नाकर

बोध प्रश्न

- रीतिसिद्ध कवियों की क्या विशेषताएँ हैं?

11.3.3 प्रमुख रीतिसिद्ध कवि : बिहारी (1595 ई.-1663 ई.)

बिहारी को रीतिकाल का सर्वश्रेष्ठ कवि माना जाता है। इनका जन्म 1595 ई. में ग्वालियर में हुआ था। इन्होंने संस्कृत-प्राकृत के काव्य ग्रंथों का अध्ययन अपने पिता के मार्गदर्शन में किया था। बाद में वृंदावन में आकार बसे पर फारसी-काव्य का भी अध्ययन किया। वहीं इनकी भेंट बादशाह शाहजहाँ से हुई। बादशाह के दरबार में रहते इनका संपर्क अन्य राजाओं से भी हुआ और उनके राज्यों से इनके लिए वृत्ति बंध गई। कहा जाता है कि एक बार जब वे जयपुर के राजा के यहाँ वृत्ति लेने के लिए पहुँचे, तो पता चला कि राजा अपनी नवविवाहिता पत्नी के मोह में डूबकर राज-काज के प्रति लापरवाह हो गए थे। इस पर उन्होंने एक दोहा लिखकर राजा के पास भेजा जिसे पढ़ने के बाद राजा कर्तव्य के प्रति सजग हो गए। वह दोहा है -

नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल।
अली कली ही सौं बिंध्यौ, आगे कौन हवाल॥

अर्थात इस समय कली का पूर्ण विकास नहीं हुआ है। तब भी, हे भ्रमर, तू कली ही से बिद्ध हो गया है, तो आगे तेरी क्या दशा होगी। यह दोहा लिखकर बिहारी ने यह सिद्ध किया है कि कविता केवल धन के लिए ही नहीं, बल्कि पथ-प्रदर्शन करने के लिए भी लिखी जा सकती है। कहा जाता है कि बिहारी के इस दोहे पर राजा इतने रीझ गए कि उन्होंने प्रत्येक दोहे की रचना के लिए बिहारी को एक-एक स्वर्ण मुद्रा देने की घोषणा कर दी। उसी अवधि में लिखे गए दोहों का संग्रह है 'बिहारी सतसई'। 'बिहारी सतसई' मुक्तक काव्य का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। यह वास्तव में सप्तशती, अमरुक शतक, गाथा सप्तशती आदि ग्रंथों की प्रेरणा से रचित काव्य है। फिर भी इसकी श्रेष्ठता अतुलनीय है। यह रचना शृंगार, भक्ति एवं नीति की त्रिवेणी का संगम है। डॉ. ग्रियर्सन के अनुसार, यूरोप में 'बिहारी सतसई' के समकक्ष कोई रचना नहीं है। 'बिहारी सतसई' में भाव और कला दोनों का सुंदर समावेश हुआ है। बिहारी संक्षिप्त एवं नपे तुले शब्दों में किसी भी वस्तु या भाव की अभिव्यंजना में सिद्धहस्त थे। उदाहरण के लिए,

तंत्रिनाद कवित्त रस, सरस राग रति रंग।
अनबूड़े बूड़े तिरे, जे बूड़े सब अंग॥

अर्थात वाद्य संगीत, कविता और रति इन तीनों का संपूर्ण आनंद उनमें पूरी तरह डूबने वाले ही पा सकते हैं।

बिहारी का ब्रजभाषा पर असाधारण अधिकार था। उन्होंने फारसी भाषा का भी गहरा अध्ययन किया था। भाषा को माँजने, चमकाने, मोड़ने और सँवारने में वे सिद्धहस्त थे। उनकी रचनाओं में ब्रजभाषा की प्रौढ़ता एवं भावसंपन्नता निखर आई है। बिहारी की प्रांजल भाषा की सरसता एवं मधुरता के प्रमाण के रूप में कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं।

कवि ने नायिका के रूप की प्रशंसा करते हुए उसकी देह को दीपशिखा के समान वर्णित किया है। कवि कहते हैं कि नायिका के अंग-अंग में जड़ित आभूषणों के प्रकाश से दिये बुझा देने पर भी घर में प्रकाश फैला रहता है -

अंग-अंग नग जगमगाति, दीप सिखा-सी देह।
दिया बुझाए हूँ रहै, बड़ो उजेरो गेह॥

बिहारी ने नायिका के नेत्रों की सुंदरता का वर्णन करते हुए कहा है कि उसके नैनों की चंचलता खंजन पक्षी की आँखों की सुंदरता को भी पराजित करती है। यथा -

रस सिंगार मंजन किये, कंजन भंजन दैन।
अंजन रंजन हू बिना, खंजन गंजन नैन॥

इसी प्रकार, नायिका की रूप-छवि का वर्णन करते हुए कवि अन्यत्र कहते हैं कि केसर उसकी बराबरी कैसे कर सकता है, चंपा की सुंदरता भी उसके समक्ष कुछ नहीं, उसके शरीर की रूप-छटा से सोना भी लज्जित हो जाता है -

केसरि कै सरि क्यों सके, चम्पक कितक अनूप।
गात रूप लखि जात दूरि, जातरूप को रूप॥

'बिहारी सतसई' में रस, भाव, नायिका भेद, ध्वनि, रीति, वक्रोक्ति आदि को आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र मानते हैं कि "बिहारी ने आचार्य कर्म से दूर रहकर जो सतसई रची उसमें रीतियाँ स्वतः ही सिद्ध होती चली गई हैं, इसलिए उन्हें रीतिसिद्ध कवि कहा जा सकता है।" मुक्तक शैली में रचित सतसई में रसात्मकता की प्रधानता है। बिहारी की कीर्ति का आधार यही एकमात्र ग्रंथ है। इस संबंध में आचार्य शुक्ल का कहना है - "यह बात साहित्य क्षेत्र के इस तथ्य की स्पष्ट घोषणा कर रही है कि किसी कवि या उसकी रचनाओं के परिणाम से नहीं होता, गुण के हिसाब से होता है।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.136)। मुक्तक काव्य के कवि में कल्पना की समाहार शक्ति और भाषा की समास-शक्ति का होना अनिवार्य होता है। मुक्तक का यह गुण अपने भव्य रूप में बिहारी में विद्यमान है। उनका प्रत्येक दोहा एक उज्ज्वल रत्न है। यथा -

कहत, नटत, रीझत, खीझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन में करत हैं, नयनन हीं सों बात॥

बिहारी ने गागर में सागर भर दिया है। इसीलिए कहा जाता है कि

सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगैं, घाव करैं गंभीर॥

'बिहारी सतसई' में प्रकृति और नारी सौंदर्य के विभिन्न रूप मिलते हैं। प्रेम, विरह, भक्तिभाव, दर्शन आदि का प्रतिपादन भी इसमें मिलता है। सौंदर्य और प्रेम के निरूपण में बिहारी को अद्वितीय सफलता मिली। किंतु वियोग वर्णन में अनेक स्थलों पर बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन (ऊहा) करने के कारण ज्यादती भी हो गई। ऐसे वर्णन प्रायः अस्वाभाविक और हास्यास्पद प्रतीत होते हैं। उदाहरणार्थ, एक दोहे के अनुसार, विरह-दुख के कारण नायिका इतनी दुबली हो गई है कि साँस लेने और छोड़ने के साथ-साथ छह-सात हाथ इधर से उधर चली जाती है - ऐसा लगता है मानो वह झूले पर झूल रही हो। इसी प्रकार अन्यत्र कहते हैं कि विरह-वेदना के कारण नायिका के शरीर से ऐसी लपटें उठ रही हैं कि सखियाँ जाड़े में भी गीले कपड़े लपेटकर बड़ी कठिनाई से उसके पास जा पाती हैं -

इत आवत चलि जात उत, चली छ-सातक हाथ।

चढ़ी हिंडोरे सी रहै, लगी उसासन साथ।

आड़े दै आले बसन, जाड़े हूँ की राति।

साहसु ककै सनेह बस, सखी सबै ढिग जाति॥

पर ऐसे उदाहरण 'बिहारी सतसई' में अधिक नहीं हैं। राजनीति, दर्शन, नीति आदि के विचारों का भी प्रतिपादन बिहारी ने प्रभावशाली रूप में किया है। जैसे - इसी प्रकार भक्ति की व्यंजना भी उन्होंने की है तथा राधा और कृष्ण के जीवन के शृंगारी चित्र उतारे हैं। यथा -

राधा की वंदना

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरी सोय।

जा तन की झाँई परै, श्याम हरित दुति होय॥

कृष्ण के समक्ष आत्मनिवेदन

करौं कुबत जग कुटिलता, तजौं न दीनदयाल।

दुखी होहुगे सरल चित, बसत त्रिभंगी लाल॥

'बिहारी सतसई' में केवल दो छंदों का प्रयोग मिलता है - दोहा तथा सोरठा। इनकी भाषा लोकप्रचलित ब्रजभाषा का साहित्यिक रूप है। इसके अलावा बुंदेली और पूर्वी भाषा का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। इनका शब्द-गठन और वाक्य-विन्यास इतना सुव्यवस्थित है कि एक शब्द भी इधर से उधर नहीं किया जा सकता। मुहावरे व लोकोक्तियों के प्रयोग में भी वे सिद्धहस्त हैं। यमक, अनुप्रास, वीप्सा आदि शब्दालंकार बिहारी को बहुत प्रिय हैं। उल्लेखनीय है कि रीतिकाल में तीन संप्रदाय प्रचलित थे - अलंकार, रस और ध्वनि। इनमें बिहारी ध्वनिवादी कवि हैं। आचार्य शुक्ल के शब्दों में बिहारी के दोहे में अलंकार और रस हाथी-दाँत पर खुदे बेल-बूटों के समान सबको आकर्षित करने वाले नाजुक रूप में प्रयोग हुए हैं। (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.139)। हिन्दी के कुछ विद्वानों ने बिहारी को रीतिसिद्ध आचार्य-कवि सिद्ध करने का भी प्रयास किया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि बिहारी ने नायिका-भेद को समझकर सतसई की रचना की थी, लेकिन उनकी सतसई नायक-नायिका-भेद का ग्रंथ नहीं है। नायिका या अलंकार, रस, ध्वनि आदि का वर्णन तो सभी रीतिमुक्त कवियों तक में भी उपलब्ध होता है। उदाहरण के लिए घनानंद और आलम जैसे रीतिमुक्त कवियों में ये तत्व पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं, लेकिन इतने भर से उन्हें आचार्य कवि या रीतिबद्ध नहीं माना जा सकता। अतः सतसई में भक्ति, नीति और सूक्तियों में लक्षण-परंपरा को खोजना व्यर्थ है। वे रीतिसिद्ध कवि ही हैं।

बोध प्रश्न

- 'बिहारी सतसई' कैसी रचना है?
- मुक्तक काव्य की क्या विशेषताएँ हैं?

- रीतिकाल में कितने संप्रदाय प्रचलित थे?

बिहारी की भाषा

बिहारी ने अपने काव्य की रचना ब्रज भाषा में की है। उनसे पहले काव्य-भाषा के रूप में ब्रज भाषा भक्ति काल के कृष्ण भक्त कवियों में विशेषकर सूरदास और नंददास के काव्य में साहित्यिक परिष्कार और संगीतात्मकता की शक्ति पा चुकी थी। उस काल में काव्य-भाषा के रूप में ब्रज भाषा का प्रसार इतना अधिक हो चुका था कि वह समूचे मध्य देश की भाषा बन गई थी। उसे अपने दोहों में अपनाकर बिहारी ने रीतिकालीन अलंकरण तथा चमत्कारपरक भंगिमाओं में अच्छी तरह ढाल दिया। उन्होंने शब्द चयन की सतर्कता के साथ उसकी अनगढ़ता को तराशकर नया रूप प्रदान किया। उनका पूरा बल शब्दों की तराश पर केंद्रित रहा। यह तराश दो रूपों में देखी जा सकती हैं - (1) शब्दों का अनुकूलन करके - जैसे, परछाई की जगह 'झांई' का विशेष रूप से प्रयोग, जा तन की झांई परै स्याम हरित दुति होय। (2) कुछ शब्दों में प्रत्यय लगाकर - जैसे, सतरौहैं या सवाडिल जैसे विशेषण। कहना न होगा कि बिहारी ने इन शब्दों को नया संस्कार दिया। "ध्वन्यात्मक्ता और व्याकरणिक दोनों स्तरों पर कवि की यह भाषिक तराश रीतिकालीन मनोवृत्ति और मुगलकालीन कला की बारीक-पसंदी के समानांतर चलती है। इस संदर्भ में बिहारी को रीतिकालीन काव्य-भाषा का प्रतिनिधि कहा जा सकता है।" (डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, मध्यकालीन हिन्दी भाषा, पृ. 130)।

उल्लेखनीय है कि बिहारी के यहाँ काव्य-भाषा और ब्रज संस्कृति का अविछिन्न संबंध दृष्टिगत होता है। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि उनके काव्य भावों, चित्रों, वर्णनों आदि में ब्रज संस्कृति के शृंगारिक चित्र मूर्त रूप में प्रस्तुत हों। राधा-कृष्ण की भक्ति और शृंगार मिश्रित परंपरा बिहारी को संस्कार रूप में मिली थी। यों उनकी ब्रज भाषा में एक ओर तो भीतर से शास्त्रीयता है तथा दूसरी ओर ब्रजभूमि की मुक्त जीवन पद्धति का चटक रंग दिखाई देता है। इतना ही नहीं, ब्रज भाषा के स्थानीय प्रयोग करके बिहारी ने अपने दोहों में अभिव्यक्ति का पैनापन भर दिया है। इससे साहित्यिक ब्रज भाषा की विश्वसनीयता को भी लोकग्राह्य आधार मिल सका है। उनके दोहों में यह भी देखने वाली चीज है कि छोटे और निर्विकार दिखाई पड़ने वाले अव्यय शब्द पूरे वाक्य के अर्थ को कैसे विकसित करते हैं।

इसमें संदेह नहीं कि बिहारी ने ब्रज भाषा की अभिव्यंजना शक्ति को नई ऊँचाई प्रदान की। उन्होंने भाषा की लाक्षणिक वक्रता और माधुर्य व्यंजना को बढ़ाने के लिए भाषा में लोकोक्ति और मुहावरों का सजीव तथा सार्थक प्रयोग किया। जैसे - सूधो पांव न धरि परत सोभा ही के भार। ××× मूड़ चढ़ाएंऊ रहै परयो पीठि कच भार। ××× परत गांठ बुरजन हिये दिई नई यह रीति।

ब्रज भाषा की सर्जनात्मक शक्ति के विस्तार में बिहारी के योगदान के बारे में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का यह कथन अत्यंत सटीक है कि "बिहारी का भाषा पर सच्चा अधिकार था। उनके बाद भाषा पर अच्छा अधिकार रखने वाले मतिराम, पद्माकर आदि कुछ ही प्रवीन कवि हुए। आधुनिक युग में रत्नाकर का भी वैसा ही अधिकार था। घनानंद और दो एक के अतिरिक्त

भाषा की दृष्टि से बिहारी की समता करने वाला, भाषा पर वैसा अधिकार रखने वाला कोई मुक्तक रचनाकार नहीं दिखाई देता।" (बिहारी की वाग्विभूति, पृ. 149)।

बोध प्रश्न

- बिहारी ने भाषा की लाक्षणिक वक्रता और माधुर्य व्यंजना को बढ़ाने के लिए क्या किया?
- किस विद्वान ने बिहारी को 'रीतिकालीन काव्य-भाषा का प्रतिनिधि' कहा?

बिहारी के दोहों में काव्य बिंब

बिहारी के दोहों में चमत्कारपूर्ण बिंब योजना का विशेष महत्व है। उनकी बिंब योजना में व्यक्ति, परिवेश और संदर्भ आकार ग्रहण करते हैं। आप जानते ही हैं कि बिंब के लिए चित्र-भाषा की आवश्यकता होती है। अर्थात ऐसी भाषा जो बोलती हो। बिंब का प्रधान कार्य है एक कल्पित सादृश्य विधान द्वारा वस्तु और काव्यगत अर्थ को जोड़ना। काव्य का काम है कल्पना में बिंब या मूर्त भावना उपस्थित करना। अर्थात बिंब कल्पना का विषय है जिसका बोध होना चाहिए। इसीलिए ऐंद्रियता बिंब की कसौटी है। बिहारी के काव्य-बिंब इस कसौटी पर खरे उतरते हैं। उन्होंने सच्ची और गहरी अनुभूतियों को भाव चित्रों में कल्पना शक्ति से रूपायित किया है। स्मृति बिंब का एक उदाहरण देखें -

नासा मोरि नचाय दृग, करी कका की सौंह।
कांटे सी कसकति हिए, अजौ कटीली भौंह॥

कवि ने यहाँ यह दर्शाया है कि नायक से नाक मोड़कर, आँखें नचाकर नायिका ने पिता की कसम खाई और चली गई। उसकी कटीली भौंह नायक के हृदय में कांटे सी कसकती रह गई। नर नारी शृंगार के ऐसे आदिम-बिंबों की बिहारी की कविता में भरमार है। इसी आदिमता के प्रभाव से राधा (नारी) का ध्यान करते ही कृष्ण (नर) का चित्त हरा भरा हो जाता है - "जा तन की झांई परे स्याम हरित दुति होय।"

आलोचकों का मानना है कि बिहारी की काव्य-भाषा पर विचार करते समय यह भी ध्यान रखना होगा कि उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति के लिए मुक्तक रूप में दोहे को चुना है। यह दोहा उर्दू कविता के शेर से तुलनीय है। रीतिकाल में दोहों और शेरों का मुक्तक रूप दरबारी काव्य परंपरा से जुड़ा हुआ है। इसलिए बिहारी की भाषा में जगह-जगह समास शैली का वैभव दिखाई देता है -

संगति दोष लगै सबन, कहेति सांचे बैन।
कुटिल बंक-भाव संग बहे कुटिल, बंक-गति नैन॥

बिहारी की इस समास शैली की विशेषता को रेखांकित करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि "बिहारी की भाषा चलती होने पर भी व्यवस्थित है। वाक्य रचना व्यवस्थित है और शब्दों के रूपों का व्यवहार एक निश्चित प्रणाली पर है। यह बात बहुत कम कवियों में पाई जाती है। भूषण और देव ने शब्दों का बहुत अंग भंग किया है और कहीं-कहीं गढ़ंत शब्दों का

व्यवहार किया है। बिहारी की भाषा इस दोष से भी बहुत कुछ युक्त है। दो एक स्थल पर ही 'समर' के लिए 'स्मर', 'ककै' ऐसे कुछ विकृत रूप मिलेंगे।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 173)।

बोध प्रश्न

- बिंब का प्रधान कार्य क्या है?
- बिंब की कसौटी क्या है?
- बिहारी ने अभिव्यक्ति के लिए किस रूप को चुना?

बिहारी के काव्य में अलंकार

बिहारी रीतिसिद्ध कवि हैं और रीतिकाव्य की एक मूलभूत विशेषता अलंकारों की प्रयुक्ति है। इसलिए बिहारी के काव्य में अलंकारों का प्रयोग भी विशेष रूप से ध्यान खींचता है। इसमें संदेह नहीं कि कुछ स्थलों पर उन्होंने केवल चमत्कार उत्पन्न करने के लिए अलंकार का प्रयोग किया है। इसके लिए विभिन्न इतिहासकारों और आलोचकों ने उनकी खूब खिंचाई भी की है। इसके बावजूद इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि आम तौर पर उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा से लेकर विरोधाभास और अन्योक्ति तक अत्यंत समर्थ अलंकार विधान में बिहारी अतुलनीय है। बिहारी यमक, श्लेष आदि शब्दालंकारों के प्रयोग में बड़े सिद्धहस्त हैं। उदाहरण के रूप में यमक अलंकार का यह प्रयोग द्रष्टव्य है -

बरजीते सर मैन के, ऐसे देखे मैं न।
हरिनी के नैनान तें हरिनी के ये नैन॥

आलोचकों का मानना है कि शब्द-श्लेष बिहारी का प्रिय अलंकार है। शब्द के दो या दो से अधिक (सहज ही) अर्थ जहाँ निकलते हैं वहाँ शब्द-श्लेष अलंकार होता है। शब्द-श्लेष अलंकार में प्रयुक्त शब्द का पर्याय रखते ही उसका चमत्कार मर जाता है। जैसे-

लग्यो सुमन है है सुफल आतय ओप निवारि।
बारी-बारी अपनी सींची सुहृदयता बारी॥

सुमन शब्द का प्रयोग सुंदर मन वाली तथा पुष्प दोनों अर्थों में हुआ है। पर यदि सुमन की जगह पुष्प शब्द रख दें तो पूरे दोहे का चमत्कार नष्ट हो जाता है।

बिहारी में अलंकारों का चमत्कार बहुत ज्यादा है। अनुप्रास और यमक के चमत्कार वाला एक दोहा देखें -

रनित भृंग घंटावली, झरित दान मधुनीर।
मंद-मंद आवत चल्यो, कुंजर-कुंज समीर॥

यहाँ शब्द झंकृति ने ध्वनि का विस्तार किया है। गले में घंटा बाँधे हाथी की मस्तानी चाल से आने और कुंज समीर के बहने में एक मोहक अर्थ झंकार है। यहाँ अलंकार ने केवल वसंत वर्णन के भाव विस्तार की ही वृद्धि नहीं की है बल्कि बिंब के माध्यम से अनुभव को मूर्त कर दिया है। आलंकारिक चमत्कार प्रकृत प्रसंग में भाव-सौंदर्य का उत्कर्ष करता है। इसी प्रकार -

अधर धरत हरि कै परत ओठ-डीठि पट जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी इन्द्र-धनुष रँग होति॥

इस दोहे में तद्गुण अलंकार है। किंतु बिहारी ने रंगों का ऐसा कुशल मेल किया है कि चमत्कार सुंदरता में बदल गया है। तद्गुण अलंकार वहाँ होता है जहाँ एक वस्तु प्रधान होती है और दूसरी गौण। गौण वस्तु प्रधान वस्तु का गुण ग्रहण कर लेती है और अपना खो देती है। पर यहाँ बांसुरी ओठ, दृष्टि और पट के रंगों को ग्रहण करने पर भी अपना रंग खोती नहीं है। चार रंगों में सात रंगों के इंद्रधनुष की छबि निखर उठती है। कुल मिलाकर शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों में बिहारी की अद्भुत गति है।

विशेष रूप से अन्योक्ति अलंकार के बेहद चमत्कारी प्रभाव के लिए बिहारी को विशेष यश प्राप्त हुआ है। अपने आश्रयदाता को कर्तव्यबोध कराने के लिए अलग-अलग अवसरों पर रचे गए उनके निम्नलिखित दो दोहों के अन्योक्ति की छटा देखते ही बनती है-

नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल।
अली कली ही सौं बिंध्यौ, आगे कौन हवाल॥

×××

स्वारथु सुकृतु न, श्रमु वृथा, देखि विहंग विचारि।
बाज पराये पानि परि तू पच्छिनु न मारि।।

बोध प्रश्न

- शब्द-श्लेष अलंकार किसे कहते हैं?
- तद्गुण अलंकार किसे कहते हैं?
- बिहारी ने अपने आश्रयदाता को कर्तव्यबोध कैसे कराया?

11.4 पाठ-सार

रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियों में स्पष्ट रूप में विभाजक-रेखा खींची जा सकती है, क्योंकि दोनों के उद्देश्यों में मौलिक अंतर है। जो कविता रीति के बंधनों में बंध कर चली है अर्थात काव्यांगों - रस, अलंकार, शब्द-शक्ति, युग, दोष आदि - के लक्षण उदाहरणों को प्रस्तुत करती चली है, उसे रीतिबद्ध काव्य कहा जाता है। इसके विपरीत, रीतिसिद्ध कवियों ने लक्षण ग्रंथ न लिखकर लक्ष्य ग्रंथ लिखे हैं। लक्ष्य ग्रंथ से अभिप्राय है कि इन्होंने संस्कृत के काव्यशास्त्रों के अनुसार रीति (परिपाटी) का प्रतिपादन नहीं किया, बल्कि उनके आधार पर ऐसी रचनाएँ की जिनमें परिपाटी का पूरा निर्वाह दिखाई देता है। इनके काव्य का उद्देश्य केवल अलंकारों, नायक-नायिका भेद का विवेचन करना नहीं था, अपितु अन्य विशेषताओं का उल्लेख करना भी था। 'बिहारी सतसई' इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है जिसमें शृंगार, नीति, भक्ति, ज्ञान, आध्यात्मिकता, सूक्तिपरकता

सबका सम्मिश्रण है। जीवन के प्रति यथार्थवादी भौतिक दृष्टिकोण ने सतसई को विशेष लोकप्रिय बना दिया है।

11.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित महत्वपूर्ण बिंदु निष्कर्ष के रूप में प्राप्त हुए हैं -

1. रीतिसिद्ध कवि वे हैं जिन्होंने काव्यशास्त्र की परिपाटी का पूरी तरह पालन किया है। लेकिन किसी लक्षण ग्रंथ की रचना नहीं की।
2. रीतिसिद्ध रचनाओं में भावपक्ष और कलापक्ष का जो अद्भुत संतुलन मिलता है वह रीतिसिद्ध कवियों में नहीं मिलता।
3. बिहारी को प्रमुख रीतिसिद्ध कवि माना जाता है।
4. बिहारी कम शब्दों में अधिक गहरी बात कहने में अपना सानी नहीं रखते।
5. इस धारा के अन्य कवियों में भूपति, हठीजी, बेनी कृष्ण कवि, रसनिधि और सेनापति के नाम शामिल हैं।

11.6 शब्द संपदा

1. परिपाटी	=	प्रथा, ढंग, शैली
2. यथार्थ	=	वास्तविक
3. यथार्थवादी	=	यथार्थ या वास्तविकता में आस्था रखने वाला व्यक्ति
4. वृत्ति	=	किसी के भरण-पोषण के लिए दिया जाने वाला धन
5. वैयक्तिकता	=	व्यक्ति विशेषता
6. स्वानुभूति	=	अपना अनुभव

11.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. रीतिसिद्ध काव्यधारा के वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालिए।

2. बिहारी की काव्य कुशलता को स्पष्ट कीजिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. 'बिहारी सतसई' की काव्य शैली क्या है? उस शैली की विशेषताएँ बताइए।

2. 'बिहारी सतसई' के बारे में अपने विचार प्रकट कीजिए।

3. रीतिसिद्ध काव्य का अर्थ स्पष्ट कीजिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए

1. 'कनक-कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकाय' में किस अलंकार का प्रयोग है? ( )
   (अ) अतिशयोक्ति (आ) यमक (इ) रूपक (ई) उपमा
2. 'काव्य कल्पद्रुम' के रचनाकार कौन हैं? ( )
   (अ) बिहारी (आ) सेनापति (इ) ग्वाल कवि (ई) मतिराम
3. बिहारी .... कवि हैं। ( )
   (अ) अलंकारवादी (आ) रसवादी (इ) ध्वनिवादी (ई) वक्रोक्तिवादी

II रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

1. .... मुक्तक काव्य का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।
2. बिहारी का जन्म .... ई. में हुआ था।
3. रीतिसिद्ध कवियों ने भावाभिव्यक्ति के लिए .... शैली का सहारा लिया।
4. बिहारी का प्रिय अलंकार .... है।

III सुमेल कीजिए

i) ग्वाल कवि	(अ) नव रस तरंग
ii) बेनी	(आ) शृंगार बत्तीसी
iii) द्विजदेव	(इ) कविहृदय विनोद

11.8 पठनीय पुस्तकें

1. रीतिकाल की भूमिका, नगेंद्र
2. हिन्दी रीति साहित्य, भगीरथ मिश्र
3. रीतिकालीन साहित्य का पुनर्मूल्यांकन, रामकुमार वर्मा
4. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. नगेंद्र और हरदयाल
6. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह
7. हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास, हजारी प्रसाद द्विवेदी
8. हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास, विश्वनाथ त्रिपाठी
9. हिन्दी साहित्य : संक्षिप्त इतिवृत्त, शिवकुमार मिश्र
10. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी

इकाई 12 : रीतिमुक्त काव्य

रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 मूल पाठ : रीतिमुक्त काव्य

12.3.1 रीतिमुक्त काव्यधारा : अर्थ और स्वरूप

12.3.2 रीतिमुक्त कवि और उनकी देन

12.3.2.1 घनानंद

12.3.2.2 ठाकुर

12.3.2.3 आलम

12.3.2.4 बोधा

12.3.3 रीतिकाल की अन्य काव्यधाराएँ

12.3.3.1 प्रशस्ति या वीर काव्य

12.3.3.2 नीतिकाव्य

12.3.3.3 भक्तिकाव्य

12.4 पाठ-सार

12.5 पाठ की उपलब्धियाँ

12.6 शब्द संपदा

12.7 परीक्षार्थ प्रश्न

12.8 पठनीय पुस्तकें

12.1 प्रस्तावना

प्रिय छात्रो! अभी तक आप रीतिकाल की दो मुख्य प्रवृत्तियों रीतिबद्ध काव्य और रीतिसिद्ध काव्य के बारे में जान चुके हैं। रीतिकाल की तीसरी प्रमुख काव्यधारा है रीतिमुक्त अथवा स्वच्छंद काव्यधारा। घनानंद, आलम और बोधा इस काव्यधारा के मुख्य कवि हैं। प्रस्तुत इकाई इसी काव्यधारा पर केंद्रित है।

12.2 उद्देश्य

छात्रो! इस इकाई का अध्ययन करके आप –

- रीतिमुक्त काव्यधारा के अर्थ को समझ सकेंगे।
- रीतिमुक्त काव्यधारा के स्वरूप की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख कवियों के योगदान से अवगत हो सकेंगे।
- घनानंद, आलम और बोधा के रीतिमुक्त काव्य का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- रीतिकाल की 'रीति' से अलग प्रवृत्तियों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

12.3 मूल पाठ : रीतिमुक्त काव्य

12.3.1 रीतिमुक्त काव्यधारा : अर्थ और स्वरूप

उत्तर मध्यकाल में अथवा रीतिकाल में जब रीति अर्थात काव्यशास्त्रीय परिपाटी का अनुसरण करते हुए बड़ी मात्रा में कविताएँ रची जा रही थीं, उसी दौर में कुछ कवियों ने रीति के अनुकरण की बाध्यता से अपने आपको मुक्त रखा और अपनी कविताओं का उद्देश्य उसके भावपक्ष की सफलता को ही माना। इन कवियों को रीतिमुक्त अथवा स्वच्छंद काव्यधारा के अंतर्गत रखा जाता है।

रीतिमुक्त कवियों ने भावों की सफल अभिव्यक्ति को अपना लक्ष्य बनाया तथा शास्त्र के अनुरूप रचना के बंधन से परे रहे। यदि सहज अभिव्यक्ति के मार्ग में उन्हें काव्य कला के बने-बनाए मानक बाधा प्रतीत हुए, तो उन्हें त्याग करने में भी हिचक नहीं हुई। रीतिमुक्त काव्यधारा के कवियों ने कविता के विषय में रीति निर्वाह के पूर्वाग्रह को खंडित करते हुए यह स्थापित किया कि कविता मूलतः शास्त्रीय कर्म नहीं है, बल्कि उसका संबंध भाव और संवेदना से अधिक है।

इस धारा के प्रमुख कवियों में आलम (आलमकेलि), ठाकुर (ठाकुरशतक, ठाकुर ठसक), घनानंद (सुजानसार, विरहलीला, रसकेलिवल्ली), बोधा (विरहवारीश, इश्कनामा) आदि के नाम लिए जाते हैं। इस धारा के कवियों में घनानंद सर्वाधिक सजग और सचेत कवि माने जाते हैं। उनकी घोषणा है कि 'लोग तो लागि कवित्त बनावत, मोहिं तौ मेरे कवित्त बनावत।' अर्थात लोग कवित्तों की रचना करते हैं लेकिन मुझे तो मेरे कवित्तों ने रचा है। इसका अर्थ है कि उनकी दृष्टि में सायास कविता रचना का कोई महत्व नहीं था।

इसी तरह इस धारा के एक अन्य कवि ठाकुर ने एक पंक्ति में कविता को बनावट भर और सभा में सुनाकर वाहवाही लूटने का विषय समझने पर तीखा व्यंग्य करते हुए लिखा है कि ऐसे लोगों ने कविता को खेल समझ रखा है - 'ढेले सो बनाय आय मेलत सभा के बीच/ लोगन कवित्त कीन्हीं खेल करि जान्यो है।' अर्थात रीतिमुक्त कवियों के लिए कविता की रचना कलात्मकता या खिलवाड़ नहीं, बल्कि योजनाओं की सहज सफल अभिव्यक्ति है।

भावपक्ष पर केंद्रित होने के कारण रीतिमुक्त कवियों को इस बात का अधिक अवसर मिला कि वे कविताओं में मानवता और जीवन के कोमल पक्षों के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त कर सकें। इसीलिए इन कवियों की रचनाओं में एक तरह की उदात्तता दिखाई पड़ती है। यह उदात्तता भी

मानवीय है, इसे अलौकिक नहीं कहा जा सकता। इस धारा के कवियों ने रीतिसिद्ध और रीतिबद्ध कवियों की तरह स्त्री-देह का वस्तुकरण नहीं किया, लेकिन इन्होंने प्रेम में देह-पक्ष का निषेध भी नहीं किया है। इसी प्रवृत्ति के कारण इनकी कविताओं में स्त्री केवल उपभोग की वस्तु या देह बनकर नहीं रह जाती है, बल्कि अपनी संपूर्ण गरिमा के साथ उपस्थित होती है।

इन कवियों में प्रेम और अन्य मानवीय मूल्यों के प्रति अनन्य निष्ठा दिखाई देती है। उदाहरण के लिए, घनानंद कहते हैं कि प्रेम का मार्ग बहुत ही सीधा है जिस पर केवल सच्चे लोग अपना अहंकार त्याग कर चलते हैं, लेकिन इस मार्ग पर कपटी और शंकालु लोगों को चलने में बहुत ही झिझक होती है-

अति सूधो सनेह को मारम है, जहाँ नेकु सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपनपौ झिझकैं कपटी जे निसाँक नहीं॥

रीति परंपरा के शास्त्रीय बंधनों से मुक्त अर्थात स्वच्छंद काव्य के रूप में उपलब्ध रीतिमुक्त काव्य की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

1. रीतिमुक्त काव्य में हृदय के भावावेगों को मुक्त भाव से अथवा स्वच्छंद रूप से प्रकट करने की प्रवृत्ति सबसे प्रमुख है। अर्थात यह काव्य भावावेग प्रधान है।
2. इसमें प्रेम की अनुभूति को प्रकट करने के लिए रीतिबद्ध और रीतिसिद्ध कवियों की तरह नायक-नायिका का बहाना नहीं लिया गया है। यह प्रायः आत्माभिव्यक्ति के रूप में है।
3. इसमें ऐंद्रीय वासना से भरे प्रेम का नहीं वरन उदात्त प्रेम का चित्रण मिलता है। यहाँ प्रेमी वियोग की व्यथा सहकर भी प्रिय की कुशलता की कामना करता है। उत्तेजक नखशिख वर्णन अपेक्षाकृत कम है।
4. संयोग की तुलना में यह काव्य वियोग शृंगार प्रधान है। प्रेमपात्र के प्रति प्रेमी का समर्पण प्रायः अध्यात्म की कोटी का प्रतीत होता है।
5. इस काल में सहज भाषा विशेष आकर्षक बन पड़ी है। रीतिबद्ध काव्य में भाषा ने अलंकारों एवं चमत्कारों के प्रदर्शन में जकड़कर अपनी सहजता को खो दिया था। रीतिमुक्त काव्य में लोकोक्तियों व मुहावरों के खुले प्रयोग से काव्य भाषा सजीव हो उठी है।
6. रीतिमुक्त काव्य में अलंकारों का प्रयत्नपूर्वक प्रयोग करने की प्रवृत्ति नहीं दिखाई देती है।
7. यह काव्यधारा कुछ सीमा तक फारसी की काव्य-प्रवृत्तियों से भी प्रभावित है।

बोध प्रश्न

- रीतिमुक्त काव्य की तीन विशेषताएँ बताइए।

12.3.2 रीतिमुक्त कवि और उनकी देन

12.3.2.1 घनानंद (1707 ई. - 1760 ई.)

घनानंद रीतिकाल की रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं। इन्हें मुक्तक काव्य के रचनाकारों का सिरमौर माना जाता है। इनका जन्म सन 1707 ई. और निधन सन 1760 ई. में हुआ था। इनका जन्मस्थान दिल्ली है। ये दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह रंगीले के मीर मुंशी थे।

वे दरबार की एक नर्तकी सुजान के प्रति बेहद आसक्त थे। कहा जाता है कि एक बार इन्होंने बादशाह के कहने पर गाने से मना कर दिया। किंतु सुजान के कहने पर बादशाह की ओर पीठ करके गाने लगे। इस कारण बादशाह रुष्ट हो गया और उसने घनानंद को राज्य से निर्वासित कर दिया। निर्वासित किए जाने पर ये वृंदावन चले गए और वैराग्य जीवन बिताने लगे। सुजान को भूल पाना उनके लिए असंभव था। अतः उन्होंने सुजान को अपने आराध्य कृष्ण पर आरोपित कर दिया तथा कृष्ण को सुजान कहकर ही संबोधित किया।

उल्लेखनीय है कि इस विषय पर सभी विद्वान एकमत नहीं हैं कि घनानंद की मूल कितनी रचनाएँ हैं। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अपनी खोजबीन एवं प्रयास के बाद इनकी कृतियों की प्रामाणिकता को ध्यान में रखते हुए घनानंद ग्रंथावली का संपादन किया है, जिसमें घनानंद की निम्नलिखित 39 कृतियाँ संकलित हैं -

1. सुजानहित
2. कृपाकंट
3. वियोगबेलि
4. इश्क लता
5. यमुना यश
6. प्रीति पावस
7. प्रेम पत्रिका
8. प्रेम सरोवर
9. ब्रज विलास
10. सरस वसंत
11. अनुभव चंद्रिका
12. रंग बधाई
13. प्रेम पद्धति
14. वृषभानुपूर सुषमा वर्णन
15. गोकुल गीत
16. नाम माधुरी
17. गिरिपूजन
18. विचार सार
19. दान घटा
20. भावना प्रकाश
21. कृष्ण कौमुदी
22. धाम चमत्कार
23. प्रिय प्रसाद
24. वृंदावन मुद्रा
25. ब्रज स्वरूप
26. गोकुल चरित्र
27. प्रेम पहेली
28. रसना यश
29. गोकुल विनोद
30. ब्रज प्रसाद
31. मुरलिका मोद
32. मनोरथ मंजरी
33. छंदास्टक
34. त्रिभंगी
35. परमहंस वंशावली
36. ब्रज व्यवहार
37. गिरिगाथा
38. पदावली
39. प्रकीर्ण (स्फुट)

घनानंद का इतना विशाल साहित्य सृजन उपलब्ध कैसे हो पाया इसके पीछे भी इतिहास छिपा हुआ है। सर्वप्रथम घनानंद की विलुप्त, बिखरी हुई रचनाओं का उद्धार भारतेंदु हरिश्चंद्र ने किया। उन्होंने घनानंद की कुछ रचनाओं का प्रकाशन 'सुंदरी तिलक' नाम से किया। इसके बाद सन 1870 ई. में 'सुजान शतक' नाम से 119 कवित्त सामने आए। 1897 ई. में जगन्नाथदास रत्नाकर ने 'सुजान सागर' निकाला। सन 1907 में काशी प्रसाद जायसवाल ने 'वियोग बेलि',

'विरह लीला' का प्रकाशन किया। इसी क्रम में 'घनानंद रत्नावली' का प्रयाग से प्रकाशन हुआ। 1943 में शंभुप्रसाद बहुगुणा ने 'घनआनंद' नाम से पुस्तक प्रकाशित की। किंतु इन रचनाओं का कठोर श्रम साधना के बाद वैज्ञानिक दृष्टि से आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने संपादन किया। इनका पहला संग्रह 'घनानंद कवित्त' (505 पद्य) नाम से आया। इनका दूसरा संग्रह 'सुजानहित प्रबंध' (701 कवित्त, सवैया छंदों का) आया। अंततः मिश्र जी ने 'घनआनंद ग्रंथावली' को 1952 में संपूर्ण रूप से प्रस्तुत किया। इसमें प्रेम सरोवर, प्रेम पहेली, ब्रज वर्णन तथा सुजानहित को समाहित किया गया। अब इस ग्रंथावली में 1068 पद हैं। इधर वृंदावन मुद्रा, प्रेम पत्रिका तथा प्रकीर्ण और आए हैं। अन्य रचनाओं के लिए अनुसंधान कार्य जारी है। काव्य छंद 4108 तक उपलब्ध हो गए हैं।

उल्लेखनीय है कि इन 39 ग्रंथों में से सुजानहित, वियोग बेलि, इश्क लता, प्रेम पत्रिका, दानघटा तथा वृषभानुपूर सुषमा प्रमुख हैं। इनकी रचनाओं में भावात्मकता, वक्रता, लाक्षणिकता, रहस्यात्मकता, भावों की वैयक्तिकता तथा स्वच्छंदता आदि गुण मिलते हैं। घनानंद की रचनाओं को दे भागों में बाँटा जा सकता है। पहले भाग में इनकी प्रेम निरूपण से संबंधित रचनाएँ हैं जो प्रायः कवित्त और सवैयों में रचित हैं और दूसरे वर्ग की रचनाएँ भक्तिपरक रचनाएँ जो प्रायः दोहे और चौपाइयों में रचित हैं।

बोध प्रश्न

- घनानंद की विलुप्त और बिखरी हुई रचनाओं का उद्धार सर्वप्रथम किसने ने किया?
- घनानंद की रचनाओं में कौन से गुण मिलते हैं?

घननांद प्रेम और सौंदर्य के अद्वितीय और समर्थ कवि हैं। उनका प्रेम शास्त्रीय पद्धतियों से बंधा हुआ नहीं, उन्मुक्त है। उसमें स्वछंद रूढ़ियों के प्रति खुला विद्रोह दिखाई देता है। यह प्रेम मौलिक रीति से शुरू होकर राधा-कृष्ण के भक्ति रस तक विस्तार पाए हुए हैं। प्रेम में विरह पीड़ा की शक्ति ने इस कवि को नया भाव लोक प्रदान किया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि "विशुद्धता के साथ प्रौढ़ता और माधुर्य भी अपूर्व ही है। ये वियोग शृंगार के प्रधान मुक्तक कवि हैं। प्रेम का पीर, लेकर ही इनकी वाणी का प्रादुर्भाव हुआ। प्रेम मार्ग का ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जबाँदानी का ऐसा दावा रखने वाला ब्रज भाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।" प्रेमी घनानंद सुजान (प्रेमिका) तथा सुजान (राधा-कृष्ण) को बराबर पुकारते मिलते हैं। लौकिक अर्थ में सुजान प्रेमिका के लिए और भक्ति भाव में सुजान राधा-कृष्ण के लिए प्रतीक रूप में मानने चाहिए।

यहाँ यह भी विचारणीय है कि रीतिकाव्य जिसे शृंगार काव्य भी कहा जाता है - वास्तव में प्रेम काव्य ही है। अपितु यह केवल भोग-विलास का काव्य है जिससे नारी को उपभोग की वस्तु ही समझा गया। किंतु घनानंद तथा अन्य रीतिमुक्त कवियों ने इस भोग विलास को अपना लक्ष्य न बनाकर स्वच्छंद प्रेम को अपने काव्य की विषय वस्तु बनाया है। यह प्रेम अनुभूति प्रधान है,

भावना प्रधान है, मांसल है, शरीरी है और मानसिक है। यह बात कही जा चुकी है कि घनानंद एक रूपवती वेश्या सुजान के प्रेम में बंधे हुए थे। सुजान के प्रेम ने ही उन्हें प्रेम की समस्त अवस्थाओं में से गुजरने का अवसर प्रदान किया। वैसे मुख्य रूप से घनानंद का प्रेम विरह प्रधान है। सुजान ने घनानंद के साथ जब मथुरा जाने से इनकार कर दिया तब वे सारी उम्र अकेले ही रहे और अपने प्रेमानुभवों और प्रेमानुभूतियों को अभिव्यक्त करते रहे। प्रेयसी सुजान का नाम ही इस कविता में प्रेम-रसायन का सार प्रतीक है। यह नाम उनके चेतन-अवचेतन मन में बस गया है कि किसी भी स्थिति में छूटने का नाम नहीं लेता है।

प्रेम का उदात्त बिंब ही घनानंद की कविता में झिलमिलाता रहता है। और यह बिंब ही राधा, कृष्ण, सुजान के रूप में भाव लोक की स्वच्छंद सृष्टि करता है। प्रेम में नारी रति के प्रति खुला आकर्षण रहने के कारण यह काव्य अधिकांशतः शृंगार की कोटि में आता है, भक्ति की कोटि में नहीं। हालांकि यह सच है कि विरक्त घनानंद सखी भाव के भक्त और ब्रजरस में मग्न होकर कीर्तन, रासलीला तथा भ्रमण गायन करते थे। घनानंद में प्रेम का भाव पक्ष पूरी तरह मौजूद है पर विभाव पक्ष का चित्रण कम है। इसका कारण है कि वे प्रेम के रूप सौंदर्य पक्ष की अनेकता पर ध्यान केंद्रित किए रहे हैं। जहाँ प्रेम हृदय का वर्णन उन्होंने किया है वहाँ उसके प्रभाव का वर्णन ही मुख्य है। इनकी वाणी की प्रवृत्ति अंतर्वृत्ति निरूपण की ओर ही अधिक रहने के कारण बाह्यार्थ निरूपक रचना कम मिलती है। होली, उत्सव, मार्ग में नायक-नायिका की भेंट, उनकी रमणीय चेष्टाएँ आदि के वर्णन के रूप में ही वह पाई जाती है। संयोग का भी कहीं-कहीं बाह्य वर्णन मिलता है, पर उसमें प्रधानता बाहरी व्यापारों या चेष्टाओं की नहीं है, हृदय के उल्लास और लीनता की ही है। प्रेम दशा की व्यंजना ही इनका प्रधान क्षेत्र है। प्रेम की अंतर्दशा का उद्घाटन जैसा इनमें है वैसा हिन्दी के अन्य किसी शृंगारी कवि में नहीं है।

बोध प्रश्न

- घनानंद का प्रेम कैसा प्रेम है?
- घनानंद के काव्य का प्रधान क्षेत्र क्या है?

दरअसल, घनानंद का प्रेम रीतिकालीन वासनात्मक प्रेम से भी भिन्न है। इस प्रेम की प्रगाढ़ता, साधना भाव इन्हें भक्त की कोटि में ले जाता है। प्रेम के विषय में घनानंद ने जो धारणा अभिव्यक्त की है उसके अनुसार प्रेम का मार्ग बहुत सीधा और सरल होता है, इसमें चालाकी, चतुराई या लोभ की जगह नहीं होती। आचार्य रामचंद्र शुक्ल 'चिंतामणी' में कहते हैं कि "प्रीति में लोभ हुआ नहीं करता।" घनानंद इसी लोभ के विरोधी हैं। वे प्रेम की सरलता और सात्विकता में विश्वास करते हैं। उनके प्रेम में प्रतिपादन की चाह नहीं है किंतु प्रियाभिलाषा अवश्य है। जहाँ कहीं भी सुजान के रूप का विवेचन हैं वहाँ के सारे स्थल इसी अभिलाषा नामक गुण से जुड़े हैं -

मोहन के बढ़त मिठास भरी ताने मिदि।

माठिए लगति जब मिलै सब डाटिए लौ॥

घनानंद की विरह व्यथा में हृदयानुभूति का वेग बहुत है। स्थिति यहाँ तक पहुँचती है कि प्रिय मारकर जिलाता है और जिलाकर मारता है। प्रिय के आते ही महारस छा जाता है और वियोग में प्राण चातक तड़प कर चीखता है पर यहाँ भोग का विलास नहीं है। साधना की प्रेम शक्ति है। इसी में हृदय की मार्मिक पीड़ाओं का अनुभावात्मक संश्लेषण-विश्लेषण होता रहता है। इस भावनात्मक प्रेम का रूप देखिए -

नेह सो मोय सजीव घरी हिय दीप दस्स जु मरी अति आरति।
भावना धार दुलास के हाथिन यों हित मूरति हेरि उतराती॥

प्रिय के रूप की अनेक रंगों से यह प्रेम जीवित है। इसमें सनवेदनात्मक ज्ञान के पक्ष सक्रिय हैं। इस प्रेम में हृदय व्यापार सीधा है, कुटिलता तक छू नहीं गई है। वैष्णव आचार्यों की शब्दावली में कहें तो - अभिलाषा ही प्रेम बन गई है।

रीतिमुक्त काव्यधारा को उच्च शिखर तक पहुँचाने वाले कवि घनानंद प्रेम के मुक्त गायक हैं। उन्होंने प्रेम के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों का सुंदर वर्णन किया है। विरह की मधुर अनुभूति पूरी तीव्रता के साथ इनके काव्य में व्यक्त हुई है। इनके काव्य की प्रमुख वस्तु है - सौंदर्य और प्रेम। लौकिक और अलौकिक दोनों प्रकार के प्रेम उनके काव्य की उपलब्धि है। लौकिक स्तर पर सुजान उनकी प्रेमिका है जिसकी विरह की पीड़ा से कवि को काव्य रचना की प्रेरणा मिली तो अलौकिक स्तर पर वह सुजान अर्थात कृष्ण या परमेश्वर है। प्रिय के रूप पर रीझने से मन की दशा का कवि ने इस प्रकार वर्णन किया -

रावरे, रूप की रीति अनूप, नयौ नयौ लागत ज्यौं-ज्यौं निह्यरियै।
त्यौं इन आंखिन बानि अनौखी, अघानि कहूँ नहि आन तिहारियै॥
एक ही जीव हुतौ सुतौ वारियै, सुजान संकोच औ सोच सहारियै।
रोकी रहै न दहै घनआनंद, बाबरी रीझ के हाथनि हारियै॥

घनानंद ने अपनी कुछ रचनाओं में वैष्णव प्रेम परंपरा और फारसी की प्रेम परंपरा का अद्भुत समन्वय भी दर्शाया है। विशेष रूप से 'इश्क लता' और 'वियोग बेलि' इसके सुंदर उदाहरण हैं। इन रचनाओं में प्रेम की प्रगाढ़ता साधना के भाव से संयुक्त होकर इतनी उदात्त हो गई है कि उसे भक्ति की कोटि में रखा जा सकता है। यही कारण है कि सभी विद्वानों ने एकमत से यह स्वीकार किया है कि घनानंद का प्रेम रीतिकालीन मांसल प्रेम से एकदम अलग कोटि का है।

डॉ. मनोहर लाल गौड़ ने घनानंद के काव्यसौंदर्य की चर्चा करते हुए लिखा है कि - घनानंद के काव्य की एक विशेषता भावजन्य वक्रता है। कवि के भाव असाधारण हैं। उन्हें अभिव्यक्त करने के लिए असाधारण भाषा का प्रयोग ही एकमात्र उपाय है। ऐसा लगता है कि भावों का जन्म ही इस प्रकार की वक्र भाषा में हुआ है। इस प्रकार लाक्षणिक भाषा का प्रयोग करना उनकी शैली है जिसके परिणामस्वरूप उसमें विरोध और वक्रता ये दो गुण आ गए हैं। प्रेम की स्वानुभूत पीड़ा की ऐसी मार्मिक अभिव्यक्ति ही उन्हें असाधारण कवि बनाती है। वस्तुतः घनानंद का प्रेम एकनिष्ठ है। उसमें ऐंद्रीय वासना के लिए कोई स्थान नहीं है। इनके नायक-नायिका के रूप वर्णन में यह पवित्र एकनिष्ठ प्रेम भावना ही झलकती है। इसलिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है - "प्रेममार्ग का

ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा ज़बाँदानी का ऐसा दावा रखनेवाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।"

बोध प्रश्न

- घनानंद के काव्य की क्या विशेषताएँ हैं?
- 'इश्क लता' और 'वियोग बेलि' में किस परंपरा का समन्वय है?

12.3.2.2 ठाकुर (1763 ई. - 1824 ई.)

रीतिमुक्त काव्यधारा के भावप्रधान शृंगारी कवियों में ठाकुर का योगदान भी उल्लेखनीय है। ये मौजमस्ती एवं स्वाभिमान के धनी थे। इनके दो ग्रंथ उपलब्ध हैं - ठाकुर-ठसक और ठाकुर-शतक। इन्होंने शृंगार भाव की अभिव्यंजना के लिए स्वच्छंद शैली को अपनाया और राधा को आराध्य मानते हुए अपने काव्य का आलंबन बनाया। इसलिए इनका काव्य प्रेम और भक्ति की भावनाओं से ओतप्रोत है। इन्होंने अपने काव्य में सच्ची अनुभूति के अनुरूप ही भावों का उत्कर्ष किया है। इन्होंने अपने काव्य में भावों को सहज भाषा में उतारा है। ठाकुर ने भक्ति, नीति, प्रकृति, पर्वोत्सव, होली तथा हिंडोल आदि विषयक सुंदर छंद रचे हैं। अन्य रीतिमुक्त कवियों से अलग इनकी शृंगारिक अभिव्यक्ति में मांसलता का अभाव है।

बोध प्रश्न

- ठाकुर का काव्य प्रेम और भक्ति की भावनाओं से क्यों ओतप्रोत है?

12.3.2.3 आलम

बादशाह औरंगजेब के दूसरे बेटे मुअज्जम के आश्रित कवि आलम और उनकी पत्नी शेख रंगरेजिन दोनों ही प्रतिभाशाली कवि माने जाते हैं। स्वच्छंद (रीतिमुक्त) काव्यरचना की दृष्टि से आलम कृत 'आलम केलि' का अपना महत्व है। 'आलम केलि' शृंगार प्रधान महाकाव्य है, जिसमें नवोढ़ा-प्रौढ़ा-मानिनी-खंडिता आदि विभिन्न प्रकार की नायिकाओं की विभिन्न स्थितियों के मनोरम चित्रों के अतिरिक्त कृष्ण और गोपिकाओं के प्रेम का भी वर्णन है। इन नायिकाओं के माध्यम से संयोग और वियोग शृंगार की विभिन्न परिस्थितियों, दशाओं एवं अनुभूतियों का चित्रण हुआ है। नायिका भेद आदि काव्यरूढ़ियों के पालन के कारण यह माना जाता है कि आलम घनानंद की भाँति सर्वथा स्वच्छंद नहीं है। इनके कवित्त सवैयों में रीति-परंपरा के गुण भी कुछ-कुछ मिल जाते हैं। लेकिन मार्मिकता की दृष्टि से ये घनानंद के समान ही स्वच्छंद अभिव्यक्ति के धनी भी हैं। इनकी भाषा के संबंध में विचार करते हुए आचार्य शुक्ल का कहना है कि "शब्दवैचित्र्य, अनुप्रास आदि की प्रवृत्ति इनमें विशेष रूप से कहीं नहीं पाई जाती। शृंगार रस की ऐसी उन्मादमयी उक्तियाँ इनकी रचना में मिलती हैं कि पढ़ने और सुननेवाले लीन हो जाते हैं। रेख़्ता या उर्दू भाषा में भी इन्होंने कवित्त कहे हैं। भाषा भी इस कवि की परिमार्जित और सुव्यवस्थित है पर उसमें कहीं-कहीं 'कीन, दीन, जीन' आदि अवधी या पूरबी हिन्दी के प्रयोग भी मिलते हैं। प्रेम की तन्मयता की दृष्टि

से आलम की गणना रसखान और घनानंद की कोटि में ही होनी चाहिए।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 182)। विरह की मार्मिक अभिव्यक्ति की दृष्टि से आलम कृत यह सवैया द्रष्टव्य है -

"जा थल कीने बिहार अनेकन, ता थल कांकरी बैठी चुन्यौ करैं।
जा रसना सौं करी बहुबात, सु ता रसना सौं चरित्र गुन्यौ करैं॥
'आलम' चैन से कुंजन में करी केलि, वहाँ अब सीस धुन्यौ करैं।
नैनन में जो सदा रहते, तिनकी अब कान कहानी सुन्यौ करैं॥

बोध प्रश्न

- 'आलम केलि' में किसका वर्णन है?
- आलम की भाषा कैसी थी?

12.3.2.4 बोधा

बोधा का मूल नाम बुद्धिसेन था। इन्होंने भी रीतिमुक्त काव्यधारा को काफी समृद्ध किया। इनकी काव्य कृतियाँ हैं विरहवारीश तथा इश्कनामा। 'विरहवारीश' माधवनाल प्रेमकंदला की प्रसिद्ध प्रेमकथा पर आधारित प्रबंध काव्य है। 'इश्कनामा' प्रेम संबंधी मुक्तकों का संग्रह है। बोधा अपने आश्रयदाता पन्नानरेश खेहसिंह की राजनर्तकी सुभान से प्रेम करते थे। इस प्रेम के कारण घनानंद की भाँति इन्हें भी देश निकाला दे दिया गया था। वास्तव में विरहवारीश बोधा के वैयक्तिक विरहानुभूति का चित्रण करने वाला प्रबंध काव्य है।

घनानंद की भाँति ही बोधा भी प्रेम को एक विकट पंथ मानते हैं। बलिदान और त्याग के बिना इस मार्ग पर चलकर लक्ष्य साधना बहुत दुष्कर है। यथा,

यह प्रेम को पंथ हलाहल है सुनौ बेद पुरानऊ गावत हैं।
पुनि आँखिन देखौ सरोजन लै नर संभु के सीस-चढ़ावत हैं॥
नरही पर माथे चढ़ै हरि के फल जोग ते ऐते पावत हैं।
तुम्हैं नीकी लगै न लगै तो भले हम जान अजान-जनावत हैं॥

बोधा की भाषा-शैली में कृत्रिमता नहीं है। इनके काव्य में तत्सम-तद्भव शब्दावली के साथ अरबी, फारसी, बंगाली एवं पंजाबी के भी शब्द मिलते हैं। डॉ. मनोहर लाल गौड़ के अनुसार "भाषा की स्वाभाविक स्वच्छंदमार्गी सभी कवियों की अपेक्षा बोधा में अधिक है। ठाकुर ने लोकोक्तियों द्वारा, घनानंद ने लक्षणाओं के बल से तथा आलम ने अलंकारों के प्रयोग से चमत्कार का आश्रय लिया है। केवल बोधा ही ऐसे हैं, जो भाषा के स्वाभाविक रूप को लेकर चले हैं।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. नगेंद्र, पृ. 364)।

बोध प्रश्न

- बोधा की भाषा शैली कैसी थी?

12.3.3 रीतिकाल की अन्य काव्यधाराएँ

रीतिकाल में 'रीति' केंद्रित तीन मुख्य धाराओं - रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त के अलावा कुछ गौण काव्यधाराएँ भी मिलती हैं। ये हैं - प्रशस्ति या वीर काव्य, नीति काव्य तथा भक्ति काव्य।

12.3.3.1 प्रशस्ति या वीर काव्य

रीतिकाल के कुछ दरबारी अथवा राज्याश्रित कवियों ने प्रशस्ती काव्य और वीर काव्य की रचना की। भूषण, श्रीधर, लाल, सूदन और पद्माकर ऐसे ही कवि हैं। भूषण ने अपने आश्रयदाता शिवाजी और छत्रसाल को अपने प्रशस्ति काव्यों का नायक बनाया। उन्होंने 'शिवराजभूषण' नामक काव्य शिवाजी की प्रशस्ति में लिखा। इसमें छत्रपति शिवाजी की प्रशंसा और बादशाह औरंगजेब की निंदा की गई है। इसी तरह श्रीधर ने अपने ग्रंथ 'जंगनामा' में फर्रूखशियर और जहाँदार शाह के युद्ध का वर्णन किया है, यह एक युद्धकाव्य है। लाल कवि ने महाराज छत्रसाल की वीरता का बखान करने के लिए दोहा-चौपाई शैली में 'छत्रप्रकाश' नामक काव्य रचा। सूदन ने अपने ग्रंथ 'सुजानचरित' में भरतपुर के महाराजा बदनसिंह के पुत्र सुजान सिंह (सूरजमल) के द्वारा लड़े गए युद्धों का विस्तृत वर्णन किया है। पद्माकर ने हिम्मतबहादुर-विरुदावली में बांदा के नवाब सरदार हिम्मतबहादुर के वीरतापूर्ण कारनामों का वर्णन किया है। इस काव्य परंपरा के अन्य कवियों में घनश्याम शुक्ल, मोहनलाल भट्ट, हरिकेश, भगवंत राय, शंभुनाथ, मल्ल, भूधरनाथ, भानकवि, थानकवि, पंडित प्रवीण, लछिराम आदि के नाम सम्मिलित हैं।

रामचंद्र शुक्ल के अनुसार इन कविताओं में युद्धवीरता और दानवीरता दोनों की बड़ी अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसा भरी रहती थी। आगे उन्होंने लिखा है कि इस तरह की कविताओं में वही कविताएँ बच सकीं जो उन आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा में लिखी गईं जो वास्तव में प्रजा की श्रद्धा के पात्र थे। भूषण का काव्य इसका ज्वलंत प्रमाण है।

12.3.3.2 नीतिकाव्य

रीतिकाल में नीति के पद्य लिखने वाले कवि भी हुए हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल इन्हें कवि की अपेक्षा 'सूक्तिकार' कहना अधिक उचित मानते हैं। रीतिकाल के इस नीतिकाव्य की जड़ें तुलसी और रहीम जैसे भक्तिकालीन कवियों की नीतिपरक रचनाओं में हैं। इस प्रवृत्ति को संस्कृत के नीति काव्य अथवा सुभाषित रचना की परंपरा से काफी बल मिला। नीति के पद्य सामान्यतः जीवन के अनुभवों से जुड़े हुए होते हैं और वे सांसारिक व्यवहार को लेकर सिद्धांत स्थापित करने वाले होते हैं। उल्लेखनीय है कि, रामचंद्र शुक्ल ने रहीम के ऐसे दोहों पर बात करते हुए लिखा है कि रहीम के दोहे कोरी नीति के पद्य नहीं हैं, उनमें मार्मिकता है, उनके भीतर से एक सच्चा हृदय झाँकता है। लेकिन इसी प्रसंग में उन्होंने रीतिकाल के नीतिकवियों वृंद और गिरिधर के नीतिपद्यों को कोरी

नीति के पद्य कहा है। इसका अर्थ यह हुआ कि रीतिकाल में सामान्यतः नीति के पद्य औपचारिकता के निर्वाह के लिए लिखे गए, न कि जीवन के मर्म को पर्याप्त संवेदनशीलता के साथ स्थापित करने के लिए। यह बात सही है कि रीतिकाल के नीतिकवियों की कविताओं की कोटि बहुत उच्च नहीं मानी जा सकती, लेकिन ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि ये कविताएँ पूरी तरह से महत्वहीन हैं। कहीं-कहीं इन रचनाओं में भी जीवनानुभव का निचोड़ दिखाई पड़ता है। गिरिधर कविराय की रचनाएँ इस दृष्टि से काफी प्रभावशाली बन पड़ी हैं। जैसे - "पानी बाढो नाव में, घर में बाढो दाम।/ दोनों हाथ उलीचिए, यही सयानो काम॥"

रीतिकाल के अधिकांश नीतिकवियों पर सामंती मूल्यबोध हावी है। इन कवियों का दरबारी कवि होने के कारण भी यह स्वाभाविक है। उदाहरण के लिए बैताल कवि का एक छप्पय द्रष्टव्य है - "राजा चंचल होय, मुलुक को सर करि लावै।/ पंडित चंचल होय, सभा उत्तर दै आवै॥/ हाथी चंचल होय, समर में साँड उठावै।/ घोड़ा चंचल होय, झपट मैदान देखावै।/ ये चारों चंचल भले, राजा पंडित गज तुरी। बैताल कहै विक्रम सुनो, तिरिया चंचल अति बुरी।" स्त्री स्वभाव पर यह टिप्पणी तत्कालीन सामंती संस्कार की देन है।

बोध प्रश्न

- रीतिकाल में नीतिकाव्य क्यों लिखे गए?

12.3.3.3 भक्तिकाव्य

रीतिकाल में एक क्षीण-सी धारा भक्ति काव्य की भी मिलती है। कुछ कवियों ने विशुद्ध रूप से भक्ति रचनाएँ भी कीं। यहाँ यह स्पष्ट करना बहुत जरूरी है कि राधा और कृष्ण को अवलंब बनाकर जो शृंगार काव्य रीतिकालीन कवियों ने लिखे उन्हें भक्तिकाव्य की श्रेणी में नहीं रखा जाता, क्योंकि ऐसी मान्यता रही है कि अधिकांश कवियों ने अपने आश्रयदाता के जीवन चरित को दर्शाने अथवा अपनी शृंगार भावना को अभिव्यक्त करने के लिए कृष्ण-राधा के अवलंब का उपयोग भर किया। रीतिकाल में जो भक्तिकाव्य की परंपरा रही उसे पृथक रूप में देखना जरूरी है। रामचंद्र शुक्ल के अनुसार इन कवियों ने भक्ति और प्रेमपूर्ण विनय के पद पुराने भक्तों के ढंग पर गाए हैं। भक्तिकालीन परंपरा इस काल में भी संतकाव्य, सूफीकाव्य, रामकाव्य और कृष्णकाव्य के रूप में सुरक्षित रही। इस धारा के प्रमुख कवियों में यारी साहब, दरिया साहब, पलटू साहब, गुरु तेजबहादुर, संत चरनदास, प्राणनाथ, कासिमशाह, नूरमोहम्मद, शेखनिसार, गुरु गोविंद सिंह, जानकी रसिकशरण, भगवंत राय खीची, नवल सिंह, विश्वनाथ सिंह, रामप्रिया शरण, रसिकअली, गुमान मिश्र, ब्रजवासी दास, मंचित, नागरी दास, अलबेली, हितवृंदावन दास, वृंदावन देव, सुंदरी कुँवरबाई, बक्षी हंसराज श्रीवास्तव 'प्रेमसखी', कृष्णदास, रत्नकुंवरी आदि का उल्लेख किया जाता है।

बोध प्रश्न

- रीतिकाल के कवियों की राधा और कृष्ण विषयक कविताओं को भक्ति काव्य में क्यों नहीं रखा जाता?

12.4 पाठ-सार

रीतिकालीन काव्य के केंद्र में 'रीति' अर्थात शास्त्रीय परिपाटी के पालन की प्रवृत्ति रही है। जिन कवियों ने सिद्धांत के ग्रंथ लिखे वे रीतिबद्ध कहलाए। जिन्होंने सिद्धांत निरूपण न करते हुए भी शास्त्रीय परिपाटी का पूरी तरह पालन किया उन्हें रीतिसिद्ध कवि कहा गया है। इन दोनों से अलग उस काल के कुछ कवि ऐसे भी हैं जिन्होंने काव्यशास्त्रीय परिपाटी अथवा रीति की कोई परवाह नहीं की। इन्हें रीतिमुक्त अथवा स्वच्छंद कवि कहा जाता है। इस रीतिमुक्त काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं - आलम, ठाकुर, घनानंद और बोधा। इन कवियों ने कलापक्ष की तुलना में भावपक्ष पर अधिक ध्यान दिया। घनानंद इस काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं। उन्होंने प्रेम के संयोग-वियोग दोनों पक्षों का सुंदर वर्णन किया है। इस काव्यधारा के अन्य कवियों ने भी प्रेम और सौंदर्य के चित्रण पर ही सबसे अधिक बल दिया है। रीतिकाल में 'रीति' के अलावा तीन गौण प्रवृत्तियाँ भी मिलती हैं। ये हैं वीरकाव्य, नीतिकाव्य और भक्ति काव्य।

12.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं -

1. रीतिमुक्त कवियों ने शास्त्रीय परिपाटी की परवाह नहीं की।
2. घनानंद रीतिकाल के प्रमुख स्वच्छंद कवि हैं।
3. ठाकुर, आलम और बोधा ने भी रीतिमुक्त काव्यधारा को अपनी रचनाओं से समृद्ध बनाया।
4. रीतिकाल की गौण प्रवृत्तियों में वीर काव्य, नीति काव्य और भक्ति काव्य शामिल हैं।
5. रीतिकाल में वीर काव्य की रचना करने वाले प्रमुख कवि हैं भूषण। इन्होंने शिवाजी और छत्रसाल की प्रशंसा में वीर काव्य की रचना की।

12.6 शब्द संपदा

1. आलंबन	=	सहारा
2. उदात्त	=	महान, श्रेष्ठ, उत्तम, ऊँचा
3. भावावेग	=	भावुकता, भावों की प्रबलता
4. शब्दवैचित्र्य	=	अजीब शब्द
5. संवेदनशीलता	=	संवेदनशील होने की अवस्था, भावुकता
6. सामंती संस्कार	=	सामंत होने की अवस्था या भाव

12.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. रीतिमुक्त काव्यधारा के अंतर्गत किस-किस प्रकार की रचनाएँ हुई हैं? बताइए।
2. कवि बोधा के व्यक्तित्व व कृतित्व पर प्रकाश डालिए।
3. कवि आलम के काव्य-पक्ष पर चर्चा कीजिए।
4. घनानंद के काव्य सौंदर्य की चर्चा कीजिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. रीतिमुक्त काव्य की मुख्य विशेषताओं का परिचय दीजिए।
2. रीतिकाल की गौण प्रवृत्तियों का परिचय दीजिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए

1. मुक्तक काव्य के रचनाकारों का सिरमौर किसे माना जाता है? ( )
   (अ) घनानंद (आ) ठाकुर (इ) आलम (ई) बोधा
2. 'शिवराज भूषण' के रचनाकार कौन हैं? ( )
   (अ) घनानंद (आ) पद्माकर (इ) आलम (ई) भूषण
3. 'आलम केलि'........... प्रधान काव्य है। ( )
   (अ) वीर (आ) शृंगार (इ) करुण (ई) जुगुप्सा

II रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

1. सुजान चरित के रचनाकार .... हैं।
2. जंगनामा में .... और .... के युद्ध का वर्णन है।
3. बोधा के वैयक्तिक विराहानुभूति का चित्रण करने वाला प्रबंध काव्य .... है।

III सुमेल कीजिए

i) आलम	(अ) ठाकुर शतक
ii) बोधा	(आ) आलम केलि
iii) ठाकुर	(इ) विरहवारीश

12.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल

2. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, गणपतिचंद्र गुप्त

3. हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, विजयपाल सिंह

इकाई 13 : 1857 का स्वाधीनता संघर्ष और हिन्दी नवजागरण

रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 मूल पाठ : 1857 का स्वाधीनता संघर्ष और हिन्दी नवजागरण

13.3.1 आधुनिकता का उदय

13.3.2 परिवर्तन का सूत्रपात

13.3.3 नवजागरण और प्रथम राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष

13.3.4 भारतेंदु युग की नवजागरण चेतना

13.4 पाठ-सार

13.5 पाठ की उपलब्धियाँ

13.6 शब्द संपदा

13.7 परीक्षार्थ प्रश्न

13.8 पठनीय पुस्तकें

13.1 प्रस्तावना

प्रिय छात्रो! जैसा कि आपको मालूम है, हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से आरंभ होता है। ध्यान दीजिए कि यह समय भारतीय इतिहास में नवजागरण आंदोलन के आरंभ का समय है। इसी समय हमारे देश को ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन से मुक्त कराने के लिए पहला स्वाधीनता संग्राम भी लड़ा गया। प्रस्तुत इकाई में हम इन्हीं दोनों विषयों पर विचार करेंगे।

13.2 उद्देश्य

छात्रो! इस इकाई का अध्ययन करके आप –

- भारत में आधुनिकता के आरंभ के बारे में जान सकेंगे।
- आधुनिक भारत में मध्यकालीन रूढ़ियों से मुक्ति के आरंभिक प्रयासों के बारे में जान सकेंगे।
- मध्यकाल से आगे आधुनिक काल में होने वाले परिवर्तन के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- नवजागरण आंदोलन और हिन्दी क्षेत्र में उनके फैलाव के कारण जान सकेंगे।
- पहले स्वाधीनता संग्राम के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- भारतेंदु युग की नवजागरण चेतना को आत्मसात कर सकेंगे।

13.3 मूल पाठ : 1857 का स्वाधीनता संघर्ष और हिन्दी नवजागरण

13.3.1 आधुनिकता का उदय

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का आरंभ भारतीय जीवन में आधुनिकता के प्रवेश के साथ जुड़ा हुआ है। मध्यकालीन जीवन धर्म पर केंद्रित था, उससे आगे बढ़कर जब जीवन की मुख्य प्रेरणा का स्थान विज्ञान और तर्क को मिला, तो हमारे समाज में आधुनिकता का उदय हुआ। धर्म का संबंध मध्यकाल में मनुष्य की पारलौकिक आकांक्षाओं से था। आधुनिक काल में पूँजीवादी समाज व्यवस्था की भौतिकता ने उसे हटाकर अपने लिए जगह बनाई। इसे देखते हुए नवजागरण के नेताओं ने भौतिकता को भी धर्म की नई व्याख्या का आधार बनाया।

भारतीय इतिहास में आधुनिक काल का आरंभ अंग्रेजी राज की स्थापना से होता है। अंग्रेजों ने यहाँ नई अर्थ व्यवस्था, उद्योग धंधे, रेल, तार तथा प्रेस की अपने स्वार्थों के लिए स्थापित की लेकिन इससे भारत को आधुनिक युग में प्रवेश करने में सुविधा हुई। इस काल में देश को मध्यकालीन रूढ़िवाद से मुक्त करने में राजा राममोहन राय और स्वामी दयानंद सरस्वती जैसे महापुरुषों ने विवेक का सहारा लिया। इन्होंने ही उन्नीसवीं शताब्दी के नवजागरण का नेतृत्व किया। इनके प्रभाव में भारतीय समाज ने अपनी कई सड़ी-गली परंपराओं (जैसे सती प्रथा) से मुक्ति प्राप्त की। वर्णाश्रम व्यवस्था, छुआछूत आदि का विरोध तथा सामाजिक जीवन में स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे आदि का समर्थन इस बात का प्रमाण है कि भारतीय नवजागरण नवीन मानवतावाद पर आधारित था। यहाँ यह भी समझ लेना जरूरी है कि हिन्दी के भक्ति काव्य में भी मानवता पर ज़ोर था लेकिन वह मानवतावाद ईश्वरवाद से जुड़ा हुआ है। मध्यकाल के भक्तकवियों ने हिंदू और मुसलमान के भेद पर यह कहकर प्रहार किया कि वे सभी ईश्वर की संतान हैं। उन्होंने कर्मकांड का विरोध किया क्योंकि ईश्वर तक पहुँचने में बाधक था। पर आधुनिक काल में मनुष्य और मनुष्य की समता और स्वतंत्रता को सामाजिक न्याय के आधार पर स्थापित किया गया है। मनुष्य और मनुष्यता की सर्वोपरिता ही इस आधुनिक युगीन नवजागरण की मूल चेतना है।

बोध प्रश्न

- भारतीय नवजागरण किस पर आधारित था?

13.3.2 परिवर्तन का सूत्रपात

आधुनिकता और नवजागरण की इस दिशा में भारतीय समाज को प्रेरित करने में नई शिक्षा का बड़ा हाथ रहा। नवजागरण के प्रवर्तक राजा राममोहन राय पुरानी शिक्षा-प्रणाली के खिलाफ थे। वे भारत में नए ढंग की शिक्षा प्रणाली चाहते थे। वे मानते थे कि पुराने ढंग की पढ़ाई जारी रही तो देश में किसी प्रकार का समाज सुधार हो ही नहीं सकता। वास्तव में नई शिक्षा-प्रणाली ने आधुनिक ढंग से सोचने का वातावरण प्रदान किया। ईसाई मिशनरियों, कोलकता के फोर्ट विलियम कॉलेज तथा ईस्ट इंडिया कंपनी के मैकाले जैसे अधिकारियों के प्रयास से भारत में धीरे-धीरे अंग्रेजी भाषा के माध्यम के नए ढंग की शिक्षा का प्रसार हुआ। 1844 ई. में लॉर्ड हार्डिन

की वह महत्वपूर्ण योजना प्रकाशित हुई जिसके अनुसार सरकारी नौकरियों के योग्य वे ही समझे जाने लगे जिन्हें अंग्रेजी शिक्षा मिली। इस अनिवार्यता का परिणाम यह हुआ कि भारत का युवा वर्ग शेष दुनिया की ज्ञान-विज्ञान की प्रगति से परिचित हुआ तथा गुलामी से मुक्ति के लिए छटपटाने लगा। यह कहना गलत न होगा कि वतर्मान भारत का जन्म ही अंग्रेजी शिक्षा पद्धति के कारण हुआ। समाज और देश के प्रति जो नवीन चेतना जागी, इसके भीतर से हमारी सारी राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक क्रांतियों का जन्म हुआ। सामाजिक चेतना ही वह गुण है जो आज के औसत भारतवासी को प्राचीन अथवा मध्ययुगीन भारतवासी से अलग करता है और यह चेतना भारत को यूरोपीय संपर्क से मिली है। इसी ने आगे चलकर राष्ट्रीय चेतना का रूप लिया। यह राष्ट्रीय चेतना ही स्वाधीनता आंदोलन का आधार बनी।

बोध प्रश्न

- लॉर्ड हार्डिन की योजना के कारण भारत में क्या हुआ?

नवजागरण आंदोलन की जड़ में यह मौलिक सच्चाई निहित है कि उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में भारतीय जन मानस में मनुष्य की अवधारणा में कुछ बुनियादी बदलाव पैदा हुए। प्राचीन काल से चली आती मनुष्य की अवधारणा का निर्माण लोक और वेद के परस्पर मिलाप से हुआ था। इस अवधारणा में मोटे तौर पर मनुष्य ईश्वर और भाग्य के द्वारा नियंत्रित माना जाता था। इस मान्यता ने परलोक और पुनर्जन्म की कल्पनाओं को जन्म दिया और मनुष्य को कर्म करने की स्वतंत्रता के बावजूद प्रारब्ध का गुलाम बना दिया। परिणाम यह हुआ कि जीवन की दैनिक जरूरतों की तुलना में अगले जन्म को ज्यादा महत्व मिल गया। इससे भारतीय मानस में एक खास तरह की उदासीनता पैदा हुई। दूसरी ओर समाज में ऐसे सत्ता केंद्रों का विकास हुआ जिन्हें ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाता था। राजा हो या पिता अथवा पति या कि गुरु - सब भगवान बन बैठे। इन भगवानों के पैरों तले साधारण मनुष्य की अस्मिता कुचली जाने लगी। फलतः समाज में ऐसी अनेक रूढ़ियों ने जड़ जमा ली जिनकी कीमत सड़ीगली परंपराओं से अधिक कुछ नहीं थी। सती प्रथा से लेकर अस्पृश्यता तक तथा मूर्ति पूजा से लेकर बलि प्रथा तक - इन सड़ीगली परंपराओं ने भारत की प्रगति में हर प्रकार की बाधाएँ पैदा की। परिणाम यह हुआ कि कभी ज्ञान संपदा में विश्वगुरु और धन संपदा में सोने की चिड़िया रह चुका भारत एक के बाद एक गुलामी की जंजीरों में जकड़ता गया। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में राजा राममोहन राय जैसे अनेक विचारकों ने भारतीय संस्कृति की इस विडंबना को निकट से देखा और समझा। इस समझ ने उन्हें जड़ता में जकड़ी पड़ी भारतीय जनता को जगाने और अपनी खुद की बेड़ियों से मुक्त करने की चेतना प्रदान की। यही परिवर्तन चेतना अथवा आधुनिक चेतना नवजागरण आंदोलन का आधार बनी। यदि राष्ट्रीयता की दृष्टि से इसका प्रतिफलन 1857 की क्रांति के रूप में हुआ, तो हिन्दी साहित्य में इसने भारतेंदु युग को अवतरित करने का काम किया। अखिल भारतीय स्तर पर जो जागृति कोलकता जैसे केंद्रों से उभर रही थी हिन्दी में भारतेंदु हरिश्चंद्र उसके पुरोधा हैं।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि मनुष्य की अवधारणा बदलने का यह घटना भारत के समाज और हिन्दी साहित्य में उन्नीसवीं शताब्दी में ही पहली बार घटित नहीं हुई। पहले भी बहुत

बार मनुष्य और परम तत्व के संबंध को पारिभाषित करते हुए ऐसे बदलाव के मोड़ आए हैं। अगर उपनिषद काल या उसके बाद के इतिहास को छोड़ भी दें तो भी चौदहवीं पंद्रहवीं शताब्दी के भक्ति आंदोलन को भला कैसे भुलाया जा सकता है! जैसा कि डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं कि "आदि काल के प्रसंग में हमने परिलक्षित किया था कि यहाँ मनुष्य का ईश्वर की महिमा से युक्त रूप में वर्णन हुआ है, जब कि भक्ति काल में यह चित्रण ईश्वर का मनुष्य के रूप में हुआ है, आगे फिर रीतिकाल में ईश्वर और मनुष्य दोनों का मनुष्य-रूप में चित्रण होता है। आधुनिक काल में आकर मनुष्य सारे चिंतन का केंद्र बनता है, और ईश्वर की धारणा व्यक्तिगत आस्था के रूप में स्वीकृत होती है, साहित्य या कि कलाओं में उसका चित्रण प्रासंगिक नहीं रह जाता। इसी का परिणाम यह देखा जा सकता है कि प्रेम और भक्ति, लौकिक और अलौकिक संबंध, जो अभी तक या तो अलग-अलग अनुभव थे या कभी-कभी एक दूसरे का संस्पर्श करते थे, अब उनका अंतर आधुनिक काल में आकार विलीन हो गया है।" (हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ. 78-79)। यहाँ यह प्रश्न विचारणीय है कि मनुष्य की अवधारणा में परिवर्तन होने की प्रक्रिया क्या है? वर्तमान संदर्भ में इसका संबंध आधुनिक युग की उस मानसिकता से है जिसे इतिहास और संस्कृति के हलकों में पुनर्जागरण या नवजागरण कहा जाता है। ऐसे मोड़ प्रायः सभी देशों के इतिहास में आते हैं जिन्हें पुनर्जागरण या नवजागरण की सांस्कृतिक प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है। वर्तमान भारत के संदर्भ में यह नवजागरण उन्नीसवीं शती के मध्य से आरंभ होता है। इसके मूल में नई यूरोपीय वैज्ञानिक संस्कृति और पुरानी भारतीय धार्मिक संस्कृति की टकराहट को देखा जा सकता है। उल्लेखनीय है कि नवजागरण की पहचान जहाँ एक ओर दो जातीय संस्कृतियों की टकराहट से होती है वहीं इसका दूसरा पहलू यह भी है कि नवजागरण 'मनुष्य के संपूर्ण तथा संश्लिष्ट रूप की खोज और उसकी परिष्कार' करने की भी प्रक्रिया है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि यूरोपीय और भारतीय संस्कृतियों की टकराहट तथा समग्र और संपूर्ण मनुष्य की खोज की प्रेरणा भारतीय नवजागरण चेतना की केंद्रीय शक्तियाँ हैं। इसके एक सिरे पर राजा राममोहन राय हैं तो दूसरे सिरे पर महात्मा गांधी। साथ ही इसे गति प्रदान करने में एक ओर 1857 के प्रथम स्वाधीनता संघर्ष ने तथा दूसरी ओर बीसवीं शताब्दी के अखिल भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन ने निर्णायक भूमिका निभाई।

नवजागरण आंदोलन की एक बड़ी विशेषता इसका समाज केंद्रित और समन्वयमूलक होना है। भारतीय हिंदू विचारधारा और पाश्चात्य ईसाई संगठन का सामंजस्य नवजागरण के अधीनस्थ सभी सामाजिक आंदोलनों का मूल मंत्र है। "राजा राममोहन राय से लेकर महात्मा गांधी तक की यह विचार और कर्म-यात्रा है, जिसे बनाने और बढ़ाने में रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, लोकमान्य तिलक, श्री अरविंद जैसे कई मनीषियों का विशिष्ट योगदान रहा है।" (रामस्वरूप चतुर्वेदी)।

बोध प्रश्न

- नवजागरण आंदोलन की जड़ में क्या मौलिक सच्चाई निहित है?
- नवजागरण के अधीनस्थ सभी सामाजिक आंदोलनों का मूल क्या मंत्र है?
- नवजागरण आंदोलन के मूल में किस की टकराहट को देखा जा सकता है?
- मनुष्य की अवधारणा में परिवर्तन होने की प्रक्रिया क्या है?
- भारतीय नवजागरण चेतना की केंद्रीय शक्तियाँ क्या हैं?

13.3.3 नवजागरण और प्रथम राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष

भारत के नवजागरण का प्रमुख केंद्र बंगाल रहा। हिन्दी भाषी क्षेत्र में इसे फैलाने का श्रेय बड़ी सीमा तक भारतेंदु युग के साहित्य को जाता है। इसीलिए इसे हिन्दी नवजागरण भी कहा गया है। यद्यपि 'संस्कृति के चार अध्याय' नामक ग्रंथ में डॉ. रामधारी सिंह 'दिनकर' ने लिखा है कि वर्तमान भारत का जन्म ही अंग्रेजी शिक्षा पद्धति की गोद में हुआ है। लेकिन अगर वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण से देखा जाए तो कहना होगा कि भारत में स्वाधीनता की भावना यहाँ कि अपनी सामाजिक परिस्थितियों से पैदा हुई। रजनी पाम दत्त ने इस प्रसंग में ठीक ही लिखा है कि हमारा स्वाधीनता आंदोलन उन सामाजिक तथा आर्थिक शक्तियों से पैदा हुआ, जो ब्रिटिश हुकूमत के हाथों शोषण के कारण भारतीय समाज में उत्पन्न हो गई थीं। संयोगवश इसे नई शिक्षा पद्धति का सहयोग मिल गया। वरना मैकाले ने भारत की सदियों से चली आ रही पुरानी शिक्षा व्यवस्था नष्ट कर नए ढंग की समाजवादी अंग्रेजी शिक्षा की शुरूआत भारत की जनता में राष्ट्रीय भावना पैदा करने के लिए तो नहीं की थी। रजनी पाम दत्त के शब्दों में, "यह साम्राज्यवाद की पूरी व्यवस्था में निहित अंतर्विरोधों का परिणाम था कि शिक्षा की जो पद्धति साम्राज्यवाद के हितों की रक्षा करने के लिए जारी की गई थी, उसी ने भारत के लोगों के लिए इंग्लैंड के जनवादी जन आंदोलनों और जन संघर्षों से, मिल्टन, शैली तथा बायरन जैसे कवियों से प्रेरणा प्राप्त करने का भी रास्ता खोल दिया।" इसने ब्रिटिश हुकूमत की निरंकुशता से टकराने के जज़्बे को हवा जरूर दी। इसीलिए डॉ.रामविलास शर्मा ने भारतेंदु कालीन नवजागरण की व्याख्या करते हुए यह समझाने का प्रयास किया है कि "हिंदुस्तान की राष्ट्रीय चेतना सीधे अंग्रेज़ डाकुओं के कारनामों का विरोध करके बढ़ी। इसलिए हिंदुस्तान की राष्ट्रीय भावनाओं का तमाम नया साहित्य अंग्रेजी राज का विरोधी साहित्य है। अंग्रेज़ साम्राज्यवादियों ने भारतीय जनता को गुलामी की शिक्षा दी, सरकार ने उसके प्रतिरोध भावना को कुचलने की कोशिश की। इसके बावजूद जनता के समर्थक लेखक देश की संस्कृति की रक्षा और विकास के लिए आगे बढ़े।" भारतेंदु कालीन हिन्दी नवजागरण सन 1857 के प्रथम स्वाधीनता संघर्ष की उदय है, न कि केवल अंग्रेजी शिक्षा की। इस हिन्दी नवजागरण के मूल तत्व हैं - सामंत विरोध और साम्राज्य विरोध, जन-संस्कृति से लगाव, प्रेम-भक्ति और उदारतावाद,

स्वदेश-प्रेम और स्वदेशी आंदोलन, साहित्य को सामाजिक परिवर्तन का अस्त्र समझकर जन-जीवन से जुड़ा साहित्य-रचना, विज्ञान, शिल्प और उद्योग-धंधों के विकास से देश की प्रगति का स्वप्न, अध्यात्म और रहस्यवाद का विरोध। यह भी ध्यान रखने की बात है कि हिन्दी नवजागरण किसी भी प्रकार हिंदू पुनरुत्थानवाद तक सीमित नहीं था। इसीलिए स्वयं भारतेंदु ने आर्य समाज की विज्ञान विरोधी मान्यताओं का खंडन भी किया।

मध्यकाल में जिस प्रकार भक्ति आंदोलन ने देशव्यापी सार्वजनिक धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक आंदोलन का रूप लिया था उसी प्रकार समग्र देश की चेतना को प्रभावित करने का काम 1857 के प्रथम स्वाधीनता संघर्ष ने किया। इसने भारतवासियों की स्वाधीनता की चेतना को जगाने और उकसाने का काम किया। भारतेंदु युग में राष्ट्रीय भावना अंग्रेजों द्वारा भारत के आर्थिक शोषण के विरोध के रूप में देखी जा सकती है - अंग्रेज़ राज सुख साज सजे सब भारी।/ पै धन विदेश चलि जात इहै अति ख़्वारी॥ (भारतेंदु हरिश्चंद्र)

दरअसल, उन्नीसवीं शती का भारतीय नवजागरण बड़ी हद तक यूरोप की वैज्ञानिक संस्कृति और पुरानी भारतीय धार्मिक संस्कृति की टकराहट से पैदा हुआ था। नवजागरण के प्रवर्तक राजा राममोहन राय ने अपना चिंतन उपनिषदों से ग्रहण किया, पर उन्होंने हिंदू आराधना शैली की परंपरागत एकांतिक पद्धति को छोड़कर यूरोपीय चर्च का संगठन स्वीकार किया जिसमें पूजन की सामूहिक पद्धति प्रचलित थी। 'ब्रह्म समाज' की स्थापना उन्होंने 1828 में की, जिसकी प्रेरणा से बाद में महाराष्ट्र में 'प्रार्थना समाज' का जन्म हुआ। हिन्दी क्षेत्र में स्वामी दयानंद ने 'आर्य समाज' की नींव डाली। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने ठीक ही लिखा है कि "यह सिर्फ संयोग नहीं हैं कि इन संस्थाओं के नामकरण के उत्तर-पक्ष में समाज पर विशेष बल दिया गया है। हिंदू समाज को एकांतिक जीवन पद्धति के विरुद्ध उठे समाज के रूप में गठित करने का यह प्रयास बड़े सजग रूप में नवजागरण के मनीषियों ने किया।" इन तीनों मुख्य समाजों - ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज और आर्य समाज - में काफी समानता थी। ये निर्गुण ब्रह्म के उपासक हैं, आराधना की सामूहिक शैली पर बल देते हैं, हिंदू समाज के दो पिछड़े समूहों नारी और शूद्र को शेष उच्च वर्गीय समूहों के साथ समानता का दर्जा देते हैं। वेद, उपनिषद और गीता इनके चिंतन के केंद्र में हैं। संगठन का ढाँचा ईसाई चर्च के समान है। भारतीय हिंदू विचारधारा और पाश्चात्य ईसाई संगठन का सामंजस्य - यह इनके आंदोलन का मूलमंत्र है। याद रहे कि अध्यात्म का नवजागरण पहले लोकसेवा से जोड़ता है और फिर लोक सेवा को क्रमशः राष्ट्रीय भावना से। राममोहन राय से लेकर महात्मा गांधी तक की यह विचारधारा और कर्म-यात्रा को बनाने और बढ़ाने में रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, लोकमान्य तिलक और अरविंद जैसे संतों और विचारकों का योगदान रहा है।

छात्रो! हिन्दी में आधुनिकता के जनक कहे जाने वाले भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850-1885) जहाँ एक ओर अपने समय की यूरोप या पश्चिम-प्रेरित गतिशीलता से जुड़ना चाहते थे, वहीं दूसरी

ओर वे भारतीयता के स्वत्व को किसी कीमत पर खोना नहीं चाहते थे। 'स्वत्व निज भारत गहै' की गुहार लगाने वाले भारतेंदु आलोचनात्मक यथार्थवाद के पहले हिन्दी कवि हैं। परंपरा से अविनाशी विश्वनाथ शिव की नगरी 'काशी' का एक वर्णन भारतेंदु ने 'सत्य हरिश्चंद्र' नाटक की 'नव उज्ज्वल जलधार' कविता में किया है। उनकी 'प्रेम जोगिनी' (1894) नाटिका में भी काशी को लेकर एक कविता है, जो हिन्दी नवजागरण की चेतना की परिचायक है। 'देखी तुमरी कासी' शीर्षक इस कविता में विस्तार से वर्णन किया गया है कि काशी की आधी आबादी ब्राह्मण और संन्यासियों की है और आधी वेश्याओं और उनके दलालों की -

देखी तुमरी कासी लोगों देखी तुमरी कासी

****

मैली लगी भरी कतवारन खड़ी चमारिन पासी।
नीचे नल से बदबू उबलै मानो नरक चौरासी॥

काशी का यह पतन भारतीय समाज के मूल्यों के पतन का प्रतीक है। यही नहीं, भारतेंदु ने अपने नाटक 'अंधेर नगरी' (1881) में उपभोक्तावाद और बाजारवाद की विसंगतियों को बेनकाब करते हुए लिखा कि यह 'कलयुग' के बाद का 'छलयुग' है -

साँच कहै तो पनही खावै, झूठे बहुविधि पदवी पावै।
छलियन के एका के आगै, लाख कहौं एकहुं नहीं लागै॥

यह ठीक है कि 'भारत दुर्दशा' में भारतेंदु भारतवासियों से मिलकर रोने का आह्वान करते हैं 'आवह सब मिलै रोवहिं' पर उनकी मुख्य चिंता थी कि 'भारतवर्ष की उन्नति कैसे हो सकती है?' उनकी इसी चिंता से हिन्दी नवजागरण का यह मूल मंत्र प्रस्फुटित हुआ था कि 'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।/ बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को सूल॥'

बोध प्रश्न

- हिन्दी नवजागरण के मूल तत्व क्या हैं?
- ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज और आर्य समाज में क्या समानताएँ पाई जाती हैं?
- नवजागरण आंदोलन का मूलमंत्र क्या है?

13.3.4 भारतेंदु युग की नवजागरण चेतना

छात्रो! हिन्दी नवजागरण की चेतना को जगाने का बड़ा श्रेय 1857 ई. के 'प्रथम भारतीय स्वाधीनता संघर्ष' को जाता है। इसने ही हिन्दी नवजागरण के लिए जमीन तैयार की। यह कहा जा सकता है कि भारतेंदु युग हिन्दी भाषी क्षेत्र में जनजागरण की पहली अभिव्यक्ति थी। आप जानते हैं कि इस काल के रचनाकारों ने (प्रमुख रूप से गद्य लेखकों और पत्रकारों) ने रीतिकाल की साहित्यिक भाषा (ब्रजभाषा) को छोड़कर अपने समय की प्रचलित लोकभाषा (खड़ी बोली)

को अपनाया। आगे चलकर कविता के लिए भी खड़ी बोली स्वीकार कर ली गई। साहित्य की भाषा का यह बदलाव भी जनजागरण का एक लक्षण है। डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में, “जन जागरण की शुरूआत तब होती है जब यहाँ बोलचाल की भाषाओं में साहित्य रचा जाने लगता है, जब यहाँ विभिन्न प्रदेशों में आधुनिक जातियों का गठन होता है। यह सामंत विरोधी जन जागरण है।” भारत में अंग्रेजी राज कायम करने के सिलसिले में प्लासी की लड़ाई से 1857 के स्वाधीनता संग्राम तक जो भी युद्ध हुए वे इस जनजागरण की भूमिका की तरह हैं। परंतु 1857 का स्वाधीनता संघर्ष उनसे इस अर्थ में अलग है कि यहाँ मुख्य लड़ाई विदेशी साम्राज्य के खिलाफ है। एक सीमा तक राजभक्ति के स्वर के बावजूद भारतेंदु युग की मूल चेतना जिस राष्ट्रीयता और समाज सुधार की भावना से प्रेरित है, उसका 1857 ई. के संघर्ष से गहरा संबंध है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि भारतेंदु हरिश्चंद्र की रचनाओं में 1857 के स्वाधीनता संघर्ष का उल्लेख ‘सिपाही विद्रोह’ के रूप में मिलता है लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि वे उसकी केंद्रीय चेतना से अछूते थे। भारतेंदु और उनके साथी लेखक (भारतेंदु मंडल) का 1857 की चेतना से जुड़ाव दो आधारों पर देखा जा सकता है। ये हैं - (1) स्वाधीनता संघर्ष का उद्देश्य, तथा (2) ब्रिटिश राज के स्वरूप की पहचान। अगर 1857 के संघर्ष के उद्देश्य की बात करें, तो वह था - भारत वर्ष से अंग्रेजों को निकालना। जुलाई 1857 में अवध में जारी एक इश्तहार में सिपाहियों का आह्वान इन शब्दों में किया गया था - “तुम्हें कानपुर जैसी जगहों की तरफ बढ़ना चाहिए। कानपुर चलने में कौन सी कठिनाई है? अगर तुम्हें कानपुर के किले से डर लगता है, तो इलाहाबाद और कलकत्ते के किले जीतने का भार तुमने किसे सौंपा है?” यही नहीं, आगे कहा गया कि अंग्रेजों की निगाह दिल्ली और लखनऊ पर है, इन्हें बचाने के लिए सिपाहियों को सबसे पहले उपाय करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि यह स्वतंत्रता संघर्ष किसी एक राजे-राजवाड़े को बचाने के लिए नहीं, बल्कि देश के सभी हिस्सों को अंग्रेजों से आजाद कराने के लिए था। यह कहना उचित होगा कि भारतेंदु युग के रचनाकारों को जो युग विरासत में मिला था, उसके एक सिरे पर 1857 का विद्रोह था तो दूसरे सिरे पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (1885) के गठन जैसी राजनीतिक घटना थी। 1857 का संघर्ष अगर ‘औपनिवेशिक शक्ति के विरुद्ध भारतीय जनता का संग्राम’ था तो कांग्रेस का गठन उस शक्ति के साथ सामंजस्य का एक राजनीतिक प्रयास था जो बाद में राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष का मंच बन गया।

स्मरणीय है कि 1857 के संघर्ष में भारत के विभिन्न वर्गों की जनता के तरह-तरह के असंतोषों को अभिव्यक्ति मिली थी। अंग्रेजों की भूमि सुधार योजना ने एक विचित्र प्रकार की सामाजिक अव्यवस्था खड़ी कर दी थी। रियासतों को किसी न किसी बहाने हड़पने की अंग्रेज़ नीति के विरोध ने इस संघर्ष को जनता तथा राजे-रजवाड़े का साझा संघर्ष बना दिया। यही वजह है कि बाद में आम जनता का जबर्दस्त दमन किया गया तथा कठोर अधिनियम लागू किए गए। यह

तथ्य भी महत्वपूर्ण है कि "अंग्रेजों ने भारत पर अपना राज कायम करने के लिए और उस राज को बनाए रखने के लिए जो देशी फौज खड़ी की थी, वह विद्रोह कर रही थी। जिन हिंदू और मुसलमान सामंतों की जायदाद छीन ली गई थी, वे अंग्रेजों का विरोध कर रहे थे।" (डॉ. रामविलास शर्मा)। इससे इस संघर्ष का राष्ट्रीय स्वरूप स्वयं सिद्ध हो जाता है। अर्थात 1857 की यह संघर्ष विदेशी शासन से मुक्ति का अखिल भारतीय स्तर पर प्रथम संगठित प्रयास था।

यह चेतना हिन्दी क्षेत्र में प्रचलित सभी लोक भाषाओं में फैल रही थी। इस पूरे क्षेत्र को संबोधित करने के लिए भारतेंदु युग के लेखकों ने समय की नब्ज पहचानकर खड़ी बोली को अपनाया। इन लेखकों ने अपनी-अपनी पत्रिकाओं के माध्यम से खड़ी बोली में पूरे हिन्दी भाषी समुदाय को संबोधित किया। उनके इस प्रयास ने ही क्षेत्र को नवजागरण की चेतना से जोड़ने और जगाने का महान कार्य किया। अंग्रेज़ शासक तो इस क्षेत्र को संस्कृत साहित्य, धर्म, दर्शन और हिंदू विधियों के शिक्षण तक सीमित रखना चाहते थे, ताकि यहाँ आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा का प्रसार न हो सके। लेकिन हिन्दी के साहित्यकारों ने अंग्रेजों की मंशा को पहचान कर अपने लेखन और पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हिन्दी क्षेत्र को नए वैज्ञानिक चिंतन से जोड़ने का भरपूर प्रयास किया। भारतेंदु हरिश्चंद्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र आदि लेखक इस दृष्टि से हिन्दी नवजागरण के अग्रणी साहित्यकार हैं। इस काल में हिन्दी साम्राज्यवाद विरोधी तेवर से युक्त हो चली थी। इस 'नये चाल में ढली' हिन्दी में राजनीतिक व्यंग्य खूब लिखा गया। गद्य ही नहीं, पद्य भी। यथा, "चूरन साहेब लोग जो खाता।/ सारा हिन्दी हजम कर जाता।" (भारतेंदु हरिश्चंद्र)। अभिप्राय यह है कि 1857 के प्रथम स्वाधीनता संघर्ष ने हिन्दी साहित्य के माध्यम से घटित होने वाले हिन्दी क्षेत्र के नवजागरण को एक सुनिश्चित दिशा दी थी। इस काल के कवियों और लेखकों को अंग्रेज़ राज के चरित्र की पहचान थी और साथ ही राष्ट्रीय संघर्ष के उद्देश्य की समक्ष भी थी।

डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार, "यहाँ समझा जा सकता है कि बंगाल में आरंभ हुई पुनर्जागरण चेतना मध्य देश में पहुँच कर अधिक प्रखर रूप में राष्ट्रीय हो जाती है; और उसके वाहक बनते हैं भारतेंदु हरिश्चंद्र।" यहाँ तक कि भारतेंदु ने 'कवि वचन सुधा' जैसी साहित्यिक पत्रिका का भी उपयोग 'स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार का प्रतिज्ञापथ' (23 मार्च, 1874) प्रकाशित करने के लिए किया। भारतेंदु ने 1884 ई. में बलिया में दिए गए अपने व्याख्यान में यह आह्वान किया था कि "बंगाली, मराठा, पंजाबी, मद्रासी, वैदिक, जैन, ब्रह्मो, मुसलमान सब एक का हाथ एक पकड़ो।" इस प्रकार 'स्वदेशी की भावना और राष्ट्र की धर्मनिरपेक्ष परिकल्पना' में भारतेंदु का चिंतन आगे के स्वतंत्रता आंदोलन और भारतीय संविधान की रचना तक के लिए मार्गदर्शक सिद्ध होता है।

निष्कर्षतः 'हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास' में डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने भारतेंदु हरिश्चंद्र और नवजागरण की चेतना के संबंध को व्याख्या करते हुए यह लिखा है कि "हिन्दी

साहित्य में पुनर्जागरण भारतेंदु के माध्यम से अवतरित होता है; और तब वह स्वाभाविक है कि वे आधुनिक काल के प्रवर्तक माने जाते हैं। टैक्स, महामारी, धन के विदेशों में प्रवाह के विरुद्ध वे आवाज उठाते हैं, स्वदेशी और मातृभाषा के प्रयोग के लिए आग्रह करते हैं। और कृष्ण की अनंत प्रतीक्षा में आँखें खुली की खुली रह जाने का मार्मिक उल्लेख करते हैं। भारतेंदु के संदर्भ में यह आधुनिक मानव जीवन की समग्र प्रस्तावना है जो पुनर्जागरण की मुख्य भावभूमि है।”

बोध प्रश्न

- भारतेंदु युग की मूल चेतना क्या है?
- जन-जागरण का क्या लक्षण है?
- 1857 का स्वाधीनता संग्राम किस अर्थ में अलग है?
- भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का गठन क्यों किया गया था?

13.4 पाठ-सार

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल भारतीय समाज में आधुनिकता के आगमन के साथ जुड़ा हुआ है। आधुनिकता का अर्थ है - परिपाटी का बदलना। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में हमारे देश में मध्यकालीन परिपाटियाँ बदलने लगीं। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक क्षेत्र में नवजागरण ने आंदोलन का रूप ले लिया। बंगाल में इसका नेतृत्व राजा राममोहन राय ने किया और हिन्दी क्षेत्र में यह भूमिका साहित्य के माध्यम से भारतेंदु हरिश्चंद्र ने निभाई। नवजागरण का संबंध शिक्षा के आधुनिकीकरण और भोग्यवाद के स्थान पर वैज्ञानिक चिंतन के प्रसार से है। भारतेंदु युगीन साहित्य ने पत्र-पत्रिकाओं के सहारे इस चेतना का प्रचार-प्रसार किया। साथ ही इस काल में 1857 में भारत की आजादी के लिए पहला बड़ा सामूहिक संघर्ष हुआ। हालांकि अंग्रेजों ने बेहद क्रूरता के साथ इस आंदोलन का दमन कर दिया। लेकिन संघर्ष की जो चिंगारी 1857 में फूटी उसी ने बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में अंग्रेजों के खिलाफ स्वतंत्रता आंदोलन की ज्वाला का रूप ले लिया। इस प्रकार नवजागरण और प्रथम स्वतंत्रता संग्राम भारत के इतिहास की परिवतनकारी घटनाएँ सिद्ध हुईं। हिन्दी के साहित्यकारों ने इनके फैलाव में पूरी शक्तियों के साथ योगदान किया।

13.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं -

1. हिन्दी भाषी क्षेत्र में नवजागरण की चेतना को फैलाने में हिन्दी साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान है।
2. हिन्दी नवजागरण का नेतृत्व बड़ी सीमा तक भारतेंदु हरिश्चंद्र ने किया।
3. भारतेंदु हरिश्चंद्र पश्चिम से प्रेरित गतिशीलता से जुड़ना चाहते हुए भी भारतीयता की निजता को बचाए रखने के पक्षधर थे।
4. हिन्दी नवजागरण के दो पहलू हैं - स्वतंत्रता संघर्ष और सामाजिक परिवर्तन।

13.6 शब्द संपदा

1. आकांक्षा	=	अभिलाषा, इच्छा
2. चेतना	=	बुद्धि, ज्ञान
3. नवजागरण	=	जागृति
4. पारलौकिक	=	अलौकिक
5. पुनरुत्थानवाद	=	पुनर्जागरण
6. विसंगति	=	संगति का अभाव
7. संघर्ष	=	आगे बढ़ने के लिए होने वाला प्रयत्न

13.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. नवजागरण और प्रथम राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष की चर्चा कीजिए।
2. भारतेंदु युग की नवजागरण चेतना पर प्रकाश डालिए।
3. '1857 का संघर्ष औपनिवेशिक शक्ति के विरुद्ध भारतीय जनता का संग्राम था।' इस उक्ति की पुष्टि कीजिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. आधुनिकता का उदय किन परिस्थितियों में हुआ है? प्रकाश डालिए।
2. आधुनिकता और नवजागरण की दिशा में भारतीय समाज को शिक्षा ने कैसे प्रेरित की? स्पष्ट कीजिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए

1. ब्रह्म समाज की स्थापना कब हुई? ( )
   (अ) 1820 (आ) 1823 (इ) 1825 (ई) 1828
2. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का गठन कब हुआ? ( )
   (अ) 1865 (आ) 1875 (इ) 1885 (ई) 1895
3. इनमें से नवजागरण के अग्रणी साहित्यकार कौन नहीं हैं? ( )
   (अ) भारतेंदु (आ) बालकृष्ण भट्ट (इ) प्रतापनारायण मिश्र (ई) हरिवंशराय बच्चन

II रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

1. आलोचनात्मक यथार्थवाद के पहले हिन्दी कवि .... हैं।
2. भारतेंदु हरिश्चंद्र की रचनाओं में 1857 के स्वाधीनता संघर्ष का उल्लेख .... रूप में मिलता है।
3. भारतेंदु हरिश्चंद्र ने .... पत्रिका के माध्यम से नवजागरण चेतना को जगाया।

III सही विकल्प चुनिए

i) राजा राममोहन राय	(अ) नवजागरण
ii) दयानंद सरस्वती	(आ) ब्रह्म समाज
iii) भारतेंदु	(इ) आर्य समाज

13.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल
2. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, गणपतिचंद्र गुप्त
3. हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, विजयपाल सिंह
4. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह

इकाई 14 : हिन्दी गद्य का उद्भव और आरंभिक विकास

रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 मूल पाठ : हिन्दी गद्य का उद्भव और आरंभिक विकास

14.3.1 हिन्दी गद्य का उद्भव

14.3.1.1 आधुनिक काल के पूर्व गद्य की स्थिति

14.3.1.2 आरंभिक गद्य लेखक

14.3.2 आधुनिक काल में गद्य का विकास

14.3.3 भारतेंदु हरिश्चंद्र का गद्यलेखन

14.3.4 भारतेंदु युग के प्रमुख गद्यकार

14.4 पाठ सार

14.5 पाठ की उपलब्धियाँ

14.6 शब्द संपदा

14.7 परीक्षार्थ प्रश्न

14.8 पठनीय पुस्तकें

14.1 प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल को गद्य काल भी कहा जाता है। इससे पहले मुद्रण की सुविधा न होने के कारण पद्य अथवा कविता ही मुख्य रूप से रची जाती थी। छंदबद्ध होने के कारण कविता को याद रखना सरल था। इसीलिए नाटक के संवाद भी पद के रूप में ही होते थे। प्रिंटिंग प्रेस के आविष्कार के बाद यह मुश्किल आसान हो गई। पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं की छपाई की सुविधा ने पद के स्थान पर गद्य को बढ़ावा दिया। यह घटना उन्नीसवीं शताब्दी के लगभग मध्य की है। उस समय की राष्ट्रीय परिस्थितियों ने भी समाज सुधार और जन जागरण के लिए गद्य को बढ़ावा दिया। इस इकाई में हिन्दी गद्य के जन्म और आरंभिक विकास पर चर्चा की जा रही है।

14.2 उद्देश्य

छात्रो! इस इकाई के अध्ययन से आप –

- आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी गद्य की स्थिति को समझ सकेंगे।
- आरंभिक गद्य लेखकों के योगदान के बारे में जान सकेंगे।
- आधुनिक काल में गद्य के विकास से परिचित हो सकेंगे।

- आधुनिक गद्य के विकास में फोर्ट विलियम कॉलेज के योगदान को समझ सकेंगे।
- भारतेंदु हरिश्चंद्र के गद्यलेखन पर प्रकाश डाल सकेंगे।
- भारतेंदु युग के प्रमुख गद्यकारों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

14.3 मूल पाठ : हिन्दी गद्य का उद्भव और आरंभिक विकास

प्रिय छात्रो! आप जानते हैं कि हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल को 'गद्य काल' भी कहा जाता है। इसका कारण यह है कि इस काल में मुद्रण की सुविधा और पत्रकारिता का उदय होने से जन संपर्क और व्यापक संप्रेषण के लिए लिखित माध्यम का महत्व बढ़ गया था। इसलिए कविता के आलवा गद्य के विविध रूपों को विकसित होने का अवसर मिला।

14.3.1 हिन्दी गद्य का उद्भव

गद्य साहित्य आधुनिक काल की विशेषता है। इस काल में गद्य लेखन की मात्रा पद्य साहित्य से अधिक है। इसलिए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'आधुनिक काल' को 'गद्य काल' कहा था। आधुनिक काल में साहित्य धर्म और राज्य के आश्रय से व्यापक जनता के लिए लिखा गया। जनसाधारण के लिए पद्य की तुलना में गद्य में लिखा जाना स्वाभाविक भी है। वैसे आधुनिक काल के पूर्व भी हिन्दी गद्य का अस्तित्व था। परंतु उसे प्रमुखता आधुनिक काल में ही मिली।

बोध प्रश्न

- आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आधुनिक काल को 'गद्य काल' क्यों कहा?

14.3.1.1 आधुनिक काल के पूर्व गद्य की स्थिति

छात्रो! हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल से पूर्व भी गद्य लेखन के प्रमाण प्राप्त होते हैं। लेकिन उसका स्वरूप अविकसित था। आप जान चुके हैं कि आधुनिक काल से पहले तक साहित्य की भाषा मुख्यतः अवधी और ब्रज भाषा ही रहीं। इसीलिए उस समय की जो गद्य की रचनाएँ प्राप्त हैं उनकी भाषा ब्रज भाषा ही हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में यह स्पष्ट किया है कि आदिकाल में हठयोग और ब्रह्मज्ञान से संबंध रखने वाले कई गोरखपंथी ग्रंथ प्राप्त होते हैं जिनका रचना काल 1300 ई. के आसपास माना जाता है। इस प्रकार हिन्दी गद्य का प्रारंभिक रूप गोरखपंथी साधुओं की रचनाओं में मिलता है। यह गद्य राजस्थानी और ब्रज भाषा का मिश्रित रूप है। आगे चलकर गोसाईं विट्ठलनाथ कृत 'शृंगार रस मंडन' नामक ग्रंथ में भी ब्रज भाषा गद्य का प्रयोग मिलता है। शुक्ल जी के अनुसार यह गद्य अपरिमार्जित और अव्यवस्थित है। मध्यकाल की गोस्वामी गोकुलनाथ कृत 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' और 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' तथा हरिराय की 'सूरदास की वार्ता' भी गद्य रचनाएँ हैं। इनका रचनाकाल ईसा की 17 वीं शताब्दी का पूर्वार्ध माना जाता है।

नाभादास ने भी 1660 ई. के आसपास 'अष्टयाम' नामक ग्रंथ ब्रज भाषा गद्य में लिखा था। इसमें भगवान राम की दिनचर्या का वर्णन है। "अष्टयाम की रचना शृंगार-भक्ति अथवा रसिक-भक्ति को लेकर की गई है।"(हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. नगेंद्र, पृ.190)। 1623ई. के आसपास

वैकुंठमणि शुक्ल ने 'अगहन माहात्म्य' और 'वैशाख माहात्म्य' नामक दो छोटी-छोटी पुस्तकें लिखी। 1686 ई. में संस्कृत से कथा लेकर सूरति मिश्र ने 'बैताल पच्चीसी' लिखी। आगे चलकर लल्लूलाल ने इसका रूपांतरण खड़ी बोली में किया। इसके बाद 1703 ई. में ब्रज भाषा में रचित 'नासिकेतोपाख्यान' मिलता है। रामचंद्र शुक्ल के अनुसार इसकी भाषा व्यवस्थित थी। लाला हीरालाल ने 1795 ई. में 'आईने अकबरी की भाषा वचनिका' नाम की एक बड़ी पुस्तक लिखी। इसकी भाषा बोलचाल की हिन्दी है। अर्थात इसमें अरबी-फारसी मिश्रित हिन्दी प्रयोग मिलता है।

इस तरह आदिकाल से लेकर 18 वीं शती तक ब्रज भाषा गद्य की कुछ पुस्तकें पाई जाती हैं। लेकिन इनसे गद्य का विकास स्पष्ट नहीं होता। रामचंद्र शुक्ल के अनुसार "गद्य लिखने की परिपाटी का सम्यक प्रचार न होने के कारण ब्रज भाषा गद्य जहाँ का तहाँ रह गया। वैष्णव वार्ताओं में उसका जैसा परिष्कृत और सुव्यवस्थित रूप दिखाई पड़ा वैसा आगे चलकर नहीं।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल, पृ.278)। अतः जिस समय से गद्य के लिए खड़ी बोली का प्रयोग किया गया, उस समय से ही वास्तविक रूप से गद्य का विकास माना जाता है। उससे पहले तक हिन्दी गद्य का विकास नहीं हुआ था।

उल्लेखनीय है कि देश के विभिन्न भागों में दिल्ली के दरबारी शिष्टाचार के प्रचार के सहारे दिल्ली की खड़ी बोली शिष्ट समुदाय के परस्पर व्यवहार की भाषा बन गई। अमीर खुसरो ने आदिकाल में खड़ी बोली में कुछ मुकरियों और पहेलियों की रचना की थीं। अमीर खुसरो के बाद खड़ी बोली का विकास दक्षिणी राज्यों के रचनाकारों ने किया। दक्खिनी हिन्दी के रूप में 14 वीं से 18 वीं शताब्दी तक अनेक ग्रंथों की रचनाएँ हुईं। 1635 ई. में मुल्ला वजही ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'सबरस' की रचना की। औरंगजेब के समय में खड़ी बोली या रेख्ता में शायरी भी आरंभ हुई। इसका प्रचार फारसी पढ़े-लिखे लोगों में बढ़ता गया। इस खड़ी बोली में अरबी-फारसी के शब्दों की बहुलता के कारण यह उर्दू कहलाने लगी। दूसरी तरफ हिंदुओं के शिष्ट समुदाय में तत्सम और तद्भव की प्रधानता के कारण यह हिन्दी कहलाई। भक्तिकाल के आरंभ में निर्गुणधारा के संत कवियों ने खड़ी बोली का व्यवहार अपनी 'सधुक्कड़ी' भाषा में किया। अकबर के समय गंग कवि ने 'चंद छंद बरनन की महिमा' नामक एक पुस्तक खड़ी बोली में लिखी थी।

1741 ई. में रामप्रसाद निरंजनी ने 'भाषा योगवाशिष्ठ' नाम का गद्य ग्रंथ खड़ी बोली में लिखा था। रामचंद्र शुक्ल का मत है कि 'भाषा योगवाशिष्ठ' को परिमार्जित गद्य की प्रथम पुस्तक और रामप्रसाद निरंजनी को प्रथम प्रौढ़ गद्य लेखक मान सकते हैं। 1761 ई. में बसवा (मध्य प्रदेश) निवासी पं.दौलतराम ने 'जैन पद्मपुराण' का भाषानुवाद किया।

रीतिकाल समाप्त होते-होते देश में अंग्रेजों का राज्य स्थापित हो गया था। उन्हें भारत की भाषा सीखने की आवश्यकता हुई और वे गद्य की खोज करने लगे। उन्हें उर्दू और हिन्दी दोनों प्रकार की पुस्तकों की आवश्यकता हुई। इसलिए फोर्ट विलियम कॉलेज की ओर से उर्दू और हिन्दी

गद्य पुस्तकें लिखने की व्यवस्था की गई। लेकिन उसके पहले भी हिन्दी खड़ी बोली में गद्य की कई पुस्तकें लिखी जा चुकी थीं। अंग्रेजों की ओर से पुस्तकें लिखने की व्यवस्था के एक-दो वर्ष पहले ही मुंशी सदासुखलाल की 'ज्ञानोपदेशावली' और इंशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' लिखी जा चुकी थीं। इसलिए यद्यपि यह तो नहीं कहा जा सकता कि अंग्रेजों की प्रेरणा से ही हिन्दी खड़ी बोली गद्य का प्रारंभ हुआ, लेकिन यह अवश्य सत्य है कि उनके माध्यम से इसे गति और विस्तार मिला।

फोर्ट विलियम कॉलेज

सन 1800 ई. लार्ड वेलेजली के समय में कोलकाता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना हुई। संपूर्ण भारत में शांति स्थापित करना और ब्रिटिश प्रदेशों को स्थायी सुरक्षा प्रदान करना लार्ड वेलेजली के समक्ष उपस्थित मुख्य चुनौती थी। इसके लिए उन्होंने पुरानी नीति में आमूलचूल परिवर्तन किया। उन्होंने साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण करते हुए ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार किया। साथ ही उन्होंने कुशल प्रशासन देने के लिए योग्य कर्मचारियों की आवश्यकता का अनुभव किया। इसके लिए एक ऐसी संस्था की आवश्यकता महसूस की गई जो व्यवस्थित रूप से कुशल और शिक्षित प्रशासनिक कर्मचारियों को तैयार कर सके। अतः जॉन गिल क्राइस्ट की अध्यक्षता में लार्ड वेलेजली ने 'ओरियंटल सेमिनरी' की स्थापना की, जो बाद में 'फोर्ट विलियम कॉलेज' के रूप में परिवर्तित हुई।

1803 ई. में कोलकाता के फोर्ट विलियम कॉलेज के 'हिंदुस्तानी विभाग' के अध्यक्ष जॉन गिल क्राइस्ट ने देशी भाषा की गद्य पुस्तकें तैयार करने की व्यवस्था की। उन्होंने हिन्दी और उर्दू दोनों के लिए अलग-अलग प्रबंध किया। प्रेस के आगमन से पुस्तकों के मुद्रण में सुविधा होने लगी। लेखन में मुद्रण की सुविधा के लिए विराम चिह्नों का प्रचलन इसी समय से प्रारंभ हुआ। फोर्ट विलियम कॉलेज के माध्यम से पहली बार हिन्दी भाषा में आधुनिक प्रणाली के शब्दकोश की रचना हुई। इसी विद्यालय के प्राध्यापकों द्वारा ब्रजभाषा के व्याकरण के सिद्धांतों का पहली बार विवेचन हुआ। हिन्दी गद्य में छोटी-छोटी कहानियाँ भी सबसे पहले यहीं प्रस्तुत की गईं। जॉन गिल क्राइस्ट द्वारा लिखित अनेक ग्रंथ भारतीय साहित्य के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध हुए, जो इस प्रकार हैं - ए डिक्शनरी ऑफ इंगलिश एंड हिंदुस्तानी (दो भाग), द हिन्दी अरेबिक टेबल, कंपेरेटिव आल्फ़ाबेट-रोमन, नागरी एंड पर्शियन तथा द हिन्दी डाइरेक्टरी ऑर स्टूडेंट्स डाइरेक्टरी टु द हिंदुस्तानी लैंग्वेज़।

फोर्ट विलियम कॉलेज के आश्रय में लल्लूलाल ने खड़ी बोली के गद्य में 'प्रेमसागर' और सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' लिखा। भारतेंदु के पूर्व खड़ी बोली गद्य को आगे बढ़ाने में सदासुखलाल, इंशा अल्ला खाँ, लल्लूलाल और सदल मिश्र की भूमिका महत्वपूर्ण है। इसी कॉलेज में हिन्दी के अन्य विद्वान थे - गंगा प्रसाद शुक्ल, नरसिंह, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, दीन बंधु और शेष शास्त्री।

यह भी याद रखना चाहिए कि फोर्ट विलियम कॉलेज से ही भारत में प्रिंटिंग प्रेस का तेजी से विकास हुआ क्योंकि कॉलेज में नित नई पुस्तकें तैयार होती थीं। प्रिंटिंग प्रेस के आगमन के प्रभाव से आधुनिक भारतीय भाषाओं में टाइप और विराम चिह्नों का प्रयोग भी शुरू हुआ। कॉलेज अपने जीवन काल में स्थानीय शोध और अध्ययन का सांस्कृतिक केंद्र बना रहा। इसने महत्वपूर्ण पांडुलिपियों को जन्म दिया। कॉलेज का विशेष योगदान आम जनता के लिए पुस्तकालय खोलना भी था।

बोध प्रश्न

- आधुनिक काल से पहले तक साहित्य की भाषा क्या थी?
- ब्रजभाषा गद्य का प्रारंभिक रूप किन की रचनाओं में मिलता है?
- गद्य का वास्तविक विकास कब से माना जा सकता है?
- रामचंद्र शुक्ल ने किस पुस्तक को परिमार्जित गद्य की प्रथम पुस्तक माना?
- रामचंद्र शुक्ल ने किस रचनाकार को प्रथम प्रौढ़ गद्य लेखक माना?
- हिन्दी के आरंभिक गद्य लेखक कौन हैं?
- फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना कब हुई?
- फोर्ट विलियम कॉलेज का क्या योगदान रहा?

14.3.2 आधुनिक काल में गद्य का विकास

छात्रो! आप जान ही चुके हैं कि आधुनिक काल के पूर्व खड़ी बोली गद्य को आगे बढ़ाने में विशेष रूप से सदासुखलाल, इंशा अल्ला खाँ, लल्लूलाल और सदल मिश्र ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना से भारतीय समाज में अनेक परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों का संबंध हिन्दी गद्य के विकास से भी है। ईस्ट इंडिया कंपनी के आने के बाद ईसाई धर्म प्रचारकों ने भारत में अपनी गतिविधियाँ तेज कीं। इनके परिणामस्वरूप हिन्दी गद्य का विकास हुआ। उत्तर भारत में जन सामान्य की बोलचाल की भाषा हिन्दी थी। अतः धर्म प्रचार के लिए बाइबिल का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया गया।

इसके अलावा, अंग्रेजों ने अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए मुद्रण, यातायात और जनसंचार के साधनों का विकास तथा प्रयोग किया। मुद्रण की सुविधा से पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। 1826 ई. में कोलकाता से पंडित जुगल किशोर शुक्ल ने हिन्दी के प्रथम पत्र 'उदंत मार्तंड' का प्रकाशन प्रारंभ किया। यह साप्ताहिक पत्र था। लेकिन 1827 ई. में यह बंद हो गया। 1829 ई. में कोलकाता से 'बंगदूत' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इसी तरह 1845 ई. में कोलकाता से 'प्रजामित्र', बनारस से 'बनारस अखबार' तथा 1846 ई. में 'मार्तंड' का प्रकाशन हुआ। इन पत्र-पत्रिकाओं ने हिन्दी गद्य को खूब विकसित और परिमार्जित किया।

1835 ई. में मैकाले ने भारत में शिक्षा प्रसार के लिए अंग्रेजी शिक्षा पद्धति की नींव रखी। इस देश में इससे पूर्व शिक्षा फारसी और संस्कृत के माध्यम से दी जाती थी। 1800 ई. में स्थापित फोर्ट विलियम कॉलेज में हिन्दी पढ़ाने का विशेष प्रबंध 1824 ई. में हुआ। 1823ई. में आगरा कॉलेज की स्थापना हुई जिसमें हिन्दी शिक्षण का विशेष प्रबंध हुआ। शिक्षा विस्तार से भी हिन्दी गद्य का विकास हुआ। 1825 ई. से लेकर 1862 ई. के बीच शिक्षा संबंधी अनेक पुस्तकें हिन्दी में निकलीं। उनमें से प्रमुख हैं पं. वंशीधर की पुष्पवाटिका, भारत वर्षीय इतिहास और जीविका परिपाटी। पं. श्रीलाल ने 1852 ई. में पत्रमालिका बनाई। बिहारीलाल ने गुलिस्ताँ के आठवें अध्याय का हिन्दी अनुवाद 1862 ई. में किया। पं. बद्रीलाल ने 1862 ई. में 'हितोपदेश' का अनुवाद किया। राजा लक्ष्मण सिंह ने 1851 ई. में 'प्रजा हितैषी' पत्र निकाला और 1862 ई. में 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' का अनुवाद हिन्दी में किया। दयानंद सरस्वती ने 1863 ई. में हिन्दी में 'सत्यार्थ प्रकाश' लिखा। उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज के प्रभाव से हिन्दी गद्य का प्रचार तेजी से हुआ। पं. श्रद्धाराम फुल्लौरी ने 'आत्म चिकित्सा' नाम की एक अध्यात्म संबंधी पुस्तक 1871 ई. में लिखी। साथ ही, भारतेंदु हरिश्चंद्र तथा भारतेंदु मंडल के गद्य लेखकों ने हिन्दी गद्य को सुव्यवस्थित रूप से विकसित किया।

आधुनिक हिन्दी गद्य के विकास में भारतेंदु से पहले दो राजाओं, राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' और राजा लक्ष्मण सिंह का योगदान अविस्मरणीय है।

राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' (1823 ई. - 1895 ई.)

राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' हिन्दी, उर्दू, फारसी, संस्कृत, अंग्रेजी और बंगला के ज्ञाता थे। वे हिन्दी को 'पाठ्यक्रम की भाषा' बनाने के प्रबल पक्षधर थे । वे ब्रिटिश शासन के निष्ठावान सेवक थे। वे 'आम फहम और खास पसंद' भाषा के पक्षधर थे। 'आम फहम' से उनका अभिप्राय साधारण जनता के लिए सहज बोधगम्य भाषा से था। लेकिन 'खास पसंद' की कसौटी उस जमाने का अरबी-फारसी पढ़ा शिक्षित समाज था। इसलिए वे ऐसी हिन्दी चाहते थे जिसमें अरबी-फारसी के शब्दों का अधिक प्रयोग हो। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने इन्हें अपना गुरु मानते हुए भी इनके अरबी-फारसी प्रेम के लिए इनकी भाषा नीति का विरोध किया। इनकी कृतियों में राजा भोज का सपना, आलसियों का कोडा, वीरसिंह का वृत्तांत, अंग्रेजी अक्षरों को सीखने का उपाय, हिंदुस्तान के पुराने राजाओं का हाल आदि उल्लेखनीय हैं। उन्हें विपरीत परिस्थितियों में भी हिन्दी को शिक्षा विभाग में प्रवेश दिलाने का श्रेय प्राप्त है।

राजा लक्ष्मण सिंह (1826 ई.- 1896 ई.)

राजा लक्ष्मण सिंह हिन्दी और उर्दू को दो अलग-अलग भाषाएँ मानते थे। उन्होंने 1841 में आगरा से 'प्रजा हितैषी' नामक पत्र निकाला। उन्होंने मेघदूत, रघुवंश, शकुंतला आदि का हिन्दी में अनुवाद किया। रघुवंश की भूमिका में उन्होंने अपनी भाषा संबंधी नीति को स्पष्ट करते हुए

हिन्दी को उर्दू से भिन्न भाषा घोषित किया। अपने हठ के कारण, हिन्दी में से उन्होंने चिरप्रचलित तथा सर्वग्राह्य फारसी शब्दों को भी अलग कर दिया था। (हिन्दी साहित्य कोश. भाग 2. पृ.541)। उन्होंने सरल, सुबोध और सरस हिन्दी का आदर्श उपस्थित किया। लेकिन इनका शुद्धतावादी कट्टरपन आगे भारतेंदु हरिश्चंद्र जैसे लेखकों को पसंद नहीं आया।

बोध प्रश्न

- हिन्दी के प्रथम समाचार पत्र का प्रकाशन कब और कहाँ हुआ और उसके संपादक कौन हैं?
- हिन्दी गद्य के विकास में राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' का क्या योगदान है?
- 'प्रजा हितैषी' के संपादक कौन थे?
- हिन्दी भाषा के बारे में राजा लक्ष्मण सिंह की मान्यता क्या थी?
- हिन्दी को 'पाठ्यक्रम की भाषा' बनाने के प्रबल पक्षधर कौन थे?
- श्रद्धाराम फुल्लौरी ने किन पुस्तकों की रचना की?

14.3.3 भारतेंदु हरिश्चंद्र का गद्यलेखन

रामचंद्र तिवारी ने भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850 ई.-1885 ई.) को 'आधुनिक हिन्दी साहित्य के जन्मदाता और भारतीय नवोत्थान के प्रतीक' माना है। रामविलास शर्मा उन्हें 'हिन्दी की जातीय परंपरा के संस्थापक' मानते थे, क्योंकि उन्होंने खड़ी बोली गद्य को साहित्यिक रूप दिया। रामविलास शर्मा के अनुसार "हिंदुस्तानी प्रदेश के मजदूर वर्ग में अवधी, ब्रज आदि बोलने वाले लोग हैं। इनका सामान्य परिवेश और सामान्य आर्थिक संबंध उन्हें एक सामान्य भाषा बोलने पर मजबूर करते हैं। यह भाषा खड़ी बोली या हिंदुस्तानी होती है। भारतेंदु भोजपुरी क्षेत्र के थे, प्रतापनारायण मिश्र अवध के, राधाचरण गोस्वामी ब्रज के; इन सबने गद्य के लिए खड़ी बोली को अपनाया। यह विकास उन्नीसवीं सदी में हुआ, किंतु उसका आरंभ पहले हो चुका था।" (रामविलास शर्मा, भारतेंदु हरिश्चंद्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, पृ. 25)।

भारतेंदु ने साहित्य के माध्यम से जनता को चेताया। 1867 ई. में उन्होंने 'कवि वचन सुधा' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इसके संपादक भारतेंदु थे। इस पत्र ने हिन्दी साहित्य को नया आयाम प्रदान किया। मई 1876 ई. की 'कवि वचन सुधा' में उन्होंने एक विज्ञप्ति प्रकाशित की थी। इससे भारतेंदु युग की मूल प्रवृत्तियों को समझने में सहायता मिलती है। गाँवों में ग्रामीण भाषा में ही लिखे गए गीतों द्वारा प्रचार का महत्व समझाते हुए भारतेंदु लिखते हैं - 'जो बात साधारण लोगों में फैलेगी, उसी का प्रचार सार्वदेशिक होगा।' वे अपने जन-साहित्य की रचना कचहरियों की भाषा में नहीं कर सकते थे। उसके लिए जनता की भाषा को अपनाना आवश्यक था। उन्होंने हिन्दी गद्य का एक रूप स्थिर कर दिया कि वह कोर्ट कचहरी की भाषा में नहीं, बल्कि आम जनता की भाषा

में रचा जाना चाहिए। भारतेंदु हरिश्चंद्र न तो राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' के अरबी-फारसी प्रधान हिन्दी के समर्थक थे और न ही उन्हें राजा लक्ष्मण सिंह की संस्कृतनिष्ठ हिन्दी स्वीकार थी। उन्होंने मध्यमार्ग अपनाया और बोलचाल की हिन्दी को अपनाने का समर्थन किया। इसे ही आगे चलकर प्रेमचंद और गांधी जी ने भी अपनाया।

पंडित रघुनाथ, पं.सुधाकर द्विवेदी, पं.रामेश्वरदत्त व्यास आदि के प्रस्तावानुसार हरिश्चंद्र को 'भारतेदु' की उपाधि से विभूषित किया गया। लोग उन्हें 'अजातशत्रु' भी कहते थे। "वे हास्य और विनोदप्रिय थे। वे अपने देश-प्रेम, भाषा और साहित्य-प्रेम और ईश्वर-प्रेम के लिए प्रसिद्ध थे।" (सं. धीरेंद्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश. भाग 2. पृ. 408)।

भारतेंदु ने 1873 ई. में लिखा है कि - 'हिन्दी नए चाल में ढली।' अर्थात उनके अनुसार हिन्दी गद्य को एक सुनिश्चित रूप 1873 ई. से मिला। डॉ. श्यामसुंदर दास के अनुसार, लल्लूलाल ने जिस भाषा को नया रूप दिया, लक्ष्मण सिंह ने जिसे सुधारा, उसको परिमार्जित करने का श्रेय भारतेंदु हरिश्चंद्र को जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आधुनिक काल के प्रथम उत्थान को भारतेंदु युग कहा है। आधुनिक हिन्दी साहित्य के युग प्रवर्तक की ख्याति भारतेंदु हरिश्चंद्र को प्राप्त हुई। डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त की मान्यता है कि "युग परिवर्तन, युग प्रवर्तन एवं युग का नेतृत्व करने के लिए केवल युग का ज्ञान या बोध पर्याप्त नहीं है, उस ज्ञान को या बोध को सच्ची अनुभूति एवं सहज अभिव्यक्ति के माध्यम से जन साधारण के हृदय तक पहुँचा देने की क्षमता भी अपेक्षित है। निःसंदेह भारतेंदु हरिश्चंद्र में यह क्षमता थी और इसी बल पर वे अपने युग को सच्चा एवं सफल नेतृत्व प्रदान कर सके।" (गणपतिचंद्र गुप्त, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, पृ. 614)।

भारतेंदु के गद्य लेखन में विविध आयामों को देखा जा सकता है। उनके गद्य लेखन को तत्कालीन परिवेश से जोड़ कर ही समझा जा सकता है। उनके साहित्य में तत्कालीन समाज को भलीभाँति देखा जा सकता है। उन्होंने सामाजिक विसंगतियों पर खुलकर प्रहार किया था। भारतेंदु की प्रतिभा के संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा का यह कथन उल्लेखनीय है - "उनकी प्रतिभा इस बात में प्रकट हुई कि उन्होंने अपने युग की आवश्यकताओं को पहचाना और पहचान कर तुरंत ही कमर कसकर कर्मक्षेत्र में कूद पड़े।" (रामविलास शर्मा, भारतेंदु हरिश्चंद्र, पृ.118)।

भारतेंदु युग में अनेक नवीन गद्य रूपों का विकास हुआ जिनका माध्यम खड़ी बोली थी। ये नए रूप हैं - पत्रकारिता, उपन्यास, कहानी, नाटक, आलोचना और निबंध। इस काल में अनेक पत्र-पत्रिकाओं का खूब प्रचलन हुआ। भारतेंदु स्वयं कवि वचन सुधा, भारतेंदु मैगज़ीन और हरिश्चंद्र चंद्रिका का संपादन करते थे।

बोध प्रश्न

- आधुनिक हिन्दी साहित्य के युग प्रवर्तक की ख्याति किस को प्राप्त हुई?
- आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आधुनिक काल के प्रथम उत्थान को क्या कहा है?

- 'कवि वचन सुधा' का प्रारंभ कब हुआ?
- भारतेंदु हरिश्चंद्र किन-किन पत्रों के संपादक थे?

14.3.4 भारतेंदु युग के प्रमुख गद्यकार

भारतेंदु के जीवन काल में लेखकों और कवियों का एक मंडल तैयार हो गया था। इसे भारतेंदु मंडल के नाम से जाना जाता है। इस मंडल के लेखकों ने साहित्य और जीवन के संबंधों को पहचाना तथा नवजागरण की भूमिका को पहचानकर उससे साहित्य को समृद्ध किया। भारतेंदु मंडल के कुछ प्रमुख साहित्यकार हैं –

बालकृष्ण भट्ट (1844 ई.-1914 ई.)

पंडित बालकृष्ण भट्ट ने 'हिन्दी प्रदीप' के माध्यम से गद्य के मार्ग को प्रशस्त किया। उन्होंने सामाजिक, राजनैतिक, साहित्यिक और नैतिक अनेक विषयों पर लेख लिखे। वे अपने युग के सर्वाधिक प्रगतिशील लेखक थे। वे विचारात्मक निबंधों के लिए जाने जाते थे। मनोवैज्ञानिक विषयों पर गंभीर चिंतन का कार्य प्रारंभ करने का श्रेय भट्ट जी को जाता है। उनकी भाषा में पूर्वीपन का प्रभाव देखा जा सकता है। बाबू गुलाबराय का कहना है कि भट्ट जी की भाषा में मुहावरों का सटीक प्रयोग हुआ है। इनके वाक्य बड़े-बड़े होते हैं। संस्कृत के उदाहरणों का भी समावेश रहता है।

प्रतापनारायण मिश्र (1856 ई.-1894 ई.)

प्रतापनारायण मिश्र अपनी विनोदप्रियता के लिए जाने जाते हैं। उनकी भाषा में व्यंग्यपूर्ण वक्रता को देखा जा सकता है। रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि "प्रतापनारायण मिश्र की प्रकृति विनोदशीलता थी। अतः उनकी भाषा बहुत ही स्वच्छंद गति से बोलचाल की चपलता और भावभंगिमा लिए चलती है। हास्य-विनोद की उमंग में वह कभी-कभी मर्यादा का अतिक्रमण करती, पूरबी कहावतों और मुहावरों की बौछार भी छोड़ती चलती है।" (रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 309)। उन्होंने कानपुर से 1880 ई. में 'ब्राह्मण' पत्रिका निकाली। इस पत्रिका के माध्यम से वे विविध विषयों पर गद्य लिखते थे। ।

बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' (1855 ई.-1922 ई.)

बद्रीनारायण चौधरी का उपनाम 'प्रेमघन' है। वे 'नागरी नीरद' नामक साहित्यिक पत्र और 'आनंद कादंबिनी' नामक साप्ताहिक पत्र के संपादक थे। उन्होंने अपनी साहित्यिक यात्रा कवि के रूप में प्रारंभ की थी। इनकी खड़ी बोली की अधिकांश रचनाओं में समसामायिक सामाजिक-राजनैतिक चेतना निहित है। सफल नाटककार के रूप में इन्हें ख्याति प्राप्त है। रामचंद्र शुक्ल प्रेमघन को विश्लेषण शैली के गद्य लेखक मानते थे। उनके अनुसार प्रेमघन "गद्य रचना को एक कला के रूप में ग्रहण करने वाले - कलम की कारीगरी समझने वाले - लेखक थे और कभी-कभी ऐसे पेचीदे मजूमन बाँधते थे कि पाठक एक-एक डेढ़-डेढ़ कालम के लंबे वाक्य में उलझा रह जाता था।" (रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 319)। सन 1881 ई. में मीरजापुर से

उन्होंने 'आनंद कादंबिनी' निकाला था। 'नागरी नीरद' नाम से साप्ताहिक पत्रिका भी निकाली थी। "उन्होंने हिन्दी में सम्यक आलोचना का सूत्रपात किया।" (सं. धीरेंद्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश. भाग 2, पृ. 368)।

लाला श्रीनिवास दास (1850 ई.-1907 ई.)

श्रीनिवास दास का महत्वपूर्ण उपन्यास 'परीक्षा गुरु' 1882 ई. में प्रकाशित हुआ था। इसे हिन्दी का प्रारंभिक उपन्यास होने का श्रेय प्राप्त है। रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि "चारों लेखकों (हरिश्चंद्र, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट और प्रेमघन) में प्रतिभाशालियों का मनमौजीपन था, पर लाला श्रीनिवास दास व्यवहार में दक्ष और संसार का ऊँचा-नीचा समझने वाले पुरुष थे। अतः उनकी भाषा संयत और साफ-सुथरी तथा रचना बहुत कुछ सोद्देश्य होती थी।" (रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.322)। 'परीक्षा गुरु' के निवेदन में श्रीनिवास दास ने लिखा है कि "संस्कृत अथवा फारसी-अरबी के कठिन शब्दों की बनाई हुई भाषा के बदले दिल्ली के रहने वालों की साधारण बोलचाल पर ज्यादा दृष्टि रखी गई है। अलबत्ता जहाँ कुछ विद्या का विषय आ गया है, वहाँ विवश होकर कुछ शब्द संस्कृत आदि के लेने पड़े हैं।" (लाला श्रीनिवास दास, परीक्षा गुरु, श्रीनिवास दास ग्रंथावली. पृ.155)। इस प्रकार उन्होंने कथा साहित्य के लिए बोलचाल की भाषा के प्रयोग का मार्ग प्रशस्त किया।

राधाकृष्ण दास (1865 ई.-1907 ई.)

राधाकृष्ण दास मूलतः नाटककार थे। साथ ही वे कवि, उपन्यासकार, जीवनी लेखक, निबंधकार और पत्रकार भी थे। रवींद्र भ्रमर लिखते हैं कि "राष्ट्रीयता और समाज सुधार की भावना से प्रेरित होकर लिखने वाले भारतेंदु युगीन साहित्यकारों में आप (राधाकृष्ण दास) का नाम अग्रगण्य है। आपके नाटकों की भाषा-शैली सहज, बोधगम्य और मनोरंजक है। निबंध विवेकपूर्ण गंभीर भाषा-शैली में लिखे गए हैं। राधाकृष्ण दास आजीवन 'निजभाषा उन्नति' के मंत्र से चालित रहे। नागरी प्रचारिणी पत्रिका के संपादक के रूप में आपकी हिन्दी के प्रति की गई सेवाएँ चिरस्मरणीय हैं।" (सं. धीरेंद्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश. भाग 2, पृ. 495)।

बोध प्रश्न

- मनोवैज्ञानिक विषयों पर गंभीर चिंतन का कार्य प्रारंभ करने का श्रेय किसको जाता है?
- 'ब्राह्मण' पत्रिका का प्रकाशन कब हुआ?
- 'नागरी नीरद' पत्रिका के संपादक कौन हैं?
- हिन्दी के प्रथम उपन्यास का नाम बताइए।

14. 4 पाठ-सार

आधुनिक काल से पहले भी हिन्दी में गद्य लेखन के कुछ उदाहरण मिलते हैं। लेकिन वे किसी परंपरा का निर्माण नहीं कर सके। इसलिए हिन्दी गद्य का उद्भव वही से मानना होगा जहाँ से वह लगातार चलने वाली धारा के रूप में मिलता है। इस दृष्टि से 1741 ई. में रचित 'रामप्रसाद

निरंजनी' का ग्रंथ 'भाषायोगवशिष्ठ' खड़ी बोली गद्य का प्रथम ग्रंथ माना जाता है। आगे फोर्ट विलियम कॉलेज के कायम होने पर चार आरंभिक गद्य लेखकों ने हिन्दी गद्य को समृद्ध करने का कार्य किया। इनके नाम हैं - सदासुखलाल, इंशा अल्ला खाँ, लल्लूलाल और सदल मिश्र। इसी काल में हिन्दी गद्य के स्वरूप को लेकर एक बहस भी छिड़ी। इस बहस में दो राजाओं का बड़ा योगदान रहा। राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' जहाँ हिन्दी में अरबी-फारसी शब्दों को स्वीकार करने के पक्षधर थे वहीं राजा लक्ष्मण सिंह इन्हें हिन्दी में स्वीकार करने के पक्ष में नहीं थे। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने इन दोनों के बीच का रास्ता अपनाया और जन प्रचलित खड़ी बोली को हिन्दी गद्य के लिए स्वीकार किया। उनके इसी आदर्श का भारतेंदु मंडल के अन्य गद्य लेखकों ने भी अनुसरण किया।

14.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं -

1. आधुनिक काल में परिमार्जित गद्य की प्रथम पुस्तक 'भाषायोगवशिष्ठ' है जिसकी रचना रामप्रसाद निरंजनी ने 1714 ई. में की थी।
2. 1800 ई. में कोलकाता में स्थापित फोर्ट विलियम कॉलेज ने जॉन गिल क्राइस्ट के निर्देशन में हिन्दी में पुस्तकें तैयार कराई जिससे हिन्दी गद्य शैली का बहुत विकास हुआ।
3. आरंभिक गद्य लेखकों ने अलग-अलग प्रकार की गद्य शैलियाँ अपनाई जिससे आगे के लेखकों का मार्ग प्रशस्त हुआ।
4. संस्कृतनिष्ठ हिन्दी और अरबी-फारसी प्रधान हिन्दी को आम जनता के लिए सहज न मानते हुए भारतेंदु हरिश्चंद्र ने इनके बीच का मार्ग अपनाया। संस्कृत और अरबी-फारसी के जन प्रचलित शब्दों के साथ लोकभाषा की शब्दावली को स्वीकार करने वाली भाषा को भारतेंदु हरिश्चंद्र ने हिन्दी गद्य के लिए आदर्श माना।
5. बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', बालमुकुंद गुप्त, लालाश्रीनिवास दास और राधाकृष्ण दास जैसे लेखकों ने भारतेंदु के साथ हिन्दी के आरंभिक गद्य का विकास किया। इन लेखकों को सामूहिक रूप से 'भारतेंदु मंडल' के नाम से जाना जाता है।

14.6 शब्द संपदा

1. अतिक्रमण	=	सीमा का उल्लंघन, हद से आगे जाना
2. अपेक्षित	=	जिसकी अपेक्षा या आशा की गई हो, जिसे चाहा गया हो
3. अभिव्यक्ति	=	मन के भाव को प्रकट करना
4. उन्नायक	=	ऊँचा करने वाला, उन्नति की ओर ले जाने वाला
5. चिरस्मरणीय	=	सदा याद किया जाने वाला
6. परिमार्जित	=	स्वच्छ किया गया, जिसका परिष्करण हुआ हो

14.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. आधुनिक काल के पूर्व गद्य की स्थिति पर प्रकाश डालिए।
2. गद्य के विकास में फोर्ट विलियम कॉलेज के महत्व को स्पष्ट कीजिए।
3. आधुनिक हिन्दी गद्य के विकास में भारतेंदु के योगदान को स्पष्ट कीजिए।
4. आधुनिक हिन्दी गद्य के विकास में भारतेंदु युग के गद्यकारों की चर्चा कीजिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. आरंभिक हिन्दी गद्य के विकास में सदासुखलाल के योगदान पर प्रकाश डालिए।
2. आरंभिक हिन्दी गद्य के विकास में इंशा अल्ला खाँ के योगदान पर प्रकाश डालिए।
3. आरंभिक हिन्दी गद्य के विकास में सदल मिश्र के योगदान को निरूपित कीजिए।
4. आरंभिक हिन्दी गद्य के विकास में लल्लूलाल के योगदान पर प्रकाश डालिए।
5. हिन्दी गद्य के विकास में राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' और राजा लक्ष्मण सिंह के योगदान को स्पष्ट कीजिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए

1. नाभादास कृत 'अष्टयाम' की रचना कब हुई? ( )
   (अ) संवत 1400 (आ) संवत 1560 (इ) संवत 1660 (ई) संवत 1700
2. हिन्दी गद्य के विकास के क्या कारण थे? ( )
   (अ) समाज सुधार (आ) मुद्रण का विकास (इ) ईसाई धर्म प्रचारक (ई) सभी
3. 'सत्यार्थ प्रकाश' के रचनाकार कौन हैं? ( )
   (अ) संत गंगादास (आ) दयानंद सरस्वती (इ) श्रद्धाराम फुल्लौरी (ई) नवीनचंद्र राय
4. पंडित जुगल किशोर शुक्ल ने कोलकाता से कौन सा पत्र निकाला? ( )
   (अ) बंगदूत (आ) मार्तंड (इ) उदंत मार्तंड (ई) प्रजामित्र

II रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

1. संवत 1680 के आसपास वैकुंठमणि सुकल ने .... और .... नामक दो छोटी-छोटी पुस्तकें लिखी।
2. कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' का हिन्दी में .... ने अनुवाद किया।
3. 1635 ई. में मुल्ला वजही ने अपने .... की रचना की।
4. राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' ने बनारस से .... पत्रिका निकाली।

III. सुमेल कीजिए

i) गोसाईं विट्ठलनाथ	(अ) हिन्दी प्रदीप
ii) बालकृष्ण भट्ट	(आ) शृंगार रस मंडन
iii) प्रतापनारायण मिश्र	(इ) आनंद कादंबिनी
iv) प्रेमघन	(ई) ब्राह्मण

14.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल
2. हिन्दी गद्य लेखन में व्यंग्य और विचार, सुरेश कांत
3. भारतेंदु हरिश्चंद्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, रामविलास शर्मा
4. भारतेंदु और हिन्दी भाषा की विकास-परंपरा, रामविलास शर्मा
5. फोर्ट विलियम कॉलेज : एक इतिहास, नीरज गोयल
6. जाने-अनजाने, क्षेमचंद्र सुमन
7. हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1, 2. सं. धीरेंद्र वर्मा

इकाई 15 : भारतेंदु युगीन काव्य की विशेषताएँ

रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 मूल पाठ : भारतेंदु युगीन काव्य की विशेषताएँ

15.3.1 भारतेंदु युग (1857 ई. - 1900 ई.)

15.3.2 भारतेंदु युगीन काव्य की प्रवृत्तियाँ

15.3.2.1 राष्ट्रीय चेतना : देशभक्ति बनाम राजभक्ति

15.3.2.2 सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति

15.3.2.3 भक्ति भावना

15.3.2.4 शृंगार वर्णन

15.3.2.5 प्रकृति चित्रण

15.3.2.6 हास्य-व्यंग्य

15.3.2.7 समस्यापूर्ति

15.3.2.8 रीति निरूपण

15.3.2.9 काव्यानुवाद

15.3.2.10 काव्य शिल्प

15.4 पाठ-सार

15.5 पाठ की उपलब्धियाँ

15.6 शब्द संपदा

15.7 परीक्षार्थ प्रश्न

15.8 पठनीय पुस्तकें

15.1 प्रस्तावना

प्रिय छात्रो! अब तक आप यह जान चुके हैं कि 19 वीं शताब्दी के दौरान भारत में आधुनिक चिंतन और ज्ञान-विज्ञान का आगमन हुआ। इसके फलस्वरूप लोगों में सामाजिक और राजनैतिक चेतना पनपने लगी। राष्ट्रीयता का भाव जागने लगा। संस्कृति और इतिहास पर नए सिरे से चिंतन आरंभ हुआ। यह समय भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के शासन का समय था। भारतीय समाज बिखरा हुआ और रूढ़ियों में जकड़ा हुआ था। ऐसे समय दोहरे संघर्ष की शुरूआत हुई। सामाजिक

स्तर पर इस संघर्ष ने नवजागरण आंदोलन का रूप लिया। राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में इससे स्वतंत्रता आंदोलन का जन्म हुआ। आप जान चुके हैं कि 1857 का प्रथम भारतीय स्वाधीनता संघर्ष व्यापक जन-जागरण का प्रतीक था। हालांकि इस संघर्ष को अंग्रेजों ने क्रूरतापूर्वक कुचल दिया, लेकिन इसके कारण देश के कोने-कोने में आजादी की लौ जाग गई। यह समय हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल के उदय का समय था जिसे भारतेंदु हरिश्चंद्र (9 सितंबर, 1850 - 6 जनवरी, 1885) ने नेतृत्व प्रदान किया। इसीलिए इसे भारतेंदु युग कहा जाता है। इस इकाई में हम भारतेंदु युग की प्रवृत्तियों पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

15.2 उद्देश्य

छात्रो! इस इकाई का अध्ययन करके आप –

- भारतेंदु युग के काव्य की प्रवृत्तियों को समझ सकेंगे।
- भारतेंदु युग में देशभक्ति की भावना के बारे में जान सकेंगे।
- भारतेंदु युग के कवियों में देशभक्ति और राजभक्ति की द्विविधा को समझ सकेंगे।
- भारतेंदु युग की सामाजिक चेतना को जान सकेंगे।
- भारतेंदु युग में शृंगार, भक्ति और प्रकृति-चित्रण की प्रवृत्तियों की व्याख्या कर सकेंगे।
- भारतेंदु युग की कविता की भाषा और शिल्प को जान सकेंगे।

15.3 मूल पाठ : भारतेंदु युगीन काव्य की विशेषताएँ

15.3.1 भारतेंदु युग (1857 ई. - 1900 ई.)

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल को अलग-अलग युगों में विभाजित किया गया है। इनमें पहला काल खंड 1857 ई. से 1900 ई. तक का है। इस काल खंड को 'भारतेंदु युग' कहा जाता है। 'भारतेंदु युग' का यह नाम भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850-1885) के नाम पर पड़ा। भारतेंदु युग के प्रवर्तक भारतेंदु हरिश्चंद्र हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्रत्येक युग अपने पूर्ववर्ती युग से प्रेरणा लेकर उस युग के अनुभव को ध्यान में रखते हुए नवीन युग का सूत्रपात करता है। भारतेंदु युग के पूर्व का काल रीतिकाल था जहाँ नायिका की सुंदरता का वर्णन प्रधान विषय था। भारतेंदु युगीन कविता में यह प्रभाव साफ तौर पर देखा जा सकता है। लेकिन यह उसकी मुख्य प्रवृत्ति नहीं है। भारतेंदु युग की मुख्य प्रवृत्तियों को उस युग की जन-चेतना से दिशा मिली। नवजागरण के प्रभाव से इस काल के रचनाकारों ने विषय चयन में व्यापकता और विविधता अपनाई। "भारतेंदु हरिश्चंद्र ने जनता को उद्बोधन प्रदान करने के उद्देश्य से 'जातीय संगीत' अर्थात लोक गीत की शैली पर सामाजिक कवियों की रचनाओं पर बल दिया है। मातृभूमि प्रेम, स्वदेशी वस्तुओं का व्यवहार, गोरक्षा, बाल विवाह निषेध, शिक्षा प्रसार का महत्व, मद्यनिषेध, भ्रूणहत्या की निंदा आदि विषयों को कविगण अधिकाधिक अपनाने लगे थे। राष्ट्रीय भावना का उदय भी इस काल की अनन्य विशेषता है।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. नगेंद्र, पृ. 440)। इस प्रकार भारतेंदु की साहित्य

चेतना मध्यकाल की रचना प्रवृत्तियों से आगे बढ़कर नवीन दिशाओं का संधान करती दिखाई देती है। इस युग के मुख्य कवि हैं भारतेंदु हरिश्चंद्र, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', प्रतापनारायण मिश्र, जगन्मोहन सिंह, अंबिकादत्त व्यास और राधाकृष्ण दास।

15.3.2 भारतेंदु युगीन काव्य की प्रवृत्तियाँ

भारतेंदु युगीन काव्य की विभिन्न प्रवृत्तियाँ हैं जिनसे उस युग की विशेषता तथा महत्ता का ज्ञान हो जाता है। भारतेंदु युगीन काव्य की प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं -

15.3.2.1 राष्ट्रीय चेतना : देशभक्ति बनाम राजभक्ति

भारतेंदु युगीन काव्य में देशभक्ति की भावना का संचार हुआ है। भारतेंदु हरिश्चंद्र पर टिप्पणी करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि 'नवीन धारा के बीच भारतेंदु की वाणी का सबसे ऊँचा स्वर देशभक्ति का था।' उनकी विभिन्न रचनाओं में यह स्वर साफ तौर पर सुना जा सकता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने लिखा है -

अंग्रेज़ राज सुख साज सब भारी।
पै धन विदेस चलि जात इहै अति ख़्वारी॥

भारतेंदु हरिश्चंद्र की ये पंक्तियाँ देश के प्रति उनके प्रेम को साफ तौर पर उजागर करती हैं। अब वे लिखते हैं -

रोअहु सब मिलिकै आवहु भारत भाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई!

राधाकृष्ण दास ने अपनी रचना (विजयिनी विलाप) में भारत की प्राचीन कालीन सुख-समृद्धि को याद कर दुख प्रकट करते हुआ लिखा है -

कहाँ परिक्षित कहँ जनमेजय कहँ विक्रम कहँ भोज।
नन्दवंश कहँ चन्द्रगुप्त कहँ हाय कहाँ वह ओज।
हा कबहुँ वह दिन फिर ह्वै हैं वह समृद्धि वह शोभा।
कै अब तरसि-तरसि मसूसि कै दिन जैहैं सब छोभा।

इसी प्रकार अन्य कवियों ने भी अपने हृदय की पीड़ा को अभिव्यक्ति दी है। सुरेशचंद्र गुप्त की मान्यता है कि "भारतेंदु युगीन कवियों ने भारतीय इतिहास के गौरवशाली पृष्ठों की स्मृति तो अनेक बार दिलाई। पर उसकी राष्ट्रीय भावना केवल यहीं तक सीमित नहीं रही। अंग्रेजों की विचारधारा और उनकी देशभक्तिपूर्ण कविताओं से भी उन्होंने यथेष्ट प्रेरणा ली, जिसका फल यह हुआ कि क्षेत्रीयता से ऊपर उठाकर वे संपूर्ण राष्ट्र की नब्ज़ को टटोलने लगे। 'हमारो उत्तम भारत देस' (राधाचरण गोस्वामी) और 'धन्यभूमि भारत सब रतननि की उपजावनि' (प्रेमघन) आदि काव्य-पंक्तियाँ इसी तथ्य को प्रकट करती हैं। देश के उत्कर्ष-अपकर्ष के लिए उत्तरदायी परिस्थितियों पर प्रकाश डालकर इस युग के कवियों ने जन-मानस में राष्ट्रीय भावना के बीज-वपन का महत्वपूर्ण कार्य किया।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. नगेंद्र, पृ. 450)।

यहाँ यह भी विचारणीय है कि भारतेंदु युग के कवियों के मन में राष्ट्रभक्ति और राजभक्ति को लेकर एक द्विविधा-सी दिखाई देती है। जहाँ एक ओर वे ईस्ट इंडिया कंपनी की स्वार्थपूर्ण शासन प्रक्रिया की आलोचना करते हैं, वहीं दूसरी ओर कंपनी से शासन का अधिकार अपने हाथों में ले लेने पर रानी विक्टोरिया की प्रशंसा भी करते हैं। इस प्रकार इस युग की राष्ट्रीय चिंतनधारा के दो पक्ष दिखाई देते हैं - एक देशप्रेम और दूसरा राजभक्ति। भारतेंदु युग के कवियों ने देशप्रेम की भावना से प्रेरित होकर हिन्दी-हिंदू-हिंदुस्तानी का गुण गान किया। दूसरी ओर उनका मानना था कि ब्रिटिश राज मुगल शासन की तुलना में बेहतर था। इसीलिए उन्होंने जज़िया जैसा कर न लगाने वाले अंग्रेजों के शासन की प्रशंसा की। दरअसल भारतेंदु युग के कवियों की राजभक्तिपरक रचनाएँ किसी भी प्रकार चाटुकारिता या देशद्रोह के स्वर से युक्त नहीं है। बल्कि उस युग की नवीन राजनीतिक चेतना की प्रतीक है।

बोध प्रश्न

- भारतेंदु युग की राष्ट्रीय चिंतनधारा के दो पक्ष क्यों दिखाई देती हैं?
- भारतेंदु युग के कवियों की राजभक्तिपरक रचनाएँ किसके प्रतीक हैं?

15.3.2.2 सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति

आधुनिक काल का साहित्य इस अर्थ में 'आधुनिक' है कि उसने परलोक और पुनर्जन्म की मध्यकालीन जड़ता से मुक्त होकर इस लोक तथा समाज की गतिशील चेतना से अपने आपको जोड़ा। इसे यों कहा जा सकता है कि भारतेंदु युग में हिन्दी कविता भारतीय जनता के व्यापक सुख-दुख के साथ जुड़ी। उसकी इस सामाजिक चेतना ने आगे के समूचे काव्य परिदृश्य को गहरे प्रभावित किया। इन कवियों ने यह माना कि सामाजिक समस्याओं की अभिव्यक्ति साहित्यकार का पहला कर्तव्य है। इस प्रकार भारतेंदु युगीन कवियों ने अपनी रचनाओं में सामाजिक चेतना का बखूबी प्रदर्शन किया है। उदाहरणार्थ, प्रतापनारायण मिश्र बाल विधवाओं के नारकीय जीवन का कारुणिक चित्र प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि 'कौन करेजो नहिं कसकत, सुनि विपति बाल विधवन की।'

भारतेंदु युग में छुआछूत और जातिभेद जैसी सामाजिक बुराइयों पर कवियों ने कुठाराघात किया। 'भारत दुर्दशा' में भारतेंदु ने समाज को फटकारते हुए कहा - 'बहुत हमने फैलाये धर्म, बढ़ाया छुआछूत का कर्म।' इसी तरह राधाकृष्ण दास ने तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों पर दृष्टिपात करते हुए लिखा -

महा अविद्या राच्छस ने, या देसहिं बहुत सतायो।
साहस पुरुषारथ उद्य धन, सब ही निधिन गँवायो।

'भारत दुर्दशा' जैसी रचनाओं में भारतेंदु की प्रखर सामाजिक चेतना दिखाई देती है, जहाँ वे समस्त भारतीयों का आह्वान करते हैं कि आओ, अपनी दुर्दशा पर सब मिलकर रोएँ। यह

वस्तुतः उस काल के भारतीय समाज की उपाय हीनता का ही काव्यात्मक प्रतिफलन है। प्रतापनारायण मिश्र ने भी तत्कालीन भारतीय समाज की पीड़ा का चित्र इस प्रकार खींचा हैं -

तबहिं लख्यो जहँ रह्यो, एक दिन कंचन बरसत।
तहँ चौथाई जन, रूखी रोटिहुँ को तरसत॥

बोध प्रश्न

- भारतेंदु युगीन कवियों के अनुसार साहित्यकार का क्या कर्तव्य है?

15.3.2.3 भक्ति भावना

भारतेंदु युग के कवि युगीन परिवेश के अनुरूप सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत थे। इसलिए वही उनके काव्य का प्रमुख स्वर है। लेकिन अपनी धार्मिक-आध्यात्मिक आस्थाओं से जुड़े होने के कारण उन्होंने भक्तिपरक काव्य की भी रचना की। विशेष उपलब्धि यह मानी जा सकती है कि इन कवियों ने जहाँ एक ओर वैराग्य भक्ति और निर्गुण भक्ति की भावना से प्रेरित कविताएँ रचीं, वहीं देशभक्ति को भी ईश्वर भक्ति की ऊँचाई तक पहुँचा दिया। वस्तुतः इसी काल में राष्ट्र को देवी या देवता के रूप प्रतीक प्राप्त हुई। भक्ति भावना को पुष्ट करते हुए भारतेंदु युगीन कवियों ने संसार की नश्वरता, माया मोह की व्यर्थता और विषम आसक्ति की निंदा को कविता का विषय बनाया। भारतेंदु और प्रेमघन जैसे कवियों ने वैराग्य भक्ति का प्रतिपादन किया। भारतेंदु हरिश्चंद्र लिखते हैं -

ब्रज के लता-पता मोहिं कीजै।
गोपी-पद-पंकज पावन की रज जाने सिर भींजै॥

भारतेंदु की भक्तिपरक रचनाओं पर टिप्पणी करते हुए बच्चन सिंह ने लिखा है 'भक्तिपरक रचनाओं में कतिपय स्थलों को छोड़ जीवन का स्पंदन अत्यंत क्षीण है।' भारतेंदु मंडल के कवि बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने भी भक्ति भावना से ओतप्रोत होकर रचना प्रस्तुत की है-

छहरे मुख पै घनश्याम से केश इतै सिर मोर पखा फहरैं।
निति ऐसे सनेह सों राधिका श्याम हमारे हिये में सदा बिहरैं॥

इसके अतिरिक्त 'देशानुराग व्यंजक भक्तिभावना' भारतेंदु युग के कवियों की मौलिक देन है। इसका प्रतिपादन करते हुए उन्होंने धार्मिक सहिष्णुता, समन्वय भावना, जातीयता और देशहित की भावना का रुचिपूर्वक चित्रण किया। राष्ट्रीयभावना और भक्तिभावना को एक समरेखा प्रदान करने वाली ऐसी रचनाओं में भारतेंदु की 'कहाँ करुणानिधि केसव सोये', प्रतापनारायण मिश्र की 'हम आरत भारत वासिन पै, अब दीनदयाल दया करिपै' और राधाकृष्ण दास की 'अपने या प्यारे भारत के पुनि दुख दरिद्र हरिये' जैसी कविताएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

बोध प्रश्न

- भारतेंदु युगीन कविता का मुख्य स्वर क्या है?

15.3.2.4 शृंगार वर्णन

भारतेंदु युगीन काव्य शृंगारिकता के मामले में भी पीछे नहीं है। भारतेंदु की कई ऐसी रचनाएँ हैं जिनके नाम में 'प्रेम' शब्द जुड़ा हुआ है। यथा - प्रेम सरोवर, प्रेमाश्रम, प्रेम तरंग, प्रेममाधुरी आदि। कुछ में प्रेम शब्द भले ही नहीं जुड़ा है परंतु उनका प्रधान विषय प्रेम है। भारतेंदु ने भक्ति और प्रेम का बड़ी हद तक एक जैसी तन्मयता के साथ चित्रण किया है। उनके प्रेमवर्णन में कहीं भी ओछापन नहीं है। भारतेंदु के प्रेम के संबंध में डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त ने लिखा है - 'उन्होंने प्रेमालंबन नायिका के सौंदर्य का आख्यान किया है, किंतु उसमें स्थूल शारीरिकता एवं अश्लीलता को प्रायः स्थान नहीं दिया गया है।' प्रिय दर्शन की आकुलता का भारतेंदु हरिश्चंद्र का यह वर्णन बेहद प्रभावशाली बन पड़ा है, कि -

यह संग में लगिये डोले सदा बिन देखे न धीरज आनती हैं।
छिनहू जो वियोग परै हरिचन्द तो चाल प्रलै की सु ठानती हैं।
बरुनी में थिरैं न झपैं उझपैं पल में न समाइबो जानती हैं।
पिय पियारे तिहारे निहारे बिना अँखिया दुखियाँ नहीं मानती हैं।

इसी प्रकार ठाकुर जगन्मोहन सिंह की कविता में निश्छल प्रेम के साथ भावुकता भी विद्यमान है। यथा -

अब यों उर आवत है सजनी, मिलि जाऊँ गरे लगि के छतियाँ।
मन की करे भाँति अनेकन और मिलि कीजिय री रस की बतियाँ॥
हम हारि अरी करि कोटि उपाय, लिखी बहु नेह भारी पतियाँ।
जगमोहन मोहिनी मूरति के बिना कैसे कटें दुख की रतियाँ॥

बोध प्रश्न

- भारतेंदु युगीन कविता में शृंगार वर्णन किस प्रकार का है?

15.3.2.5 प्रकृति चित्रण

भारतेंदु युग के कवियों ने प्रकृति का आलंबन और उद्दीपन दोनों रूपों में सुरुचिपूर्ण वर्णन किया है। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने राधा-कृष्ण की चर्चा के साथ प्रकृति का वर्णन भी किया है। उनका वर्षा तथा वसंत का वर्णन भी खूब बन पड़ा है। काव्य के अतिरिक्त उनके नाटकों में भी प्रकृति का चित्रण मिलता है। 'सत्य हरिश्चंद्र' नाटक में गंगा नदी का वर्णन इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। इसी प्रकार 'चंद्रावली' शीर्षक रचना में यमुना व यमुना के किनारे खड़े वृक्षों का वर्णन प्रशंसनीय है -

तरनि-तनूजा-तट तमाल तरुवर बहु छाए।
झुके कूल सों जल परसन हित मनहु सुहाए॥
किधौं मुकुर में लखत उझकि सब निज-निज सोभा।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा॥

इस काल के काव्यों में ठाकुर जगन्मोहन सिंह के विंध्याचल विषयक सवैया अपने सूक्ष्म निरीक्षण और स्वाभाविक चित्रण के कारण खास तौर पर उल्लेखनीय है।

बोध प्रश्न

- 'सत्य हरिश्चंद्र' नाटक में गंगा नदी का वर्णन किस दृष्टि से उल्लेखनीय है?

15.3.2.6 हास्य-व्यंग्य

भारतेंदु तथा भारतेंदु युगीन कवियों के यहाँ हास्य-व्यंग्य भी भरपूर उपलब्ध है। तत्कालीन परिस्थितियों पर भारतेंदु ने हास्य-व्यंग्य के माध्यम से प्रहार किया है। भारतेंदु के हास्य-व्यंग्य के संबंध में टिप्पणी करते हुए डॉ.गणपतिचंद्र गुप्त ने लिखा है कि भारतेंदु के हास्य-व्यंग्य की प्रवृत्ति का पूर्ण विकास उनके नाटकों - 'पाखंड विडंबन', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति', 'अंधेर नगरी' आदि में हुआ है। भारतेंदु ने उर्दू नाटक 'इंदर सभा' की पैरोडी के रूप में 'बंदर सभा' की रचना की। उन्होंने लिखा है -

पाजी हूँ मैं कौम का बंदर मेरा नाम।
बिन फुजूल कूदे फिरे मुझे नहीं आराम॥

उन्होंने स्यापा, गाली और मुकरी के माध्यम से भी पैरोडी के हास्य-व्यंग्य की सृष्टि की। 'नये जमाने की मुकरी' में अंग्रेज़, पुलिस आदि पर बहुत ही तीखे व्यंग्य किए गए हैं। यथा-

भीतर-भीतर सब रस चूसे, हँस हँस कै तन मन धन मूसै।
जाहीर बातन में अति तेज, क्यों सखि सज्जन नहिं अँगरेज़॥

इसी प्रकार तत्कालीन पुलिस पर व्यंग्य करते हुए लिखा है कि -

कपट कटारी हिय मैं पुलिस
क्यों सखि सज्जन नहिं? सखि पुलिस॥

इस युग के प्रमुख हास्य-व्यंग्यकार प्रतापनारायण मिश्र को कहा जा सकता है। उन्होंने तृप्यंताम, हरगंगा, बुढ़ापा और ककाराष्टक जैसी हास्य-व्यंग्य रचनाओं से इस युग को समृद्ध किया। उनके अलावा प्रेमघन ने भी 'वर्षा बिंदु' शीर्षक एक प्रकरण की रचना की जिसमें विनोद के साथ उद्बोधन का पुट है।

बोध प्रश्न

- भारतेंदु हरिश्चंद्र ने हास्य-व्यंग्य का सहारा क्यों लिया?

15.3.2.7 समस्यापूर्ति

भारतेंदु के समय में काव्य क्रीड़ा के रूप में समस्यापूर्ति का काफी प्रचलन था। इस क्रीड़ा में एक पंक्ति दे दी जाती है और उसी के आधार पर पूरी कविता बनाने का प्रयास किया जाता है। समस्यापूर्ति के माध्यम से कवियों की प्रतिभा पहचानी जाती थी। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'कवितावर्द्धिनी सभा' नामक एक संस्था बनाई थी। इस सभा की बैठकें उनके घर या बाग में हुआ

करती थीं। इसी सभा में पं.अंबिकादत्त व्यास ने 'पूरी अमी की कटोरिया सी चिरजीवो सदा विक्टोरिया रानी' समस्या की पूर्ति इस प्रकार की थी -

आनन्द से प्रजा बिकसे सब कौंल में कोस सिरी हरखानी।
सेवकिनी चिरिया सम बोलि रहीं निज स्वामिनी को सममानी॥
भोर परकास सों जाको प्रताप लखै इमि अम्बिकादत्त बखानी।
पूरी अमी की कटोरिया सी चिरजीवो सदा विक्टोरिया रानी॥

प्रेमघन ने भी इस तर्ज पर कविताएँ लिखी हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल का कथन है कि प्रेमघन जी भी इस प्रकार की पुरानी कविता किया करते थे। 'चरचा चलिबे की चलाइए ना' को लेकर बनाया हुआ उनका यह अनुप्रासपूर्ण सवैया देखिए -

बगियान बसंत बसेरो कियो, बसिए तेहि त्यागि तपाइए ना।
दिन काम-कुतूहल के जोबने, तिन बीच वियोग बुलाइए ना॥
'धन प्रेम' बढ़ाय कै प्रेम, अहो! बिथा-बारि बृथा बरसाइए ना।
चित चैत की चाँदनी चाह भारी, चरचा चलिबे की चलाइए ना॥

भारतेंदु युगीन काव्य की इन विशेषताओं के अलावा यह भी उल्लेखनीय है कि इस काल के कवियों ने एक ओर तो अपने से पहले अर्थात रीतिकाल के अवशेष प्रभाव के रूप में कहीं-कहीं रीति-निरूपण भी किया है। साथ ही, दूसरी ओर उन्होंने बदलते हुए साहित्यिक माहौल को आत्मसात करके संस्कृत और अंग्रेजी से काव्यों का अनुवाद भी प्रस्तुत किया। राजा लक्ष्मणसिंह ने जहाँ रघुवंश और मेघदूत के अनुवाद किए, वहीं भारतेंदु ने नारद और शांडिल्य के भक्ति सूत्रों का काव्यात्मक अनुवाद किया। ठाकुर जगन्मोहन सिंह ने भी ऋतुसंहार और मेघदूत के अत्यंत सफल अनुवाद किए।

बोध प्रश्न

- समस्यापूर्ति क्या है?

15.3.2.8 रीति निरूपण

भारतेंदु युग के रचनाकार काव्य रूढ़ियों की दृष्टि से संक्रमण काल के रचनाकार हैं। इस काल में रीति कालीन काव्य रूढ़ियाँ टूट रहीं थी और आधुनिक काल के लिए नई काव्य रूढ़ियों की खोज चल रही थी। स्वाभाविक है कि ऐसे में रीतिकाल की अत्यंत लोकप्रिय रूढ़ि रीति निरूपण ने किसी न किसी रूप में भारतेंदु युग के कवियों को भी अपनी ओर आकर्षित किया। यही कारण है कि लछिराम ब्रह्मभट्ट, कविराजा मुरारिदान और बालगोविंद मिश्र ने विधिवत रीति निरूपण में रुचि दर्शायी है। इनमें से लछिराम ब्रह्मभट्ट अयोध्या नरेश मानसिंह 'द्विजदेव' तथा कुछ अन्य राजाओं तथा तालुकेदारों के राज्याश्रित कवि थे। आश्रयदाता की प्रसन्नता के लिए इन्होंने रीति ग्रंथों की रचना की। जैसे - इन्होंने 'माहेश्वर विलास' में नायिका भेद और नवरस का निरूपण

किया। जबकि 'रामचंद्र भूषण' में अलंकार शास्त्र तथा 'रावणेश्वर कल्पतरु' में समस्त काव्यागों का निरूपण किया गया है। कविराजा मुरारिदान ने अपने आश्रयदाता मारवाड़ नरेश जसवंत सिंह के सम्मान में 'जसवंत जसोभूषण' की रचना की। इसमें मुख्य रूप से अलंकार तथा गौण रूप से काव्य संबंधी अन्य विषयों का विवेचन किया गया है। काव्य लक्षण कविता में देने के साथ-साथ इन्होंने गद्य में उनकी व्याख्या भी की है। इसी प्राकर बालगोविंद मिश्र ने भाषा छंद प्रकाश की रचना की। इसमें कुल 48 छंदों के लक्षण और उदाहरण दिए गए हैं। उल्लेखनीय है कि ये सभी कृतियाँ परंपरा के निर्वाह पर आधारित हैं और इनमें कोई नयापन नहीं है। इसलिए आलोचक इन रीतिकार कवियों को 'आचार्य कवि' नहीं मानते।

बोध प्रश्न

- जसवंत जसोभूषण के रचनाकार कौन हैं?
- माहेश्वर विलास में किस का निरूपण है?

15.3.2.9 काव्यानुवाद

भारतेंदु युग में बहुत बड़ी मात्रा में विभिन्न भारतीय और विदेशी भाषाओं के काव्यों का हिन्दी में अनुवाद एक ऐसी नई प्रवृत्ति है जिसने हिन्दी के सामान्य पाठक को इन भाषाओं के साहित्य से परिचित कराते हुए सेतुबंध की भूमिका निभाई है। राजा लक्ष्मण सिंह ने रघुवंश और मेघदूत का अनुवाद किया। उनके अनुवाद में सरसता, लालित्य और प्रांजल ब्रज भाषा के साथ विशेष रूप से सवैया छंद के प्रयोग द्रष्टव्य है। स्वयं भारतेंदु ने नारद भक्ति सूत्र और शांडिल्य के भक्ति सूत्र का अनुवाद क्रमशः 'तदीय सर्वस्व' और 'भक्ति सूत्र वैजयंती' के नाम से किया। भारतेंदु के इन अनुवादों की एक बड़ी सीमा यह मानी जाती है कि मूल विषय के संप्रेषण पर अधिक ध्यान होने के कारण इनमें भाषा लालित्य कुछ खास नहीं पाया जाता। इनकी तुलना में "ठाकुर जगन्मोहन सिंह द्वारा अनूदित ऋतुसंहार (1876) और मेघदूत (1883) इस काल की विशिष्ट कृतियाँ हैं। इनमें शब्दानुवाद के स्थान पर भाव सौंदर्य के संरक्षण पर बल रहा है और कहीं-कहीं भाव संक्षेपण तथा भाव विस्तार की पद्धतियाँ भी अपनाई गई हैं। तत्सम पदावली, भाषा लालित्य और कवित्त-सवैयों की रमणीय छटा इन दोनों कृतियों की अन्यतम विशेषताएँ हैं।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. नगेंद्र)।

संस्कृत से अनुवादों की इस कड़ी में सीताराम भूप ने मेघदूत, कुमार संभव, रघुवंश और ऋतुसंहार के काव्यानुवाद प्रस्तुत किए। संस्कृत के अलावा इस काल के कवियों ने अंग्रेजी कृतियों के अनुवाद में रुचि दर्शायी। "अंग्रेजी की ललित काव्य कृतियों के रूपांतरण की ओर ध्यान आकृष्ट करने का श्रेय श्रीधर पाठक को है। गोल्ड स्मिथ कृत हर्मिट और डेज़ेर्टड विलेज को उन्होंने एकांतवासी योगी (1886) तथा ऊजड़ ग्राम (1889) के रूप में अनूदित किया है। इनकी रचना क्रमशः खड़ी बोली और ब्रज भाषा में हुई है तथा मूल कृतियों के भाव सौरस्य को भाषांतरण में हानि नहीं पहुँचने दी गई है। श्रीधर पाठक की कवि प्रतिभा और अभिव्यंजन-सौष्ठव को इन कृतियों में अनेकशः लक्षित किया जा सकता है।" (वही)

बोध प्रश्न

- अंग्रेजी की ललित काव्य कृतियों के रूपांतरण की ओर ध्यान आकृष्ट करने का श्रेय किसको जाता है?

15.3.2.10 काव्य शिल्प

इसमें कोई दो राय नहीं कि भारतेंदु युग के कवियों का ध्यान खासकर काव्य की विषय वस्तु पर था। ऐसा इसलिए हुआ कि परंपरागत भक्ति और शृंगार की विषय वस्तु का स्थान इस काल में व्यापक जनता के सामान्य सुख-दुख और रागद्वेष ने लेना आरंभ कर दिया था। साथ ही सामाजिक और राष्ट्रीय प्रश्न सामंती परिवेश का स्थान ले रहे थे। विषय वस्तु के इस बदलाव और विस्तार को प्राथमिकता देने के कारण प्रायः यह मान लिया जाता है कि इन कवियों का ध्यान काव्य शिल्प अथवा कला पक्ष पर नहीं था। लेकिन गहराई से देखने पर पता चलता है कि ऐसा नहीं है। सच तो यह है कि इस काल में बदलते हुए परिवेश में काव्य-भाषा और काव्य-शिल्प दोनों पर अपनी साफ-साफ छाप छोड़ी। अगर यह कहा जाए कि इस काल के कवियों ने काव्य रूप, भाषिक चेतना, काव्यालंकार और छंद विधान जैसे सभी क्षेत्रों में नए-नए प्रयोग किए, तो गलत न होगा। सबसे पहले काव्य रूप को देखें। इस युग के कवियों ने मुख्य रूप से मुक्तक काव्य रचा। इस काल में प्रगीत मुक्तक भी खूब रचे गए। प्रेमघन और प्रताप नारायण मिश्र ने कजली तथा भारतेंदु, प्रताप नारायण मिश्र, राधाचारण गोस्वामी और जगन्मोहन सिंह ने लावणी की रचना करके लोक शैलियों को काव्य शैली का रूप प्रदान करने के अभिनव प्रयोग किए। भारतेंदु ने तो मुकरी से लेकर ग़ज़ल तक अनेक काव्य रूप अपनाए हैं। साथ ही प्रबंध काव्य की दृष्टि से इस काल में श्रीललित रामायण (हरिनाथ पाठक), जीर्णजनपद (प्रेमघन), कंस वध (अंबिकादत्त व्यास) उल्लेखनीय हैं। इतना ही नहीं भारतेंदु हरिश्चंद्र ने प्रबंध गीति (रानी छद्मलीला, देवी छद्मलीला और तन्मय लीला) तथा निबंध काव्य (विजयिनी विजय वैजयंती, हिन्दी भाषा) की भी रचना की। यही नहीं, इस काल में सतसई परंपरा में भी कई रचनाएँ सामने आईं। जैसे कृष्ण शतक (हरिऔध) और सुकवि सतसई (अंबिकादत्त व्यास)।

बोध प्रश्न

- भारतेंदु युग में सामंती परिवेश के स्थान पर किस को प्राथमिकता दिया जाने लगा?
- लोक शैलियों को काव्य शैली का रूप किसने प्रदान किया?

भाषिक चेतना की दृष्टि से यह देखना अत्यंत रोचक है कि इस काल के कवियों ने भाषायी शुद्धतावाद को पूरी तरह नकारते हुए नई काव्य-भाषा की तलाश में रुचि दर्शायी। इससे भाषा मिश्रण की प्रवृत्ति को विशेष बल मिला। "मिश्रित भाषा के प्रयोग की यह प्रवृत्ति इतनी प्रचलित हुई कि प्रेमघन की भाषा पर मिर्जापुरी बोली का और प्रताप नारायण मिश्र की भाषा पर कन्नौजी का प्रभाव अनायास लक्षित किया जा सकता है। खड़ी बोली की व्यावहारिकता पर बल होने के फलस्वरूप ब्रज भाषा के कवि अन्य भाषाओं से शब्द लेने के विषय में क्रमशः अधिक उदार होते

गए, अतः भोजपुरी, बुंदेलखंडी, अवधी आदि भाषाओं के अतिरिक्त उर्दू और अंग्रेजी की प्रचलित शब्दावली को भी अपना लिया गया। साथ ही बोलचाल के अर्थहीन शब्दों को त्याग कर नई शब्दावली की खोज की ओर भी कवियों की यत्किंचित प्रवृत्ति लक्षित होती है।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. नगेंद्र)।

बोध प्रश्न

- भाषायी शुद्धतावाद को पूरी तरह नकारने के कारण किस प्रवृत्ति को बल मिला?

15.4 पाठ-सार

भारतेंदु युग मध्यकाल से आधुनिक काल की ओर बढ़ते हुए भारतीय समाज का दर्पण है। इसीलिए इसमें कुछ सीमा तक मध्यकालीन प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं। भारतेंदु युग के कवियों की भक्ति भावना और शृंगारिक व आलंकारिक काव्य के प्रति रुचि उनकी मध्यकालीन प्रवृत्तियों की प्रतीक है। लेकिन ध्यान देने की बात यह है कि भारतेंदु युग के कवियों ने अपनी भक्ति भावना को सामाजिक चेतना के साथ जोड़ने का प्रयास किया। यह उनकी आधुनिकता का प्रतीक है। इस काव्य में राष्ट्रीय चेतना के स्वरूप का विकास देशभक्ति और राजभक्ति के टकराव के बीच से हुआ। हास्य-व्यंग्य की प्रवृत्ति ने जहाँ सामाजिक और धार्मिक रूढ़िवाद पर प्रहार का काम किया वहीं प्रकृति प्रेम के माध्यम से देशप्रेम भी व्यक्त हुआ।

15.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

1. राष्ट्रीय चेतना भारतेंदु युग के कविता की मुख्य प्रवृत्ति है जो उसे मध्यकाल की कविता से अलग करती है।
2. इस काल की राष्ट्रीय चेतना में देशभक्ति और राजभक्ति के बीच द्वंद्व दिखाई देता है। इसका कारण यह है कि अंग्रेज़ शासन द्वारा भारतीय जीवन के आधुनिकीकरण को ये कवि अच्छा समझते थे। लेकिन इन्हें यह भी समझ में आ चुका था कि अंग्रेज़ शासन भारतीय अर्थव्यवस्था को खोखला कर रहा था।
3. इस काल के कवियों ने भारत के गुलामी के कारणों का विश्लेषण करके यह समझाने का प्रयास किया कि आपसी कलह, अकर्मण्यता और अशिक्षा, जैसी बुराइयों से मुक्त हुए बिना देश की आजादी सम्मत नहीं है।

15.6 शब्दार्थ

1. आत्मसात	=	अपने में लीन या समाहित किया हुआ
2. उद्बोधन	=	किसी बात का ज्ञान कराने की क्रिया या भाव
3. कारुणिक	=	करुणा से भरा हुआ, दयावान
4. क्रीड़ा	=	खेलकूद
5. चाटुकारिता	=	चापलूसी

15.6 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. भारतेंदु युगीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालिए।
2. भारतेंदु युगीन काव्य की राष्ट्रीय चेतना की चर्चा कीजिए।
3. भारतेंदु युग की कविता की भाषा और शिल्प की चर्चा कीजिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. भारतेंदु युगीन काव्य में निहित सामाजिक चेतना को स्पष्ट कीजिए।
2. भारतेंदु युगीन कविता की हास्य-व्यंग्य प्रवृत्ति पर प्रकाश डालिए।
3. भारतेंदु युग के कवियों में देशभक्ति और राजभक्ति की द्विविधा को समझाइए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए

1. 'तरनि-तनूजा-तट-तमाल तरुवर बहु चाहे।' किस कवि की काव्य पंक्ति है? (   )
   (अ) भारतेंदु (आ) प्रतापनारायण मिश्र (इ) प्रेमघन (ई) राधाकृष्ण दास
2. 'धन्यभूमि भारत सब रतननि की उपजावनि।' किस कवि की काव्य पंक्ति है? (   )
   (अ) भारतेंदु (आ) प्रतापनारायण मिश्र (इ) प्रेमघन (ई) राधाकृष्ण दास
3. 'पूरी अमी की कटोरिया सी चिरजीवो सदा विक्टोरिया रानी।' किस कवि की पंक्ति है?
   (   )
   (अ) अंबिकादत्त व्यास (आ) प्रतापनारायण मिश्र (इ) प्रेमघन (ई) राधाकृष्ण दास

II रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

1. ककाराष्टक के रचनाकार .... हैं।
2. भारतेंदु हरिश्चंद्र ने .... नामक संस्था बनाई थी।
3. भारतेंदु ने उर्दू नाटक 'इंदर सभा' की पैरोडी में .... की रचना की थी।

III सुमेल कीजिए

i) भारतेंदु हरिश्चंद्र	(अ) वर्षा बिंदु
ii) राधाकृष्ण दास	(आ) विजयनी विलाप
iii) प्रेमघन	(इ) अंधेर नगरी

15.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल
2. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, गणपतिचंद्र गुप्त
3. हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, विजयपाल सिंह
4. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह

इकाई 16 : भारतेंदु युग के प्रमुख कवि

रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 मूल पाठ : भारतेंदु युग के प्रमुख कवि

16.3.1 भारतेंदु युग का परिचय

16.3.2 भारतेंदु मंडल

16.3.2.1 भारतेंदु हरिश्चंद्र

16.3.2.2 बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन'

16.3.2.3 प्रतापनारायण मिश्र

16.3.2.4 ठाकुर जगन्मोहन सिंह

16.3.2.5 अंबिकादत्त व्यास

16.3.2.6 राधाकृष्ण दास

16.3.3 भारतेंदु युग की देन

16.4 पाठ-सार

16.5 पाठ की उपलब्धियाँ

16.6 शब्द संपदा

16.7 परीक्षार्थ प्रश्न

16.8 पठनीय पुस्तकें

16.1 प्रस्तावना

छात्रो! हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल के प्रथम उत्थान को 'भारतेंदु युग' कहा जाता है। इस युग की रचनाशीलता का नेतृत्व भारतेंदु हरिश्चंद्र ने किया। उन्होंने तथा उनके समकालीन लेखकों ने हिन्दी साहित्य को मध्यकालीन और सामंतवादी रूढ़ियों से आज़ाद किया। इन साहित्यकारों को ही यह श्रेय जाता है कि उन्होंने साहित्य को देश की साधारण जनता के सुख-दुख और हर्ष-विषाद से जोड़ा। इस काल के रचनाकारों ने जहाँ गद्य लेखन के लिए खड़ी बोली को अपनाया, वहीं पद्य लेखन अथवा काव्य के लिए ब्रजभाषा के प्रयोग को ही उचित समझा। इस इकाई में इस युग के प्रमुख कवियों और उनके योगदान पर प्रकाश डाला जा रहा है।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप –

- भारतेंदु युग के काव्य का महत्व समझ सकेंगे।
- 'भारतेंदु मंडल' के बारे में जान सकेंगे।
- भारतेंदु हरिश्चंद्र के व्यक्तित्व के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- भारतेंदु हरिश्चंद्र के काव्य-कृतित्व से परिचित हो सकेंगे।
- भारतेंदु मंडल के अन्य कवियों के योगदान से अवगत हो सकेंगे।

16.3 मूल पाठ : भारतेंदु युग के प्रमुख कवि

16.3.1 भारतेंदु युग का परिचय

भारतेंदु युग की अवधि मोटे तौर पर उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध की अवधि है। यह समय भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के हाथ से राजकाज सीधे ब्रिटेन की महारानी के हाथ में जाने का समय था। इस समय देश पूरी तरह ब्रिटिश उपनिवेश बन चुका था। नवजागरण और स्वाधीनता की चेतना भारतीयों के मन में कसमसा रही थी। पहले स्वाधीनता संघर्ष के दमन की यादें इस अवधि में ताजा थीं। इस काल के कवियों में देशभक्ति और राजभक्ति का द्वंद्व था क्योंकि एक ओर तो उन्हें अपने देश और उसकी परंपराओं पर गर्व था, लेकिन दूसरी ओर उन्हें पहले के शासकों और कंपनी राज की तुलना में ब्रिटिश राज सुविधाजनक प्रतीत होता था। फिर भी स्वदेश के प्रति अनुराग और पराधीनता से मुक्ति की छटपटाहट इन कवियों की रचनाओं में काफी मुखर दिखाई पड़ती है। इन्होंने प्राचीन और आधुनिक का समन्वय करते हुए भक्ति और शृंगार के साथ-साथ सामाजिक चेतना से संपन्न आधुनिकता बोध के काव्य का सूत्रपात किया। इसके साथ ही यह भी ध्यान में रखने की जरूरत है कि उस काल में अंग्रेज़ शासक भारत का आर्थिक शोषण तो कर ही रहे थे। उन्हीं के शिक्षित वर्ग को अपने तंत्र का पुर्जा बनाने का अभियान भी चला रखा था। इस शिक्षित वर्ग में ऐसे अनेक लोग शामिल थे जो इस औपनिवेशिक तंत्र का हिस्सा होने के बावजूद अपने देश की आज़ादी और खुशहाली के लिए बेचैन थे। भारतेंदु और उनके युग के विभिन्न कवियों की रचनाओं में भारत के इन्हीं लोगों की भावनाओं को अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है।

भारतेंदु युग के सूत्रधार भारतेंदु हरिश्चंद्र का जन्म सन 1850 में बनारस के एक अमीर घराने में हुआ। इनकी शिक्षा-दीक्षा क्वींस कॉलेज से संबद्ध अंग्रेजी माध्यम के एक जाने माने स्कूल में हुई। अंग्रेजी शिक्षा के बावजूद वे मानते थे कि 'निज भाषा' की उन्नति के बिना किसी भी समाज या देश की उन्नति अधूरी रहती है। यथा,

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटै न हिय को शूल॥

भारतेंदु का निधन मात्र 34 वर्ष की आयु में हो गया। लेकिन इतने कम समय में ही उन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना करके हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ी।

‘आत्मचरित’ मानी जानेवाली एक अधूरी रचना ‘एक कहानी : कुछ आप बीती, कुछ जग बीती’ उन्होंने लिखी है : “मैं भी जवानी की उमंगों में चूर, जमाने के ऊँच-नीच से बेखबर अपनी रसिकाई के नशे में मस्त, दुनिया के मुफ्तखोर सिफ़ारशियों से घिरा हुआ अपनी तारीफ सुन रहा था, पर इस छोटी अवस्था में भी प्रेम को भलीभाँति पहचानता था।” आश्चर्य नहीं कि उनकी रचनाओं के साथ-साथ जीवन-कर्म में भी इस अनमोल प्रेम की प्रतिध्वनि एवं विस्तार है। अपनी ‘प्रेममालिका’ (1871) नामक कृति में उन्होंने प्रेम की महिमा का बखान करते हुए ईश्वर के जगत को मिथ्या बताया है - ‘प्रेम सत्य तुमरो जग मिथ्या या मैं कछु न सँदेह।’

भारतेंदु ने हिन्दी जगत को नेतृत्व और दिशा देने का काम अपनी पत्रिका ‘कवि वचन सुधा’ के माध्यम से आरंभ किया और पत्रिका 1868 ई. में शुरू हुई। इसीलिए ‘भारतेंदु युग’ की वास्तविक शुरूआत भी 1868 ई. से मानी जा सकती है। इसीलिए यह युग भारतेंदु के निधन (1885 ई.) के बावजूद सन 1900 तक फैला माना जाता है। इस युग में भारतेंदु हरिश्चंद्र के अलावा जिन कवियों ने योगदान दिया उनमें प्रतापनारायण मिश्र, अंबिकादत्त व्यास, राधाकृष्ण दास, बदरी नारायण चौधरी ‘प्रेमघन’ तथा ठाकुर जगन्मोहन सिंह आदि प्रमुख हैं।

बोध प्रश्न

- भारतेंदु युग के कवियों में किस तरह का द्वंद्व पाया जाता है?
- ‘निज भाषा’ के संबंध में भारतेंदु का क्या विचार है?
- भारतेंदु ने हिन्दी जगत को नेतृत्व और दिशा देने का काम अपनी किस पत्रिका के माध्यम से किया?

भारतेंदु युग का समय आश्चर्यजनक रूप से भारतीय नवजागरण आंदोलन का भी समय है। इस समय का एक मुख्य द्वंद्व यह था कि एक ओर तो पश्चिमी शिक्षा, आधुनिक ज्ञान-विज्ञान और ढाँचागत सुविधाओं जैसे रेल, सड़क और कल-कारखानों के विकास से प्रभावित तत्कालीन सामान्य नागरिक ही नहीं बुद्धिजीवी और समाज सुधारक भी भारत में ब्रिटिश राज के बड़ी हद तक समर्थक थे। दूसरी ओर उनकी समझ में यह भी आ रहा था कि ये सारे साजो-सामान अंग्रेजों ने भारतीयों के भले के लिए विकसित नहीं किए थे। वे तो भारत को अंग्रेजी पढ़े-लिखे क्लर्कों की भीड़ में बदल देना चाहते थे जिससे उन्हें जनता के शोषण में सहयोग मिलता रहे। इस तरह वे भारत की कृषि व्यवस्था से लेकर उद्योग धंधों तक को चौपट कर रहे थे तथा भारत से तमाम तरह का कच्चा माल ब्रिटेन भेजकर हमें ही उसे वापस ब्रिटिश उत्पाद के रूप में खरीदने के लिए विवश कर रहे थे। इस तरह वे भारत की अर्थ व्यवस्था को पंगु बनाने में कामियाब होते गए। नवजागरण कालीन भारतीय बुद्धिजीवियों, समाज सुधारकों और राजनेताओं सभी को इस चाल का पता था। इसीलिए धीरे-धीरे उनके मन में आजादी की चाह भी जन्म ले रही थी। इस स्थिति ने राज-भक्ति और राष्ट्र-भक्ति के बीच एक विचित्र द्वंद्व पैदा कर दिया था। भारतेंदु हरिश्चंद्र सहित उस काल के बहुत से हिन्दी रचनाकारों की रचनाओं में यह द्वंद्व साफ दिखाई देता है। कहीं तो वे

महारानी विक्टोरिया की जय-जयकार करते हैं और कहीं अंग्रेजों को भीतर-भीतर सब धन चूसने वाला चूहा कहते दिखाई देते हैं। अभिप्राय यह है कि इन कवियों का यह द्वंद्व कोई निजी द्वंद्व नहीं है बल्कि उस नवजागरण काल का अनिवार्य अंतर्विरोध है जिसके एक सिरे पर ब्रिटिश राज की न्याय प्रणाली में विश्वास दिखाई देता है तो दूसरी ओर उसकी विघटनकारी नीतियों के प्रति असंतोष भी झलकता है। अंग्रेजों के प्रति भारतेंदु युग के लेखकों के इस दोहरे रवैये का प्रतिबिंब भारतेंदु हरिश्चंद्र की कविता में इन शब्दों में प्रकट हुआ है -

अंगरेज राज सुख साज सजै सब भारी।
पै धन बिदेस चलि जात इहै अति ख़्वारी॥

इस द्वंद्व की व्याख्या करते हुए डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने 'हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास' में यह प्रतिपादित किया है कि "मुसलमान शासकों के टूटते-बिखरते राज की अव्यवस्था को देखते अंग्रेजी शासन की नई व्यवस्था निश्चय ही सराहनीय थी, पर इस तरह का कठोर आर्थिक शोषण इसके पहले कभी नहीं हुआ, यह बात भी उस युग के मनीषियों के सामने बहुत स्पष्ट थी। अंग्रेजों के प्रति आविकर्षण भाव का सूत्र यहीं मिलता है, जो आगे चलकर भी भारतीय मानस को बराबर बाँटे रहा। उनके मन में राज-भक्ति और राष्ट्र-भक्ति दोनों अपने स्थान पर खरी है। भारतेंदु अंग्रेजी शासन की अंधेरगर्दी का जैसा खुल कर वर्णन करते हैं वैसी ही आत्मीयता के साथ महारानी विक्टोरिया की कल्याण-कामना करते हैं। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के प्रति वे आकृष्ट होते हैं, पर कुछ भयभीत मुद्रा में -

कठिन सिपाही द्रोह अनल जा जल बल नासी।
जिन भय सिर न हिलाय सकत कहुं भारतवासी॥

बोध प्रश्न

- भारतीय नवजागरण आंदोलन के समय का मुख्य द्वंद्व क्या था?
- अंग्रेज़ भारत की अर्थ व्यवस्था को पंगु बनाने में कामियाब कैसे हुए?

अभिप्राय यह है कि भारतेंदु युग के रचनाकारों में मिलने वाला राज-भक्ति और राष्ट्र-भक्ति का द्वंद्व पुनर्जागरण प्रक्रिया की ही देन है। इसके लिए इन कवियों पर किसी भी प्रकार का आक्षेप करना अनुचित होगा। सच्ची बात तो यह है कि इन दोनों भावनाओं में से अंतिम रूप में कसी एक का चुनाव करना न तो उस काल के रचनाकार की प्राथमिकता थी, न जरूरत और न संभावना। वह समय तो देश के प्राचीन गौरव को जगाने और आधुनिक बोध के साथ उसे जोड़ने के था। यही कारण है कि यह द्वंद्व एक तरफ रवींद्रनाथ टैगोर से लेकर दूसरी तरफ मैथिलीशरण गुप्त तक में दिखाई देता है। इसलिए यह कहना सही होगा कि इस अंतर्विरोध का समाधान भारतेंदु युग में संभव ही नहीं था। स्वतंत्रता आंदोलन काल में तिलक और गांधी ने इस अंतर्विरोध का समाधान प्रस्तुत किया और इस तरह पुनर्जागरण आंदोलन राष्ट्रीयता आंदोलन में समा गया। यह देखना और भी रोचक है कि इसके बाद फिर से सांस्कृतिक गौरव की खोज का नया अध्याय शुरू हुआ।

“पुनर्जागरण ने अध्यात्म को लोक-सेवा से जोड़ा, और फिर लोक-सेवा को राष्ट्रीयता से। कुछ समय तक तो राष्ट्रीयता का सांस्कृतिक आधार पुष्ट रहा। पर ज्यों-ज्यों उसके स्वरूप में राजनीति प्रेवेश करती गई त्यों-त्यों न्यस्त स्वार्थ प्रबल होते गए। संस्कृति एकीकरण करती है, राजनीति विभाजन, यह भारतीय पुनर्जागरण और उसके बाद के काल में अच्छी तरह देखा जा सकता है। भारतीय प्रक्रिया संस्कृति से राजनीति की ओर उन्मुख हुई, जब कि अमरीकी मनीषी ऐडम्स की नीति थी कि पहले राजनीति और रणनीति को पढ़ लिया जाए, तब धीरे-धीर संस्कृति की ओर अग्रसर होना उचित है। पुनर्जागरण प्रक्रिया के दोनों उदाहरण हमारे सामने हैं। किसके परिणाम इतिहास में अधिक स्थायी होंगे, इसकी भविष्यवाणी इतनी जल्दी मुनासिब नहीं।“ (हिन्दी साहित्य और संवेदना का इतिहास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, पृ. 87)।

बोध प्रश्न

- राज-भक्ति और राष्ट्र-भक्ति का द्वंद्व किसकी देन है?
- पुनर्जागरण ने लोक-सेवा को किससे जोड़ा?
- स्वतंत्रता आंदोलन काल में किसने अंतर्विरोध का समाधान प्रस्तुत किया?

भारतेंदु हरिश्चंद्र का एक निजी द्वंद्व भी है। वह यह कि वे विचारों से तो अवश्य आधुनिक थे लेकिन उनके संस्कार उन्हें विरासत में मिली मध्यकालीनता क साथ जोड़ते थे। इसका अर्थ यह है कि भारतेंदु के व्यक्तित्व में मध्यकालीनता बोध और आधुनिकता बोध का द्वंद्व विद्यमान था। किसी भी रचनाकार के साहित्य में बड़ी सीमा तक उसका निजी व्यक्तित्व भी प्रतिफलित होता है। इसलिए भारतेंदु हरिश्चंद्र के साहित्य में हमें जहाँ एक ओर भक्ति और शृंगार की गहन अनुभूतियों के चित्र मिलते हैं वहीं दूसरी ओर समाज सुधार, राष्ट्र भक्ति, व्यंग्य और विसंगतियों का भी मर्मस्पर्शी अंकन दिखाई देता है। उनकी मध्यकालीनता और प्रगतिशीलता किसी व्यक्ति के दो पैरों की तरह है। मध्यकालीनता वाला पैर जमीन पर टिका है और प्रगतिशीलता वाला पैर आगे बढ़ने के लिए हवा में उठा हुआ है। यही कारण है कि वे एक तरफ तो खड़ी बोली को पद्य के अनुकूल नहीं मानते और ब्रज भाषा को ही काव्य भाषा बनाए रखने पर ज़ोर देते हैं। जबकि दूसरी ओर तमाम पत्रकारिता और गद्य लेखन के लिए उन्होंने खड़ी बोली का पक्ष लिया जिसके परिणामस्वरूप उस जमाने में हिन्दी 'नए चाल' में ढल सकी। कमोबेश यह बात उस काल के दूसरे रचनाकारों पर भी लागी होती है। क्योंकि संवेदनात्मक स्तर पर वे भी भारतेंदु के आभा मंडल से गहरे जुड़ाव रखते थे।

बोध प्रश्न

- भारतेंदु हरिश्चंद्र का निजी द्वंद्व क्या था?
- भारतेंदु हरिश्चंद्र खड़ी बोली को पद्य के अनुकूल क्यों नहीं मानते थे?
- पत्रकारिता और गद्य लेखन के लिए भारतेंदु हरिश्चंद्र ने किसका पक्ष लिया?

16.3.2 भारतेंदु मंडल

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने तन-मन-धन से जिस प्रकार हिन्दी भाषा और साहित्य की अनन्य सेवा की उसके प्रभाव से उनके जीवन काल में अनेक कवियों और लेखकों का एक अनौपचारिक संगठन जैसा उनके इर्द-गिर्द बन गया था। इस साहित्यिक समूह को हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'भारतेंदु मंडल' के नाम से पुकारा जाता है। भारतेंदु मंडल के सभी सदस्य साहित्यकारों ने हिन्दी गद्य, पद्य और पत्रकारिता का जमकर विकास किया। साथ ही, इनकी वैचारिक मान्यताएँ भी लगभग एक समान थीं। ये सभी राष्ट्रीय चेतना से युक्त और सामाजिक सरोकारों से प्रेरित साहित्यकार थे। भारतेंदु के निधन के बाद भी इनकी साहित्य साधना अबाध गति से चलती रही। भारतेंदु मंडल में सम्मिलित प्रमुख साहित्यकारों में प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन', ठाकुर जगन्मोहन सिंह तथा राधाचरण गोस्वामी के नाम सम्मिलित हैं।

बोध प्रश्न

- भारतेंदु मंडल के प्रमुख साहित्यकार कौन हैं?
- भारतेंदु मंडल से क्या अभिप्राय है?

16.3.2.1 भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850 ई.-1885 ई.)

भारतेंदु हरिश्चंद्र का जन्म 1850 ई. में हुआ। साहित्य सृजन की प्रेरणा उन्हें अपने परिवार से विरासत में मिली। उनके पिता बाबू गोपाल चंद्र 'गिरिधरदास' अपने समय के प्रसिद्ध कवि थे। उनकी देखा-देखी उन्होंने भी बाल्यावस्था से ही कविताएँ रचनी शुरू कर दी थीं। इनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर उस समय के पत्रकारों और साहित्यकारों ने इन्हें सन 1880 में 'भारतेंदु' की उपाधि से विभूषित किया था। 'नीलदेवी', 'भारत दुर्दशा' एवं 'अंधेर नगरी' जैसे सुप्रसिद्ध नाटकों के रचयिता तथा अनेक निबंधों के लेखक भारतेंदु हरिश्चंद्र की लगभग सत्तर छोटी-बड़ी काव्य कृतियाँ हैं, जो 'भारतेंदु ग्रंथावली' में सम्मिलित हैं। उन्होंने पद्य रचना में परंपरा का पालन किया लेकिन गद्य रचना में अनेक नई विधाओं का सूत्रपात किया। इसीलिए उनके बारे में रामचंद्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में लिखा है कि भारतेंदु जी ने हिन्दी काव्य को केवल नए-नए विषयों की ओर ही उन्मुख किया, उसके भीतर किसी नवीन विधान या प्रणाली का सूत्रपात नहीं किया। वास्तव में गद्य की जिस परिणाम में भारतेंदु ने नए-नए विषयों और मार्गों की ओर लगाया, उस फरमान में पद्य को नहीं। शुक्ल जी ने उनकी शृंगारिक कविताओं तथा कृष्ण भक्त कवियों के अनुकरण पर रचित गेय पदों के साथ-साथ विभिन्न नाटकों में संदर्भानुसार रखने के लिए रचित कविताओं को ध्यान में रखते हुए विचार प्रकट किया है और उनमें 'राजभक्ति तथा देशभक्ति के मेल' को भी उजागर किया है। दरअसल भारतेंदु एक ओर तो पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान की उपलब्धियों से भारतवासियों को समृद्ध करने के पक्ष में थे तथा दूसरी ओर वे अंग्रेजी

साम्राज्यवाद और शोषण को लेकर सतर्क भी थे। 3 दिसंबर, 1884 की 'नवोदित हरिश्चंद्र चंद्रिका' में पहली बार प्रकाशित सुप्रसिद्ध 'बलिया वाले व्याख्यान' में उन्होंने कहा था : "अंग्रेजों के राज्य में सब प्रकार का सामान पाकर, अवसर पाकर भी हम लोग जो इस समय पर उन्नति न करें तो हमारा केवल अभाग्य और परमेश्वर का कोप ही है।" उनका यह कथन राजभक्ति के अंदेशा जगजागृति के उद्देश्य से प्रेरित है। वे इससे पहले 1874 ई. की 'कवि वचन सुधा' में लिख चुके थे - "देशवासियो, तुम इस निद्रा से चौंको, इन (अंग्रेजों) के न्याय के भरोसे मत फूले रहो। रोग और दुष्काल इन दोनों के मुख्य कारण अंग्रेज़ ही हैं।" इससे यह भी पता चलता है कि भारतेंदु हरिश्चंद्र अपने समय की आर्थिक और राजनीतिक परिस्थिति की गहरी समझ रखते थे। वस्तुतः नवजागरण काल की अन्य विभूतियों की भाँति भारतेंदु हरिश्चंद्र भी पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान के पक्ष में होने के बावजूद अपनी जातीय संस्कृति और विरासत को हर कीमत पर बचाए रखने के पक्षधर थे। इसीलिए उन्होंने कहा है कि -

जो भारत जग में रह्यो सबसे उत्तम देस।
ताही भारत में रह्यो अब नहिं सुख को लेस॥

यही नहीं, एक स्थान पर उन्होंने स्पष्ट रूप से महारानी विक्टोरिया के राज की निंदा करते हुए यह भी कहा कि -

दीन भये बलहीन भये धन छीन भये सब बुद्धि हिरानी।
ऐसी न चाहिए आपुके राज प्रजागन ज्यों मछरी बिन पानी॥

भारतेंदु की आर्थिक-राजनीतिक समझ का पता उनके इस कथन से भी पता लगता है कि अंग्रेजों के शासन काल में तकनीकी क्षेत्र में तरक्की तो हो रही है लेकिन देश को आर्थिक दृष्टि से खोखला कर देने का षड्यंत्र भी चल रहा है। यथा -

अंग्रेज़-राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन बिदेश चलि जात यहै अति ख़्वारी॥

इसके अलावा, उनकी भक्तिपरक रचनाओं में भी व्यक्तिगत मुक्ति की कामना नहीं बल्कि देशानुराग का स्वर सुनाई पड़ता है। 'नीलदेवी' नाटक के एक पद में यह बात देखी जा सकती है -

कहाँ करुणानिधि केशव सोए?
जगत नाहिं अनेक जतन करि भारतवासी रोए॥

डॉ. सुरेशचंद्र गुप्त की यह मान्यता भारतेंदु हरिश्चंद्र के मौलिक योगदान को समझने में सहायक है कि, "उनकी प्रमुख विशेषता यह है कि अपनी अनेक रचनाओं में जहाँ वे प्राचीन काव्य प्रवृत्तियों के अनुवर्ती रहे, वहाँ नवीन काव्यधारा के प्रवर्तन का श्रेय भी उन्हीं को प्राप्त है। राजभक्त होते हुए भी वे देशभक्त थे। दास्य भाव की भक्ति के साथ ही उन्होंने माधुर्य भाव की भक्ति भी की है। नायक-नायिका के सौंदर्य वर्णन में ही न रमकर उन्होंने उनके लिए नवीन कर्तव्य क्षेत्रों का भी

निर्देश किया है। और इतिवृत्तात्मक काव्य शैली के साथ ही उनमें हास्य-व्यंग्य का पैनापन भी विद्यमान है।"

बोध प्रश्न

- बलिया व्याख्यान में भारतेंदु ने क्या कहा था?
- भारतेंदु हरिश्चंद्र को 'भारतेंदु' की उपाधि से किसने विभूषित किया और क्यों?
- भारतेंदु हरिश्चंद्र किसके पक्षधर थे?

16.3.2.2 बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन' (1855 ई.-1923 ई.)

भारतेंदु मंडल में महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन' 'आनंद कादंबिनी' और 'नागरी नीरद' नामक पत्रिकाओं के संपादक थे। प्रेमघन की 'जीर्ण जनपद', 'आनंद अरुणोदय', 'हार्दिक हर्षादर्श', 'मयंक-महिमा', 'अलौकिक लीला', 'वर्षा बिंदु' आदि प्रसिद्ध काव्य कृतियाँ हैं जो 'प्रेमघन सर्वस्व' में संकलित हैं। ये सामाजिक और राजनीतिक विषयों पर लिखने के लिए भी जाने जाते हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार "देश की राजनैतिक या धर्म संबंधी आंदोलन चलते रहे, उन्हें ये बड़ी उत्कंठा से परखा करते थे। जब कहीं कुछ सफलता दिखाई पड़ती, तब लेखों और कविताओं द्वारा हर्ष प्रकट करते, और जब बुरे लक्षण दिखाई देते तब क्षोभ और खिन्नता। कांग्रेस के अधिवेशन में ये प्रायः जाते थे।" इन्होंने राजभक्तिपरक कविताएँ भी लिखीं, लेकिन नई लहर से वे प्रायः राष्ट्रीयता, समाज की दशा और देशभक्ति से भरपूर प्रेरक कविताएँ लिखने के लिए जाने जाते हैं। राजभक्तिपरक कविताओं में भी वे मार्मिकता के साथ देश की दशा का सिंहावलोकन करते थे। उदाहरण स्वरूप, अंग्रेजों द्वारा दादाभाई नौरोजी को 'काला' कहकर अपमानित किए जाने पर उन्होंने अपने क्षोभ को इस प्रकार प्रकट किया था :

> अचरज होत तुमहुँ सम गोरे बाजत कारे।
> तासों कारे 'कारे' शब्दहु पर है वारे॥
>
> कारे श्याम, राम, जलधर जल बरसनवारे।
> कारे लागत ताही सन कारन को प्यारे॥
> यातें नीकों हैं तुम 'कारे' जाहु पुकारे।
> यहैं असीस देत तुमको मिलि हम सब कारे -
> सफल होहिं मन के सभी संकल्य तुम्हारे॥

बोध प्रश्न

- . प्रेमघन की कविताओं का विषय क्या था?

16.3.2.3 प्रतापनारायण मिश्र (1856 ई.-1894 ई.)

प्रतापनारायण मिश्र भारतेंदु मंडल के प्रमुख कवि माने जाते हैं। ये 'ब्राह्मण' नामक पत्रिका का संपादन करते थे। इनकी प्रतिनिधि कविताओं का संकलन 'प्रताप लहरी' नाम से प्रकाशित है। प्रतापनारायण मिश्र का रचना संसार अत्यधिक विविधतापूर्ण है। उन्होंने भक्ति और प्रेम से लेकर राष्ट्र, समाज और राजनीति तक पर कविताएँ रचीं। हास्य-व्यंग्यपूर्ण लेखन के लिए ये खास तौर से जाने जाते थे। 'हर गंगा', 'तृप्यंताम', 'बुढ़ापा' आदि उनकी प्रमुख विनोदपूर्ण एवं मनोरंजक कविताएँ हैं। उनके व्यंग्य की एक बानगी देखिए -

जग जाने इंगलिश हमें, वाणी वस्त्रहिं जोय।
मिटै वदन कर श्याम रंग, जन्म सुफल तब होय॥

बोध प्रश्न

- प्रतापनारायण मिश्र का रचना संसार कैसा था?

16.3.2.4 ठाकुर जगन्मोहन सिंह (1857 ई.-1899 ई.)

मध्यप्रदेश की एक रियासत के राजकुमार ठाकुर जगन्मोहन सिंह ने काशी में शिक्षा प्राप्त की। तभी वे भारतेंदु हरिश्चंद्र से परिचित और प्रभावित हुए। यह बात अलग है कि उनकी रचना शैली भारतेंदु की रचना शैली से अलग है। भारतेंदु मंडल के कवियों में वे स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति और सजीव प्रकृति चित्रण के लिए खास तौर से जाने जाते हैं। उनकी काव्य कृतियों में 'प्रेमसंपत्तिलता' (1885), 'श्यामलता' (1885), 'श्यामा-सरोजिनी' (1886) और 'देवयानी' (1886) सम्मिलित हैं। रामचंद्र शुक्ल का मत है कि "यद्यपि जगन्मोहन सिंह जी अपनी कविता को नए विषयों की ओर नहीं ले गए, पर प्राचीन संस्कृत काव्यों के प्राकृतिक वर्णनों का संस्कार मन में लिए हुए, अपनी प्रेमचर्चा की मधुर स्मृति से समन्वित विंध्य प्रदेश के रमणीय स्थलों को जिस सच्चे अनुराग की दृष्टि से उन्होंने देखा है, वह ध्यान देने योग्य है। उसके द्वारा उन्होंने हिन्दी काव्य में एक नूतन विधान का आभास दिया था। संस्कृत के प्राचीन कवियों की प्रणाली पर हिन्दी काव्य के संस्कार का जो संकेत ठाकुर साहब ने दिया, खेद हैं कि उसकी ओर किसी ने ध्यान न दिया।"

बोध प्रश्न

- ठाकुर जगन्मोहन सिंह की रचना शैली कैसी थी?

16.3.2.5 अंबिकादत्त व्यास (1858 ई.-1900 ई.)

संस्कृत और हिन्दी के जाने माने विद्वान अंबिकादत्त व्यास 'पीयूष प्रवाह' नामक पत्रिका के संपादक थे। इनकी काव्य कृतियों में 'पावस पचासा' (1886), 'सुकवि सतसई' (1887) और 'हो

हो होरी' (1891) उल्लेखनीय हैं। ये रचनाएँ ब्रजभाषा में हैं। खड़ी बोली हिन्दी में भी उन्होंने 'कंस वध' नामक एक प्रबंध काव्य की रचना की जो अपूर्ण है। उनके 'भारत सौभाग्य' नामक नाटक में भी कुछ गेय पद प्राप्त होते हैं। इन्होंने प्राचीन भारतीय संस्कृति में गहरी निष्ठा तथा पाश्चात्य संस्कृति की खामियों को उजागर करने के लिए अनेक कविताएँ रचीं। साथ ही भक्तिपरक दोहे रचे जिनमें ब्रजभाषा की स्वच्छता विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करती है। यथा -

सुमिरत छवि नंद नंद की, बिसरत सब दुख दंद।
होत अमंद अनंद हिय, मिलत मनहु सुख कंद॥
रसना हू बस ना रहत, बरनि उठत करि ज़ोर।
नंद नंद मुख चंद पै, चितहू होत चकोर॥

16.3.2.6 राधाकृष्ण दास (1865 ई.-1907 ई.)

राधाकृष्ण दास भारतेंदु हरिश्चंद्र के फुफेरे भाई थे। ये बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। तत्कालीन समाज की स्थिति को लेकर रचित इनकी कविताएँ 'भारत बारहमासा' एवं 'देश-दशा' बहुत प्रसिद्ध हुईं। इन्होंने नाटक, उपन्यास एवं आलोचना के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय योगदान दिया है। इनकी कुछ कविताएँ 'राधाकृष्ण-ग्रंथावली' में संकलित हैं। राधाकृष्ण दास ने ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में अपनी कवि प्रतिभा का प्रमाण दिया। राधा और कृष्ण के प्रेम का निरूपण करने वाली उनकी रचनाएँ माधुर्य से भरपूर हैं।

16.3.3 भारतेंदु युग की देन

हिन्दी साहित्य में आधुनिकता बोध का श्रीगणेश करने की दृष्टि से भारतेंदु युग और उसमें भी विशेष रूप से भारतेंदु मंडल के रचनाकारों की देन को भुलाया नहीं जा सकता। इन कवियों ने हिन्दी कविता को रीतिकाल की अतिशय शृंगारिकता और रीतिबद्धता से आजाद किया। उसके स्थान पर इन्होंने समाज और राष्ट्र की दशा और दिशा के साथ अपने रचनाकर्म को लोकमंगल का संस्कार प्रदान किया। भारतीय संस्कृति और इतिहास के गुणगान के साथ ही समाज सुधार के प्रति जो रुचि इन कवियों ने प्रदर्शित की, उसने आगे आने वाले अर्थात द्विवेदी युग के कवियों के लिए मार्ग प्रशस्त किया। भारतेंदु युग का काव्य बड़ी सीमा तक रीतिकाल से आधुनिक काल की दिशा में बढ़ते नए भावबोध की आरंभिक आहटों का काल है। इन आहटों को बीसवीं शताब्दी के पहले दशकों में जागरण और सुधार के स्वरों के रूप में परिवर्तित होते सुना जा सकता है। अतः कहा जा सकता है कि भारतेंदु युग की कविता ने द्विवेदी युग की कविता के व्यापक लोकवादी संस्कार की नींव रखने का काम किया।

काव्यभाषा की दृष्टि से भारतेंदु युग धीरे-धीरे बदलाव को आत्मसात करता दिखाई देता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र मानते थे कि गद्य के लिए खड़ी बोली उपयुक्त होने के बावजूद वह पद्य के

लिए अनुकूल नहीं है। इसीलिए उन्होंने स्वयं ब्रजभाषा में ही कविता रची। परंतु आगे चलकर धीरे-धीरे ब्रजभाषा का स्थान खड़ी बोली ने ले लिया।

कुल मिलाकर, भारतेंदु युग की सबसे बड़ी उपलब्धि आधुनिक विषयों की ओर उन्मुख होने और सामाजिक-राजनैतिक प्रश्नों के प्रति सजग होने को माना जा सकता है। साथ ही इस युग के प्रायः सभी कवियों में प्राचीन और नवीन के समन्वय की जो चेष्टा दिखाई देती है, उसने नवजागरण की चेतना को पाठकों तक पहुँचाने में बड़ी भूमिका निभाई।

बोध प्रश्न

- भारतेंदु युग की रचनाकारों ने कविता को किससे जोड़ा?

16.4 पाठ-सार

भारतेंदु युग का नेतृत्व भातेंदु हरिश्चंद्र ने किया। उन्होंने हिन्दी में सामाजिक चेतना से संबंध आधुनिकता बोध के काव्य का सूत्रपात किया। उपनिवेशवादी तंत्र का हिस्सा होते हुए भी वे स्वतंत्रता के पक्षधर थे। वे चाहते थे कि सब प्रकार का आधुनिक ज्ञान-विज्ञान अर्जित करते हुए भारतीय लोग अपनी भाषा और अपनी राष्ट्रीयता की रक्षा करें। उन्होंने गद्य के लिए खड़ी बोली को अपनाया लेकिन पद्य के लिए वे ब्रजभाषा को ही उचित समझते थे। उन्होंने भारतवासियों को अपनी दीनहीन दशा से बाहर निकालने की प्रेरणा दी। साथ ही भक्ति, प्रेम, प्रकृति और हास्य-व्यंग्य से युक्त कविताएँ भी रची। उनके अलावा इस काल में बदरी नारायण चौधरी प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र, ठाकुर जगन्मोहन सिंह, अंबिकादत्त व्यास, राधाकृष्ण दास ने भी अपने काव्य द्वारा हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की।

16.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं -

1. भारतेंदु युग के कवियों में देशभक्ति और राजभक्ति का द्वंद्व पाया जाता है।
2. जैसे-जैसे यह स्पष्ट हुआ कि अंग्रेज़ शासन वैज्ञानिक और तकनीकी सुधारों के नाम पर भारत के आर्थिक शोषण का जाल बिछा रहा है वैसे-वैसे राजभक्ति का स्वर पीछे छूटता गया और राष्ट्रीय चेतना प्रखर होती गई।
3. इस काल के कवियों में हास्य-व्यंग्य की प्रवृत्ति काफी मुखर थी। भारतेंदु हरिश्चंद्र और प्रतापनारायण मिश्र की कविताओं में इसे खास तौर पर देखा जा सकता है।
4. भारतेंदु काल के कवियों ने हिन्दी कविता को धार्मिक और दरबारी परिस्थितियों से मुक्त करके व्यापक समाज के सुख-दुख के साथ जोड़ा।

16.6 शब्द संपदा

1. उपयुक्त = उचित
2. फरमान = आदेश

3. विनोद	=	मनोरंजन
4. विषाद	=	उदासी
5. सिंहावलोकन	=	पुनर्विचार
6. हर्ष	=	प्रसन्नता

16.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग <u>500</u> शब्दों में दीजिए।

1. भारतेंदु हरिश्चंद्र के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालिए।
2. भारतेंदु मंडल के प्रमुख कवियों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग <u>200</u> शब्दों में दीजिए।

1. भारतेंदु युग का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. भारतेंदु युग की देन पर प्रकाश डालिए।

खंड (स)

I सही विकल्प चुनिए

1. 'भारत बारहमासा' के रचनाकार कौन हैं? ( )
   (अ) प्रतापनारायण मिश्र (आ) राधाकृष्ण दास (इ) अंबिकादत्त व्यास (ई) भारतेंदु
2. 'तृप्यंताम' के रचनाकार कौन हैं? ( )
   (अ) प्रतापनारायण मिश्र (आ) राधाकृष्ण दास (इ) अंबिकादत्त व्यास (ई) भारतेंदु
3. भारतेंदु मंडल के स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति के रचनाकार कौन हैं? ( )
   (अ) प्रतापनारायण मिश्र (आ) अंबिकादत्त व्यास (इ) जगन्मोहन सिंह (ई) प्रेमघन

II रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए

1. हिन्दी साहित्य के प्रथम उत्थान को .... कहा जाता है।
2. बलिया व्याख्यान .... में प्रकाशित हुई थी।
3. 'वर्षा बिंदु' के रचनाकार .... हैं।

III सुमेल कीजिए

i) भारतेंदु हरिश्चंद्र	(अ) नागरी नीरद
ii) प्रतापनारायण मिश्र	(आ) कवि वचन सुधा
iii) प्रेमघन	(इ) पीयूष प्रवाह
iv) अंबिकादत्त व्यास	(इ) ब्राह्मण

16.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल
2. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, गणपतिचंद्र गुप्त
3. हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, विजयपाल सिंह
4. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह

परीक्षा प्रश्न पत्र का नमूना

MAULANA AZAD NATIONAL URDU UNIVERSITY

PROGRAMME: B.A – HINDI(Hons)

I – SEMESTER EXAMINATION

TITLE & PAPER CODE : हिन्दी साहित्य का इतिहास (BNHN101DCT)

TIME: 3 HOURS — TOTAL MARKS: 70

यह प्रश्न पत्र तीन भागों में विभाजित हैं- भाग -1, भाग -2 और भाग - 3 प्रत्येक प्रश्न के उत्तर निर्धारित शब्दों में दीजिए।

भाग – 1

1. निम्न लिखित विकल्पों में सही विकल्प चुनिए। 10X1=10

i. 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास' के लेखक कौन हैं ? ( )

(A) रामचंद्र शुक्ल (B) बच्चन सिंह

(C) हजारी प्रसाद द्विवेदी (D) रामस्वरूप चतुर्वेदी

Ii. आदिकाल को चारण काल किसने कहा ? ( )

(A) शिवसिंह सेंगर (B) ग्रियर्सन (C) रामचंद्र शुक्ल (D) मिश्रबंधु

iii. कबीर का जन्म कब हुआ ? ( )

(A) 1398 वि.सं. (B) 1456 वि.सं.

(C) 1400 वि.सं. (D) 1420 वि.सं.

iv. सिद्धों की संख्या कितनी है ? ( )

(A) 9 (B) 12 (C) 15 (D) 84

v. 'रामचरितमानस' में कितने काण्ड हैं ? ( )

(A) 5 (B) 6 (C) 7 (D) 8

vi. . 'हादसे' किसकी आत्मकथा है ? ( )

(A) रमणिका गुप्ता (B) कृष्णा अग्निहोत्री

(C) प्रभा खेतान (D) मन्नू भंडारी

vii. बोधा कवि किस काव्य धारा के कवि है ? ( )

(A) रीतिबद्ध (B) रीतिमुक्त (C) रीति सिद्ध (D) इनमें से कोई नहीं

viii. गोदान उपन्यास कब प्रकाशित हुआ ? ( )

(A) 1935 (B) 1936 (C) 1930 (D) 1934

ix. पद्मावत का रचना काल क्या है? ( )

(A) 1490 ई. (B) 1492 ई. (C) 1540 ई. (D) 1494 ई.

x. हजारी प्रसाद द्विवेदी की रचना नहीं है। ( )

(A) हिन्दी साहित्य अभ्युदय (B) आदिकाल

(C) कबीर (D) हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास

भाग – 2

निम्नलिखित आठ प्रश्नों में से किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर 200 शब्दों में देना आनिवार्य है। 5X6 =30

2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य का काल विभाजन किस आधार पर किया है ? संक्षिप्त रूप से चर्चा करें।

3. कबीर को समाजसुधार के रूप में प्रस्तुत कीजिए।

4. गोरखनाथ कौन थे उनकी रचनाओं पर प्रकाश डालिए।

5. निर्गुण भक्ति से क्या अभिप्राय है और निर्गुण ब्रह्म के प्रति आस्था को लेकर संत कवियों ने क्या कहा है ?

6. साठोत्तरी हिन्दी साहित्य की प्रवृतियों पर चर्चा करे।

7. रीतिकाल की सामाजिक परिस्थिति पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

8. 'दलित' शब्द की संकल्पना को स्पष्ट करते हुए दलित विमर्श की संकल्पना सौदाहरण स्पष्ट कीजिए।

9. प्रवासी साहित्य क्या है ? प्रवासी साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को संक्षिप्त रूप में स्पष्ट कीजिए।

भाग- 3

निम्नलिखित पाँच प्रश्नों में से किन्हीं तीन प्रश्नों के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर 500 शब्दों में देना अनिवार्य है। **3X10=30**

10. साहित्येतिहास का अर्थ स्पष्ट करते हुए उसकी आवश्यकता तथा साहित्येतिहास लेखन की समस्याओं पर प्रकाश डालिए।

11. रीतिकाल की प्रवृतियों की चर्चा कीजिए।

12. द्विवेदीयुगीन प्रवृतियों पर प्रकाश डालिए।

13. भक्ति की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए। भक्ति आंदोलन के उदय की सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

14. हिन्दी उपन्यास का उद्भव एवं विकास पर प्रकाश डालिए।

*****